University Studies—Mo. 1.

HISTORY

OF THE

MEDIÆVAL SCHOOL OF INDIAN LOGIC

BY

MAHĀMAHOPĀDHYĀYA SATIS CHANDRA VIDYABHUSANA, M.A., Ph.D.

Professor of Sanskrit and Pali, Presidency College, Calcutta; Josh Philological Secretary, Asiatic Society of Bengal; and Fellow of the Calcutta University.

Thesis approved for the Degree of Doctor of Philosophy in the University of Calcutta,
1907.

Calcutta :

PUBLISHED BY THE CALCUTTA UNIVERSITY AND PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS.

TO

THE HON'BLE MR. JUSTICE ASUTOSH MUKHOPADHYAYA,

SARASVATI, M.A., D.L., D.So., F.R.A.S., F.R.S.E.,

Vice-Chancellor of the Calcutta University,

President of the Asiatic Society of Bengal, and Chairman of the Board
of Indigenous Sanskrit Education, Bengal,

WHOSE LIFE IS AN UNBROKEN RECORD
OF LOFTY IDEALS
TRANSLATED INTO PRACTICE,
THIS BOOK IS DEDICATED
IN TOKEN OF PROFOUND ESTEEM
BY

HIS HUMBLE ADMIRER, THE AUTHOR.

TABLE OF CONTENTS.

| | face roduction | •• | •• | •• | •• | •• | •• | •• ••. | PAGE Xiii XVii |
|-------------------|------------------------------------|----------------|----------|--------|---------|-------|------------|-----------|----------------------|
| | | | E | 300 | K I | • | | | |
| | | Т | HE . | JAIN | A L | OGIC | ļ . | | |
| | C | RAPTE | er I.—' | Гнк Е | CRA OF | TRAD | ition. | | |
| 1. 2. 3. | The Jina The Svet Indrabhi | āmb | aras and | d Diga | | s | •• | •• | 1 2 2 3 |
| 4. 5. | Canonica The Drst | l Scri | ptures | | Jainas | 3 | •• | •• | 3 3 |
| 6. 7. | Logic in | the S | cripture | | •• | •• | • • | •• | 4 |
| 8. 9. | Four typ Bhadra-b | es of | | ice | • • | •• | •• | • • | 5 5 |
| 10. 11. | His date His work | • • | | •• | •• | •• | •• | • • | 5 6 |
| 11. 12. 13. | His syllo | gism | | | •• | •• | • • | •• | 6 7 |
| 14. 14. | Ten parts Syādvāds Seven cat | ı. | | | • • | •• | •• | •• | 8 |
| 16. 16. 17. | The Tatt Umāsvāt | v ā rth | ādhigar | na Sū | tra | •• | •• | •• | 8 |
| 17. 18. 19. | Pramāņa Indirect l | or va | | wledg | е | •• | •• | •• | 9 |
| 20. 21. | Meanings | of P | ratyak | | | sa. | •• | •• | 10 10 11 |
| 21. 22. 23. | Naya Naigama Samgraha | | •• | •• | •• | •• | •• | •• | 11 11 |
| 25. 24. 25. | Vyavahār Rju-sūtra | a | •• | •• | •• | •• | •• | •• | 11 11 |
| 2 6. | | • • | •• | •• | •• | •• | •• | •• | 12 |
| | Сн. | APTEF | 1I.— | Гне Н | listori | CAL P | ERIOD. | | |
| 27. 28. | The writt Siddhaser | | | | ainas | •• | •• | •• | 13 13 |
| | | | | | | | | | |

| | | | | | | | PAGE |
|--------------|---|------------------|---|---------|--------|-------|-----------------|
| 29. | His Sammatitarka-sūt | ra | | • • | | • • | 14 |
| 30. | He converts Vikramāc | litya t | o Jain | ism | | | 14 |
| 31. | | | | | | | 14 |
| 32. | His date The Nyāyāvatāra | | | | | | 15 |
| 33. | Pramāna or valid kno | wledge | , . | | | | 15 |
| 34. | Verbal Testimony | | | | | | 15 |
| 35. | Verbal Testimony Inference | | | | • • | | 16 |
| 3 6. | Inference for one's sel | f - | | •• | •• | | 16 |
| 37. | | | ers | | •• | | 16 |
| 38. | Inference for the sake Terms of a syllogism Importance of the min | | | | •• | | 16 |
| 39. | Importance of the min | or ter | m | | •• | • - | 17 |
| 40. | Fallacy of the minor | | | | • • | • • | 17 |
| 41. | Vyāpti or inseparable | conne | ction | •• | | | 18 |
| 42. | Intrinsic inseparable c | | | | •• | • • | 18 |
| 43. | Extrinsic inseparable | | | • • | | • • | 18 |
| 44. | Superfluity of extrinsi | | | | | • • | 18 |
| 45. | Fallacy of the middle | term | ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, | CAMILIA | •• | | 18 |
| 46. | T7 - 11 C 1- | | | | | •• | 19 |
| 47. | Fallacies of the homo | ം • അവകവ | | mnle | • • | • • • | 19 |
| 48. | Fallacies of the heter | oneneo Oneneo | 110 AV | unnle | • • | • • | 20 |
| 49. | | | | | | • • | 21 |
| 50. | Refutation, &c. Effect of Pramāṇa | •• | • • | • • | • • | • • | 21 |
| 50. 51. | Nove | • • | • • | • • | • • | | 21 |
| 51. 52. | Naya Syādvāda śruta, etc. Siddhasena Gaņi | • • | • • | • • | • • | • • | 22 |
| 52. 53. | Siddhagana Cumi | • • | • • | • • | • • | • • | $\frac{22}{22}$ |
| აა. 54. | Siddhasena Gain | • • | • • | • • | • • | • • | $\frac{22}{22}$ |
| 55. | Samanuaphaura | • • | • • | • • | • • | • • | $\frac{22}{23}$ |
| ออ. 56. | Samantabhadra His works and date The Aptamimāmsā | • • | • • | • • | • • | • • | 24 |
| | The Aptamimamsa | • • | • • | • • | • • | • • | 24 |
| 57 . | Non-existence, abhāva Existence, bhāva, and Akalanka Deva Akalanka and his Bud Date of Akalanka Vidyānanda | | | | • • | • • | 25 |
| 58. 50 | Existence, onava, and | sapia- | onang | | • • | • • | 25 25 |
| 59 . | Akalanka Deva | 1 31 . 4 | • • | | • • | • • | 26 26 |
| 60 . | Akalanka and his Buc | ianist : | antage | mst | • • | • • | 26 |
| 61. | Date of Akalanka | • • | • • | • • | • • | • • | 26 26 |
| 62. | Vidyananda | •• | • • | | ; • | • ; | 20 |
| 63. | viovananda's referen | ce to | orner | Diffics | onners | ame | 27 |
| | his date | • • | • • | • • | • • | • • | |
| 64. | his date Māṇikya Nandi The Parīkṣā-mukha-si Valid knowledge, Pra Kinds of valid knowle | | • • | • • | • • | • • | 28 |
| 65. | The Pariksa-mukha-si | ūtra | • • | • • | | • • | 28 |
| 6 6 . | Valid knowledge, Pra | māņa | • • | • • | | • • | 29 |
| 67 . | Kinds of valid knowle | edge | • • | | | | 29 |
| 68. | Terms of a syllogism Different phases of th | • • | • • | • • | • • | | 29 |
| 69 . | Different phases of th | e reas | on or i | middle | term | • • | ?() |
| 70. | Perceptible reason in | the affi | irmati | ve forn | 11 | | 30 |
| 71. | Perceptible reason in | the ne | gative | form | | • • | 30 |
| 72 | Impercentible reason | in the | negati | ve for | 2) | | 31 |

| _ | | | | _ | |
|--|-------------|-----------------|----------|---------|-----|
| Imperceptible reason | | | mative | form | |
| Example | | | • • | • • | • • |
| Inference | • • | • • | • • | • • | • • |
| Verbal Testimony Objects of valid known | | | | • • | |
| Objects of valid kno | owledg | gе | | | |
| Result of valid kno | wledge | э | • • | • • | |
| Various kinds of fal | lacies | | • • | | |
| Mānikya Nandi's re | eferenc | es to | conter | nporane | ous |
| systems of philos | | | | | |
| His estimate of the | Pariks | āmukl | ıa sütr: | a | |
| | | | | | |
| Mallavādin | | | | •• | |
| Dharmottara-tippan | aka ar | nd Mal | la vādir | 's date | |
| Pradyumna Sūri | | | | | • • |
| His date | •• | •• | • • | • • | • • |
| His date Abhayadeva Sūri Laghusamantabhadi | • • | • • | • • | • • | |
| Laghagawaytalhad | • • | • • | | | • • |
| Assartasimamamam | . it | • • | • • | • • | • • |
| Anantavīrya Deva Sūri | • • | • • | • • | • • | • • |
| Deva Suri | 7. | 1 | • • | • • | • • |
| His triumph over th | | | | • • | • • |
| His date | ••• | | • • | • • | • • |
| Pramāņa-naya-tattv | aloka | lan k ār | ա | • • | • • |
| Valid knowledge | ٠٠. | | • • | | • • |
| Perception (Direct l | knowle | dge) | • • | • • | |
| Indirect knowledge | • • | • • | | | |
| Inference | | • • | | | |
| Parts of a syllogism | | • • | | | |
| Non-existence (abhā | va) | | | • • | |
| Character of knowle | d ge | • • | | • • | |
| Fallacies of Naya | | | | | |
| $\bar{l}tm\bar{a} \text{ (soul)} \dots$ | | • • | | | |
| Rules of debate | | | | | |
| Rules of debate Hema Candra Sūri | | | | | |
| His Pramāna-mīmār | nsā | | | | |
| | | | | | |
| His date Candraprabha Sūri | • • | • • | | • • | |
| Nyāvāvatāra vivrti | | • • | | •• | |
| 37 1 3 7 | | | | | |
| Nemicandra Kavi Ananda Sūri and | Amara | cande | Sūri | nicknar | ned |
| lion-cub and tiger | senb | | . , | | |
| Haribhadra Sūri | ,-C UAR | • • | • • | • • | • • |
| Haribhadra Sūri His life | •• | | | | |
| | | • • | • • | | • • |
| | mil.a | • • | • • | | • • |
| Syādvāda-ratnāvatā Ratnaprabha Sūri | | • • | • • | | • • |
| Damantanna Sull | | | | | |

PAGE

| 115. | Mallisena Sūri | | | | | | 51 |
|------------------|---|----------------------|------------|-------|---|-------|-----------|
| 116. | Rājošekhara Sūri | | | | | | 51 |
| 117. | Jñāna Candra | •• | | | | | 51 |
| 118. | Gunaratna | | | | | | 52 |
| 119. | His date | | • • | | | • • | 52 |
| 120. | TT'- C | . 1 | 1 | _ | •• | • • | 53 |
| 121. | Dharmabhūsana | | | | | | 54 |
| 122. | His Nyāva-dīpikā | | | | | | 54 |
| 123. | | ier phi | ilosophe | rs | •• | | 54 |
| 124. | Yasovijaya Gani | | | | •• | • • | 54 |
| 125. | His life | • • | •• | • • | • • | • • | 55 |
| | | • • | | • • | | | |
| | В | OOI | K II. | | | | |
| | | | | | | | |
| | THE BU | DDH | 18T I | LOG1 | C. | | |
| Сн | APTER 1.—THE OLD | Budd | нізт Ri | CFERE | NCES I | o Log | IC. |
| 1. | The Buddhas | | | | | | 57 |
| 2. | Buddha Gautma | • • | | •• | • • | | 57 |
| $\overline{3}$. | | | | | | • • | 57 |
| 4. | Tripitaka Pāli Liter Heretical Sects of the Tripitaka carried to (Vijāāna (knowledge) | e Bude | dhists | •• | • | • • | 58 |
| 5 . | Trinitaka carried to | Sevlon | 411417011 | •• | •• | • • • | 58 |
| 6. | Vijnāna (knowledge) | 00,91011 | • • | •• | •• | •• | 59 |
| 7. | Classification of Vijn | รักอ | • • | •• | •• | • • | 59 |
| 8. | Takkika | CC 11-1 | • • | •• | • • | • • | 59 |
| 9. | Takkika in the Brah | na-iāl | | | • • | •• | 59 |
| 10. | Takkika in the Udān | о ш <i>о</i> -јео | a routerer | | | • • | 60 |
| 11. | Logic in the Kathā-v | | | ng. | • • | • • | 60 |
| 12. | Nyāya in the Milinda | | | | • • | •• | 61 |
| 13. | The Method of debat | | | | | | 62 |
| 14. | The Mahāyāna and t | | | • • | • • | • • | 62 |
| 15. | The Council of Kanis | | | | •• | • • | 63 |
| 16. | The Sanskrit Buddhi | ot I ita | | • • | • • | • • | 63 |
| 10. 17. | | | | | • • | • • | 64 |
| 17. | Nava Dharmas | :4:- | ••• | • • | • • | • • | 64 |
| 19. | Hetuvidyā in the Lal | | | • • | • • | • • | 65 |
| 20. | Eighteen Sects of the | paar | :~+ Db;1 | | | • • | 66 |
| | Four Schools of the | | | | | • • | 66 |
| 21. | The Vaibhāsika Scho | | • • | | | • • | 67 |
| 22. | The Sautrantika Sch | | | •• | | • • | 07 |
| 23. | | | • | | | | 67 |
| 34 | Schools | | | | • • | | 68 68 |
| 24. | Ārya Nāgārjuna | • • | • • | • • | | • • | 69 |
| 25 . | The date of Nagarju | แล | • • | • • | • • | • • | 70 |
| 26. | Nāgāriuna's works | | | | | | 10 |

TABLE OF CONTENTS.

| | _ | | | | | | PAGE |
|-------------|--|------------------|-----------|----------|---|-------|------------|
| 27. | Ārya Deva The Yogācāra So | | | | | • • | 7 0 |
| 28. | The Yogācāra So | chool | | | • • | | 71 |
| 29 . | The Tārkika and | Naiyāyika | ı in the | Lankā | vatāra | Sūtra | 72 |
| 3 0. | | | | | | | 73 |
| 31. | Maitreya His Logic . | | | | | | 74 |
| 32. | Ārya Asanga . | | | | | | 74 |
| 33 . | His Logic | | | | | | 75 |
| 34. | His Logic . Vasubandhu . | | • • | • • | | • • | 75 |
| 35 . | His Logic . | | | | | •• | 76 |
| | | | | | | | |
| C | HAPTER II.—Sys | | | | | n Log | IC. |
| 36. | Logic distinguish | ed from g | eneral | philoso | phy | | 78 |
| 37 . | Ācārya Dignāga | his liken | ess | • •• | • | | 78 |
| 38 . | Life of Dignaga. | | | | | | 80 |
| 39. | Life of Dignaga. His Date . | | | | | | 80 |
| 40 . | References to Di | gnāga | | •-• | | | 81 |
| 41. | History of the | Pramāna-s | amuce. | ava an | d refer | ence | |
| | to Isvara-krsna | ı | | • | | | 82 |
| 42. | to Isvara-kṛṣṇa Xylograph of th | e work | | | | | 84 |
| 43 . | Subjects of the | work | | | | | 85 |
| 44. | Subjects of the Dignāga's Theory | v of Perce | ption | | | | 85 |
| 45 . | Dignāga criticise | s Vātsvāv | ana | | | | 86 |
| 46. | Dignāga criticise Dignāga's Theor | v of Infer | ence | | • | • • | 87 |
| 47. | Comparison and | Verbal Te | stimon | v rejec | ted | • • | 88 |
| 48. | | | | | | | 89 |
| 49. | Dignāga's Nyāya Parts of a Syllog | rism . | | | | | 89 |
| 5 0. | Form of a Syllog | gism | | | • • | | 90 |
| 51 | Thesis | | • • | | | | 90 |
| 52 . | Thesis Fallacies of Thes | sis | | | •• | | 90 |
| 53 . | Three Characteri | stics of th | e Midd | lle Terr | | • • • | 91 |
| 54 . | Symbols of the | | | | | • • • | 91 |
| 55. | Vyāpti or relativ | e extension | n of th | | | | • |
| | the major term | | | | | • • • | 92 |
| 56 . | the major term Fallacies of the | Middle Tei | rnı | •• | • • | • • • | 93 |
| 57 . | Theory of Exam | | | | • • | • • • | 95 |
| 58. | Fallacies of Hon | logeneous Pro | Exami | ale | • • | • • • | 96 |
| 59. | Fallacies of Hete | Progent our | Exam | nle | • • | • • | 97 |
| 60. | Refutation and i | ta Fallacy | 12.7(0111 | 1,274 | • • | • • | 98 |
| 61. | Fallacies of Perc | ention and | Unfor | | • • | | 99 |
| 62. | Dignāga's Hetu- | epuon and | 1 1111(1) | i iice | | • • | 99 |
| 63. | The Wheel of Re | 2011 (U | • • | | • • | • • | 100 |
| 64. | Analysis of the | Wheel | •• | • • | • • | • • | 100 |
| 65. | Analysis of the \\Pramana-samucc \\Another version \(\) | W HEEL | • • | •• | • • | • • | 100 |
| 66. | A nother resistant | ava-vin | • • | | • • | • • | 100 |
| UU. | Another version | or it | | • • | | • • | 100 |

| | | | PAGE |
|-------------|---|---------|------|
| 67 . | Pramāņa-sāstra-praveša | • • | 100 |
| 68. | Alambaņa-parīksā | • • | 101 |
| 69. | Alambaṇa-parīkṣā-vṛtti | , . | 101 |
| 70. | Trikāla-parīksā | • • | 101 |
| 71. | Sankara Svāmin | | 101 |
| 72 . | Dharmapāla | | 102 |
| 73. | 1115 W (ALL) | • • | 102 |
| 74. | Ācārya Sīlabhadra | | 102 |
| 75 . | Ācārya Dharmakirti | | 103 |
| 76 . | Dharmakirti and Kumārila | | 103 |
| 77 . | Dharmakirti's Triumphs | | 104 |
| 78. | His further triumphs | | 104 |
| 79 . | His Death | | 104 |
| 80. | Dharmakīrti and Sroń-tsan-gam-po | | 104 |
| 81. | Dharmakīrti's Date | | 105 |
| 82. | Dharmakīrti's Date | | 105 |
| 83. | | | 106 |
| 84. | Subjects of the work | | 107 |
| 85. | Pramāna-vinišcava | | 107 |
| 86. | Nyāya-bindu | | 109 |
| 87. | Theory of Perception | | 109 |
| 88. | Inference for one's self | | 110 |
| 89. | Three kinds of Middle Term | | 110 |
| 90. | Inference for the sake of others | | 313 |
| 91. | | • • | 112 |
| 92. | Thesis Fallacies of Thesis | | 112 |
| 93. | Fallacies of the Middle Term | | 112 |
| 94. | Dharmakīrti criticises Dignāga | | 113 |
| 95. | Dharmakirti's theory of example | | 114 |
| 96. | Fallacies of Homogeneous Example | | 115 |
| 97. | Fallacies of Heterogeneous Example | | 116 |
| 98. | Refutation and its semblance | | 116 |
| 99. | Dharmakirti the Vanquisher of Tirthikas | | 116 |
| 100. | Hetu-bindu vivarana | | 117 |
| 101. | Tarka-nyāva or Vāda-nyāva | | 117 |
| 102. | Santānāntara-siddhi | | 117 |
| 103. | Sambandha-parīkṣā | | 118 |
| 104. | Sambandha-parīkṣā-vṛtti | | 118 |
| 105. | Devendra bodhi | | 118 |
| 106. | Devendra bodhi Pramāṇa-vārtika-panjikā | | 118 |
| 107. | Story of composition of the work | | 118 |
| 108. | Sakya bodhi | | 119 |
| 109. | Pramāņa-vārtika-panjikā-tikā | | 119 |
| 110. | | | 119 |
| 111. | Vinīta Deva | | 120 |
| | | | |

TABLE OF CONTENTS.

| | | | | | | PAGE |
|--------------|---|--------|-----|-----|-----|------|
| 112. | Hetu-bindu-ţīkā . | | | | | 120 |
| 113. | Vāda-nyāya-vyākhyā | | • • | • • | | 120 |
| 114. | Sambandha-pariksā-tikā | | | | | 120 |
| 115. | Ālambaņa-parīksā-tīkā | | | | | 120 |
| 116. | Santānāntara-siddhi-tīkā | | | | | 121 |
| 117. | | | | | | 121 |
| 118. | His Wanderings | | | | | 122 |
| 119. | | | | | | 123 |
| 120. | His Date Nyāyāloka-siddhi | | | | | 123 |
| 121. | T | | | | | 123 |
| l 22. | Pramāna-vārtika-vrtti | | | | | 124 |
| 123. | Visalāmalavatī Jinendra Bodhi | | | | | 124 |
| 124. | Jinendra Bodhi | | | | | 124 |
| 125. | | | | | | 124 |
| 126. | Vāda-nyāya-vrtti-vipancitār | tha | | | | 125 |
| 127. | Tattva-samgraha-kārikā | • • | | | | 125 |
| 128. | Subject of the work | | | | | 126 |
| 129. | Kamala-śīla | | | | | 129 |
| 130. | Nyāva-bindu-pūrva-pakse-sa | nnksin | ta | | | 129 |
| 131. | Kamala-sīla Nyāya-bindu-pūrva-pakṣe-sa Tattva-samgraha-pañjikā Kalvāna Raksita | | | , , | | 130 |
| 132. | Kalyāņa Raksita | | | | | 130 |
| 133. | Vāhyārtha-siddhi-kārikā | | | | | 130 |
| 134. | | | | | • | 130 |
| 135. | Anyāpoha-vicāra-kārikā | | • • | • • | • | 130 |
| 136. | Īśvara-bhaṅga-kārikā | | | • | • • | 130 |
| 137. | Dharmottarācārya | | | | • • | 131 |
| 138. | Nyāva-hindu-tīkā | • • | | | • • | 131 |
| 139. | Nyāya-bindu-tīkā Pramāņa-parīkṣā | • • | | | • • | 132 |
| 140. | Apoha-nāma-prakarana | •• | | | • • | 132 |
| 141. | Pāra-loka-siddhi | • | | | | 132 |
| 142. | Ksana-bhanga-siddhi | • · | | | • • | 132 |
| 143. | Pramāņa-viniscaya-tīkā | •• | | | | 132 |
| 144. | Muktā-kumbha | | | | • • | 133 |
| 145. | Kşana-bhanga-siddhi-vyākh | | | | • • | 133 |
| 146. | Aroata | • | | | • • | 133 |
| 147. | Arcata Hetu-bindu-vivarana | • • | | | • • | 133 |
| 148. | | • • | | | • • | 134 |
| 149. | Dāna-šīla Pustaka-pāṭhopāya | • • | | | • • | 134 |
| 150. | Jina Mitra | • • | | • • | • • | 135 |
| 151. | 37 - 1 · 1 · 1 · 1 | • • | | • • | • • | 135 |
| 151. | Prajňākara Gupta | • • | | • | • • | 135 |
| 153. | Pramāņa-vārtikālankāra | • • | | • • | • • | 135 |
| 155. 154. | Q.1 i 11 - 17 | - • | | • • | • • | 136 |
| 155. | Sanavaiamona-niscaya Acārya Jetari | • • | | | • • | 136 |
| 156. | IT! . 3 . 4 . | • | | • | • | |
| 100. | His date | | | | • . | 136 |

| | | | | PAGE |
|----------------------------|--------|-----|------------|-------------|
| Hetu-tattva-upadeśa | | | | 136 |
| Dharma-dharmi-viniscaya | | | | 136 |
| Bālāvatāra-tarka | | | | 137 |
| Pramāņa-vārtikālankāra-tīl | | | | 137 |
| Jina | | | | 137 |
| Jñāna-śrī | | | | 137 |
| Pramāņa-viniscaya-tīkā | | | | 138 |
| Kārya-kāraņa-bhāva-siddhi | | | | 138 |
| Tarka-bhāsā | | | | 138 |
| Ratnavajra | | | . . | F3 9 |
| Yukti-prayoga | • | | | 139 |
| Ratnākara Santi and Ratn | akīrti | | | 140 |
| Vijñapti-mātra-siddhi | | | | 140 |
| Antar-vyāpti | | | | 140 |
| T7-1 | | | | 141 |
| Yamāri | • • | | | 141 |
| Pramāna-vārtikālankāra-tī | | | | 141 |
| Sankarānanda | | | | 142 |
| Pramāņa-vārtika-tīkā | | | | 142 |
| Sambandha-parī kṣānusāra | | | | 142 |
| Apoha-siddhi | | | | 143 |
| Pratibandhasiddhi | • • | | | 144 |
| APPENI | OIX A. | | | |
| The University of Naland | ā | | •• | 145 |
| APPENL | 01X B. | | | |
| The Pala Kings | •• | •• | •• | 148 |
| APPENI | OIX C. | | | |
| The University of Vikram | asilā | , . | • • | 150 |

PREFACE.

WITH the object of drawing the attention of scholars to the vast literature of the Mediæval school of Indian Logic, I have in the present thesis embodied the results of some of my researches into it. The Mediæval Logic of India is divided into two principal systems, viz., the Jaina and the Buddhist. The materials of the Jaina portion of my thesis were derived from several rare Jaina manuscripts procured from Western India and the Deccan. I have also used the Jaina manuscripts of the Asiatic Society of Bengal and the numerous Jaina works printed in Bombay, Benares and Calcutta. From the footnotes of my thesis it will be evident that I have frequently used Professor Peterson's Reports of Operations in Search of Sanskrit manuscripts in the Bombay Circle. Though the Professor has said nothing in particular about Logic and Logicians, he has given a general index of Jaina authors which has been of the greatest use to me. I have not heard of any scholar who has vet written any special account of the Jama Logic. Dr. Herman Jacobi's "Eine Jaina-Dogmatik" printed in Leipzig is an annotated translation of Umāsvāti's Tattvārthādhīgama Sūtra, an ancient Jaina work on general philosophy and not a special treatise on Logic. A short time ago I sent a proof of my account of the Jaina Logic to Dr. Jacobi who very graciously returned it with a few marginal glosses which have been most thankfully accepted and embodied in the foot-notes of this thesis.

To show how generously that most eminent authority on Jainism condescended to help me, I quote here the

[!] Some of these researches were published in the "Journal" of the Asiatic Society of Bengal during the last two years.

xiv PREFACE.

letter which he wrote in communicating to me his suggestions:

Bonn, 21st October, 1907.

Niebuhrstrasse 59.

DEAR SIR,

I have received your kind letter and the proofs of the Jaina Logic, and I heartily congratulate you on the work you have done. It will prove very useful, for you have brought together a mass of information which is not of easy access to many. In looking over the proofs I have made some marginal glosses to show you where I think you might alter your statement. Of course, everything is left to your decision.

I shall be glad to see your whole book, as I take great interest in Indian Logic and I have myself written an article on it principally for the information of our Logicians who as a rule know nothing about what has been done in this branch of Philosophy by Indian thinkers. I shall therefore feel obliged if you can spare me a copy of your work.

With kind regards,

I am,
Yours sincerely,
H. JACOBI.

A proof of the Jaina Logic was also sent to two oriental authorities on Jainism—Muni Dharmavijaya and his pupil Sri Indravijaya at Benares. I owe them a great debt of gratitude for the kind assistance which they cheerfully rendered to me by going through the proof and offering certain suggestions and observations which have been incorporated in the foot-notes of this thesis.

As to the Buddhist Logic, no systematic information is available from Pāli texts as there is not a single regular treatise on Logic in the Pāli language; but references to ancient Brahmanic Logic can be gleaned from the publications of the Pali Text Society of London and also from other Pali works printed elsewhere. The Buddhist Sanskrit works on Logic of the Middle Age are now almost extinct in India. A few of them, which are available in Chinese versions, have been noticed by Dr. Sugiura in his "Hindu Logic as preserved in China and Japan." But almost all the Buddhist Sanskrit works on Logic

are carefully preserved in faithful translations in Tibet. materials of that portion of my thesis, which deals with Buddhist Logic, were chiefly derived from the Hodgson Collection of Tibetan xylographs deposited in the India Office, London, and the large number of Tibetan block-prints brought down to Calcutta from Gyantse during the British Mission to Tibet in 1904. I also consulted almost all the Tibetan manuscripts and block-prints bearing on Logic that lie hidden in the Tibetan monasteries of Labrang and Phodang in Sikkim which I visited during May and June 1907.1 For the historical account of the Buddhist authors I have chiefly depended on Lama Tārānātha's Tibetan history of Indian Buddhism translated into German by A. Schiefner under the designation of "Geschichte des Buddhismus," and the Tibetan historical work called Pag-sam-jonzang edited in the original Tibetan by Rai Sarat Chandra Das, Bahadur, C.I.E., in Calcutta. Some most important historical facts regarding the Buddhist Logicians and their works have been discovered from the colophons at the end of each of the Tibetan works which I have examined.

It was mainly through the influence of Mr. F. W. Thomas that I was enabled to borrow the Tibetan xylographs of the India Office, London, and I avail myself of this opportunity of acknowledging my humble appreciation of the generosity of that distinguished scholar. My respectful thanks are also due to the Government of India, who kindly lent me several block-prints out of the vast Tibetan collection brought down to Calcutta by the Tibet Mission of 1904. I should be guilty of great ingratitude if I were not to mention my obligations to Mr. A. Earle, I.C.S., Director of Public Instruction, Bengal, Mr. C. H. Bompas, I.C.S., Deputy Commissioner,

¹ Subsequently in October 1908 I visited Pamiangchi, which is another very old monastery in Sikkim, where all facilities were kindly afforded to me by their Highnesses the Maharaja and Maharani of Sikkim as well as by Mr. Crawford, I.C.S., the then Deputy Commissioner of Darjeeling.—S. C. V.

xvi PREFACE.

Darjeeling, and Mr. Claude White, C.I.E., Political Resident, Sikkim, for the kind help they gave me in getting access to the Tibetan Monasteries of Labrang and Phodang in Sikkim.

For a time I was quite bewildered by the enormous store of material on Indian Logic which I had collected, and it took me many a month to select and classify a portion of it for the purpose of this thesis. When the compilation of the paper was finished, and the work was passing through the press, Mr. W. W. Hornell, B.A., of the Indian Educational Service, kindly undertook to revise it, but he was able to revise only the first chapter of the Jaina Logic before leaving India. Accordingly, the rest of the work was, at my request, revised by Mr. W. C. Wordsworth, M.A., of the Presidency College, Calcutta. I am deeply indebted to both these gentlemen for their kind courtesy and assistance.

Whatever the merits or the utility of the present contribution may be, it has had the rare good fortune and privilege of having been looked through by a savant with whom it would be an impertinence to name in the same breath any other living authorities, oriental or occidental, on Indian philosophy. This savant, whose learning is equalled by his modesty and willingness to assist beginners in their uphill work, is no other than our revered Dr. G. Thibaut, M.A., Ph.D., D.Sc., C.I.E., now Registrar of the Calcutta University, which post may he fill long so that our countrymen may continue to derive benefit from his vast erudition.

SATIS CHANDRA VIDYABHUSANA.

INTRODUCTION.

Logic is generally designated in India as Nyāya-śāstra. It is also called Tarka-śāstra, Hetu-vidyā, Pramāṇa-śāstra, Ānvīkṣikī and Phakkikā-śāstra.

Indian Logic may be divided into three principal schools, viz., the Ancient (600 B.C.—400 A.D.), the Mediæval (400 A.D.—1200 A.D.), and the Modern 1200 A.D.—1850 A.D.). The

Nyāya-sūtra by Akṣapāda Gautama is the foremost, though by no means the first, work on Logic of the Anci nt School; the Pramāṇa-samuccaya by Dignāga is a representative work of the Mediæval School, while the Tattva cintāmaṇi by Gaṇgeśa Upādhyāya is the main text-book of the Modern School. These three works have, since their composition, enjoyed a very wide popularity, as is evident from the numerous commentaries that have from time to time centred round them. A few of the commentaries are mentioned below:—

The Ancient School of Logic.

Text.

1. Nyāya-sūtra by Akṣapāda Gautama.

Commentaries.

2. Nyāya bhāsya by Vātsyāyana.

3. Nyāya-vārtika by Udyotakara.

4. Nyāya-vārtika-tātparya-tīkā by Vācaspati Miśra.

5. Nyāya-vārtika-tātparya-tīkā-parisuddhi by Udayanācārya.

6. Nyāyālankāra by Sri Kantha.

7. Nyāya-vṛtti by Abhayatilakopādhyāya.

8. Nyāya-vṛtti by Viśvanātha.

The Mediæval School of Logic.

Text.

1. Pramāņa-samuecaya by Dignāga.

Commentaries.

- 2. Pramāna-samuccaya-vrtti by Dignāga.
- 3. Pramāņa-vārtika-kārikā by Dharmakīrti
- 4. Pramāņa vārtika-vrtti by Dharmakirti.
- 5. Pramāṇa-vārtika-pañjikā by Devendrabodhi.
- 6. Pramāna-vārtika-panjikā-tīkā by Sākyabodhi
- 7. Pramāņa-vārtika-vṛtti by Ravi Gupta. [drabodhi.
- 8. Pramāna-samuccaya-tikā (Visālāmalavati-nāma) by Jinen-

- 9. Pramāna-vārtikālankāra by Prajnākara Gupta.
- 10. Pramāna-vārtikālankāra-tīkā by Jina.
- 11. Pramāna-vārtikālankāra by Yamāri.
- 12. Pramāna-vārtika-tīkā by Sankarānanda.

The Modern School of Logic.

T'c rt.

1. Tattva-cintāmaņi by Gangeśa Upādhyāya.

Commentaries.

- 2. Tattva-cintāmaņi Prakāśa by Rucidatta.
- 3. Tattva Aloka by Jayadeva Miśra.
- 4. Tattva Didhiti by Raghunatha Siromani.
- 5. Tattva Rahasya by Mathuranatha.
- 6. Tattva Dipani by Krsnakanta.
- 7. Tattva Ţīkā by Kanāda Tarkavāgīśa.
- Tattva Āloka-sāra-mañjarī by Bhavānanda.
 Tattva Āloka-darpana by Maheśa Thakkura.
- 10. Tattva Aloka-kantakoddhāra by Madhu Sūdana Thakkura.
- 11. Tattva Āļoka-rahasya by Mathurānātha. [pati
- 12. Tattva Didhiti vyākhvā-vivecana by Rudra Nyāyavācas-
- 13. Tattva Didhiti-tippani by Jagadiśa.
- 14. Tattva Didhiti-tikā by Gadādhara.
- 15. Tattva Didhiti-sāramanjarī by Bhavānanda.
- 16. Tattva Bhavānandī vyākliyā by Mahādeva Pandita.
- 17. Tattva Kāliśankari-patrikā by Kāliśankara.
- Tattva Cāndrī-patrikā by Candra Nārāyana.
 Tattva Raudrī-patrikā by Rudra Nārāyana.

etc. etc. etc

Besides these there are numerous other texts and commentaries on Logic which belong to one or another of the three schools mentioned above.

I shall say here nothing about the ancient and modern schools of Logic, my whole attention will be devoted to the mediæval school alone.

It is perhaps known to very few scholars that the Mediæval Logic was almost entirely in the hands of

that the Mediæval Logic was almost entirely in the hands of the Jainas and Buddhists. For one thousand years, from 600 B.C. to 400 A.D., the Jainas and Buddhists were fully occupied in questions of metaphysics and religion though there are occasional references to Logic in their works of that period. At about 400 A.D. began an epoch when they seriously took up the problems of Logic, and all the text-books on the Jaina and Buddhist systems of Logic date at or after that time. Ujjaint in Malwa and Valabhi in Guzerat were the scenes of activity of the Jaina Logicians of the Svetāmbara sect. The Digambaras flourished principally in Pātaliputra and Drāvida

(including Karṇāṭa) about the 8th century A.D. The Nyāyā-vatāra by Siddhasena Divākara, dated about 533 A.D., was the first systematic work on the Jaina Logic.

The real founders of the Mediæval Logic were the Buddhists.

The first batch of the Buddhist Logicians The Buddhist system came principally from Gandhara (modern of Mediæval Logic. Peshwar) on the Puniab Ayodhyā (Oudh) was the scene of their activity. tunately we have not before us any of the original Sanskrit works on Logic produced by them. We may, however, form an approximate estimate of their Logic from the works on the Yogācāra philosophy by Maitreya, Asanga and Vasubandhu recovered from the Chinese sources. About 500 A.D.1 the Huns conquered Gandhara, and their leaders Mihirakula and others perpetrated terrible atrocities on the Buddhists to the great detriment of Buddhistic studies there. Asanga and Vasubandhu (and perhaps Maitreya too) passed the best days of their lives in Ayodhyā and wrote most of their works there. King Vikramāditya who reigned in Ayodhyā about 480 A.D.2 was at first a patron of the Samkhya philosophy but afterwards greatly supported Buddhism through the influence of Vasubandhu. Bālāditya, who succeeded Vikramāditya to the throne of Ayodhya, was a pupil of Vasubandhu and a supporter of Buddhism. The Buddhist Logic of the Yogacara school appears thus to have originated in Ayodhyā and flourished there during 400-500 A.D. under Kings Vikramāditya and Bālāditya.

The second batch of the Buddhist Logicians flourished in Drāvida (the Deccan) during 500-700 A.D. when the Buddhist kings of the Pallava dynasty were supreme there. Ācārya Dignāga, about 500 A.D., was the oldest logician of Drāvida whose works are still extant, in faithful translations. Another logician of eminence of the Drāvida school was Dharmakīrti who lived about 650 A.D. His Nyāyabindu, and a commentary on it by Dharmottara called Nyāya-bindu-tīkā, are the only systematic works on Buddhist Logic which have come down to us in their Sanskrit originals. They would have certainly disappeared from India like a hundred other works of their kind, had it not been that a Jaina logician named Mallavādin had written a gloss on them. Seeing that the gloss would be useless without the text and commentary, the Jainas preserved all three. The Nyāyabindu, together with the commentary, preserved

¹ Vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. I., pp. xv, 168.

² Vide Takakusu's Paramārtha's Life of Vasubandhu published in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, January 1905, p. 36.

among the palm-leaf manuscripts in the Jaina temple of Santinātha, Cambay, has been published by Professor Peterson in the Bibliotheca Indica series of Calcutta. With the downfall of the Pallavas, Logic disappeared from Drāvida. Vinayāditya of the Western Chalukya dynasty about 696 A.D. put a check to the power of the Pallavas, while Vikramāditya II, of the same dynasty, about 733 A.D., seized Kāncī, their capital. The Chalukyas were Vaiṣṇavas, and their conquest of Kāncī was really a triumph of the Brahmanic religion over Buddhism. At about 788 A.D. the great Brāhmana preacher Sankarācārya appeared, and Buddhism became gradually extinct in Drāvida.

The third and fourth batches of Buddhist Logicians flourished simultaneously in Kāśmira and Bengal (including Behar). Ravi Gupta, 725 A.D., was the earliest logician of the Kāśmīra school. At this time Kāśmīra was governed by the illustrious King Lalitāditva or Muktāpīda (about 695—732 AD.), who built a large vihāra with a stūpa at Huskapur.2 At the same time there was a great demand for Sanskrit Buddhist books in Tibet with the thorough opening of her intercourse with India in the 8th century A.D. King Khri-ral (otherwise known as Ral-pa-can) in the 9th century A.D. employed numerous Indian Pandits and Tibetan Lamas to translate Sanskrit books into Tibetan. The propaganda of translations went on in full force up to about 1101A.D., when the glorious reign of SrI Harsa Deva (1089-1101 A.D.), who was a patron of learning, both Brahmanic and Buddhistic, 3 came to a close. The Buddhist monasteries and Tibetan Lamas did not altogether disappear from Kāśmīra until the establishment of Mahomedan rule in that country in 1341 A.D., when her intercourse with Tibet ceased. Henceforth we hear no more of logicians flourishing in Kāśmira.

In Bengal and Behar Logic flourished extensively during 700-1200 A.D., when the Buddhist kings of the Pāla dynasty reigned there. Candra Gomin, about 700 A.D., was the first logician of the Bengal school. With the downfall of the Pāla kings in 1139 A.D., Buddhist Logic disappeared from Bengal. The splendid monastery of Vıkramasilā is said to have been destroyed in 1203 A.D. (vide Appendix C).

In the Middle Age there were several important universities or centres of Buddhistic learning in India, such as Kāñcīpura, Nālandā, Odantapurī, Srī Dhānyakataka, Kāśmīra and

Vide Sewell's "Antiquities of Madras," vol. 11, pp. 150-151.

² Vide Stein's translation of Rajavarangini IV-188.

³ Dharmottarācārya's Pāralokasıddhi was translated into Tibotan in Kāsmīra at the monastery of Ratnarasmi during the reign of Srī Harşa (vide Tangyur, Mdo, Ze, folio 270).

The Buddhist logicians belonged to one or another Vikramasilā. of these universities or centres of learning. On the extinction of these Buddhistic universities, the Brahmanic universities of Mithilā and Nadia grew up. These last, in their turn, are now declining, being unable to make headway against the more scientific methods of study which are developing under the influence of the Calcutta University, established by the Imperial British Government in 1857, with the object of en couraging Eastern and Western learning side by side. In spite of strenuous efforts made by the British Government to foster study and research in Indigenous Logic, it is still at its lowest ebb, as the degrees of a modern University are held in greater regard than those of the archaic Universities of Mithila and Nadia: and as it is often alleged that in comparison with the Logic of Europe, Indian Logic though subtle is cumbrous in its method, forbidding in its language, and less profitable in its material results.

SATIS CHANDRA VIDYABHUSANA.

CALCUTTA,
December, 1907.

BOOK I.

The Jaina Logic.

CHAPTER I.

THE ERA OF TRADITION (circa 607 B.C.-453 A.D.).

THE JINAS AND MAHAVIRA.

1. The Jainas maintain that their religion is coeval with time. According to their traditions there appeared at various periods in the world's history sages whom they call Jinas, conquerors of their passions, or Tīrthankaras, that is, builders of a landing place in the sea of existence. These sages preached the religion of the Jainas. The Jainas hold that in every cycle of time (utsarpinī-or avasarpinī-kāla) 24 sages are born. The first sage of the last series was Rsabhadeva, the 24th was Mahāvira or Vardhamāna, who attained nirvāṇa at Pāvā in 527 B.C.! The scriptures which the Jainas obey are founded on the teachings of Mahāvīra. No one disputes this, and scholars generally regard Mahāvīra as the founder of Jainism, and hold that the theory of the existence of Jinas previous to him, except Pārśvanātha the 23rd Tīrthankara, was a subsequent invention.

According to Vicārasrenī of Morutunga, Tīrthakalpa of Jinaprabha Sūrı, Vicārassāra-prakarana, Tapāgaccha-paṭṭāvalī, etc., of the Svetāmbara sect Mahāvira attained niīvāna 470 years before Vikrama Samvat or in B.C. 527.

Dr. Jacobi of Bonn, in his letter dated the 21st October 1907, kindly writes to me as follows:—

[ा] प्राप्त वस प्राप्त जुदं गिमश वीर्षितुद्दी सगराजो। (Trilokasāra of the Digambara sect). ''Mahāvīra attamed nirvāṇa 605 years 5 months before the Saka King (78 A.D.) came to the throne,'' that is, in 527 B.C. As he lived 72 years he must have been born in 599 B.C.

[&]quot;There is however another tradition which makes this event [viz. the nirvāna of Mahāvīra] come off 60 years later, in 467 B.C. (see Parisista Parvan, Introduction, p. 4 f.; also Kalpasūtra, Introduction, p. 8). The latter date cannot be far wrong because Mahāvīra died some years before the Buddha whose death is now placed between 470-480 B.C."

THE SVETAMBARAS AND THE DIGAMBARAS.

2. The Jainas are divided into two sects, the Svetāmbaras, those who are clothed in white, and the Digambaras, those who are sky-clad or naked. The Svetāmbaras claim to be more ancient than the Digambaras, whose existence as a separate sect is said to date from A.D. 82,1 i.e., 609 years after the attainment of nirvāņa by Mahāvīra.

INDRABIIŪTI GAUTAMA (607 B.C.—515 B.C.).

3. The teachings of Mahāvīra as represented in the scriptures are said to have been collected by a disciple of his called Indrabhūti. This disciple is often known as Gautama or Gotama. He was a Kevalin and the first of the Gana-dharas for leaders of the assembly. His father's name was Brāhmaṇa Vasubhūti, and his mother's name was Brāhmaṇi Pṛthvī. He was born in

स्ते विज्ञसभूपासे षट्चिंग्रद्धिके ग्रते। गतेऽस्तानासभूकोके सतं श्वेताम्बराभिधस्। 2 स्वयं सत्यविसम्पद्धं श्रुतायं जिनभावितस्। द्वाद्शाक्षम् स्वर्तं सोपाइंगीतमी यथात्॥

(Jaina Harryamsa Purāņa)

Indrabhūti (fautama and Sudharma Svāmi were the joint compilers of the Jaina scriptures. But Indrabhuti became a Kevalin or attained kevalajūāna (absolute knowledge) on the day on which Mahavira attained nirvāna. He did not therefore occupy the chair of his teacher Mahāvīra, but relinquished it to his spiritual brother Sudharma Svāmi. Cf. इन्ह्रभूति प्रकृतीवा विपदी बाइर्त् प्रमु:॥ (Hemacandra's Mahāvīracarita, chap. v, MSS. lent by Muni Dharmavijaya and Indravijaya).

 3 Possessor of absolute knowledge. For a further reference to this title see R. G. Bhandarkar's Report, 1883-84, p. 122

 यत्प्रज्ञाप्रसरेऽतिशाधिन तथा प्राक्षेयश्रैकोञ्चले कीनो गौरचरिचपद्यपि यथा सद्यः पदेः कोटिशः।
 चङ्गोपाङ्गमचोद्या समभवक्रेकोक्यसंचारियो वन्द्रोऽसौ गण्यः व्याक्षयग्रकांकोक्यस्तिः सतास् ॥ ॥॥

> (Siddhajayanti-caritra-ţīkā, noticed in Peterson's 3rd Report, App. 1, p. 38.)

¹ The Svetāmbaras say:— क्यांस संघादं नवुत्तराइं तर्श्या सिक्षंग्रयस्य नीरस्य तो बोड़ियाण दिही रचनीरपुरे समुणसा। "The Digambara doctrine was proached in Rathavirapura 609 years after the attainment of nirvāṇa of Mahāvīra" (Āvašyaka nirvukti—52) But the Digambaras deny this and say that the Svetāmbaras rose in Vikrama 136 or 79 A.D. Ci. Bhadrabāhucarita IV. 55:

the village of Gorbara'i in Magadha and died at Guṇava in Rājagṛha (R ijgir) at the age of ninety-two, 12 years a ter the attainment of nirvaṇa by Mahāvira. Assum ng that Mahāvīra attained nirvaṇa in 527 B.C., Indrabhūti's birth must be assigned to 607 B.C. and his death to 515 B.C.

THE CANONICAL SCRIPTURES OF THE JAINAS.

- 4. Those scriptures of the Jainas which are generally regarded as canonical are divided into 45 siddhantas or āgamas classified as 11 Augas, 12 Upāngas, etc. "For the benefit of children, women, the old, and the illiterate," these were composed in the Ardha-Māgadhi or Prakita language. On the same principle the scriptures of the Buddhistic canon were originally written in Māgadhi or Pāli. It is maintained that originally the Augas were 12 in number. The 12th Auga, which was called the Dṛṣṭivada or the presentation of views, was written in Sanskrit.4
- 5. The Dṛṣṭivāda is not extant. It consisted apparently of five parts, in the first of which logic is said to have been dealt with. The Dṛṣṭivāda is reputed to have existed in its entirety at the time of Sthūlabhadra who, according to the Tapāgachapaṭṭāvali, died in the year in which the 9th Nanda was killed by Cindra Gupta (i.e., about 327 B.C.). By 474 A.D. the Dṛṣṭivada
 - में श्रीमक्तं मग्रधेषु गार्वर इति पामोऽभिरामः श्रिया तनोत्पन्नमधन्नचित्रमं श्रीवीरसेवाविधी। ज्योतिःसंश्रयमौतमान्वयवियत्पद्योतनद्यामण्डिं तापोत्तीर्णस्वर्णवर्णमञ्जयद्विस्तिं सर्वे॥

(Gotamastotra by Jim prabha Süri, extracted in Kāvyamālā, 7th Gucchaka, p. 110).

- ² For particulars about Indrabhūti Gautama, vide Dr. J. Klatt's Paṭṭāvali of the Kharat raga cha in the Indian Antiquary, Vol. XI, Sopt. 1882, p. 246; and Wober's Dio Handschritten-verzeichnisse der Khaighchen Bibliothek zu Bodin, pp. 983 and 1030, in which are noticed Sarvarājagan's Vṛtti on Guṇadhara-sardhu-satakam of Jinadattasūri, and Srī-paṭṭāvalī vācanā of the Kharataragaccha.
 - 3 Haribhadra-sūri, in his Daśz-vaikālika-vṛtti (Chap. III), observes:-

वालस्त्रीष्ट**रसूर्वाणां क्यां चारिनका**ङ्किणाम्। सम्पदार्थे तस्त्रज्ञैः सिद्धान्तः प्राक्टतः सृतः॥

Vardhamāna-sūrī, in his Ācāra-dinakara, quotes the following passage from Āgama:—

सुत्तूष दिष्टिवायं कालिय एक्कालियंग सिदंतं। योबालवायणस्यं पादय सुद्दयं जिनवरेतिं॥

b Vide Cūrnika of Nandī Sūtra, page 478, published by Dhanapat Sing, Calcutta, and Peterson's 4th Report on Sanskrit MSS., p. cxxxvi.

had disappeared altogether. Nothing is known as to the way in which logic was treated in the Dṛṣṭivāda.

- 6. The subject-matter of logic is touched upon in several of the 45 Prākṛta scriptures of the Jainas. In the Anuyoga-dvāra-sūtra, 2 Sthānāṅga-sūtra, Nandī-sūtra, etc., there is a description of Naya, or the method of comprehending things from particular standpoints. In the Nandī-sūtra, Sthānāṅga-sūtra, Bhagavatī-sūtra, etc., 5 there is a complete classification of valid knowledge (Pramāṇa).
- 7. The word "Hetu" is found in these Prakta scriptures, but its use in these works makes it clear that it had not at this period acquired a very definite significance. In the Sthānānga-sūtra it is used not only in the sense of reason, but also as a synonym for valid knowledge (Pramāna) and inference (Anumāna). Hetu as identical with valid knowledge (Pramāna) is stated to be of four kinds, viz:—
 - (1) knowledge derived from perception (Pratyaksa);
 - (2) knowledge derived from inference (Anumāna);
 - (3) knowledge derived through comparison (Upamāna); and
 - (4) knowledge derived from verbal testimony or reliable authority $(\overline{A}gama)$.

¹ For a full history of the l'įstivāda (called in Prakrta Ditthivāo) see Weber's Sacred Literature of the Juns, translated by Weir Smyth in the Indian Antiquary, Vol. XX, May 1891, pp. 170-182

² In the Anuvoga-dvara-sutra Naya is divided into seven kinds, viz., naigama. samgraha, vyavahāra, 1µ-sutra, šabda, samubhirāḍha and avambhuta. For an explanation of these terms see Umāsvāti (in articles 21-26), who instead of dividing Naya into seven kinds, first divides it into five kinds, and then subdivides one of the five, viz., šabda, into three kinds.

³ In the Sthinanga-sutra knowledge (jūūna) is divided into (1) Pratyaksa (direct knowledge) and (2) Paroksa (indirect knowledge). Pratyaksa again is subdivided as Kevalu jūūna (entire knowledge) and Akevala jūūna (defective knowledge). The Akevala jūūna is subdivided as avalhi and manah-paryāya. The Paroksa jūūna is subdivided as abhinibodha (mati) and šruta. Vide the Sthānānga-sutra. pp. 45-48. and the Nandī-sūtra. pp. 120-134; both published by Dhanapat Sing and printed in Calcutta. See also what is said in the account of Umūsvāti seq.

च्या देक चल्ला प्रवृत्त तं जहा प्रवृत्त चनुमाणे लयमे चागरे। च्या हेज चल्ला दे प्रवृत्ते तं जहा चला तं चला मं देक चला तं। प्रविद्य से हेज प्रतिय सं हेक प्रतिय तं प्रतिय से देक॥

(Sthenunga-sutra, pp. 309-310, published by Dhanapat Sing and printed in Calcutta.)

- 8. When Hetu is used in the sense of inference $(Anum\bar{a}na)$, it is classified according to the following types:—
 - (1) This is, because that is: There is a fire, because there is smoke.
 - (2) This is not. because that is: It is not cold, because there is a fire.
 - (3) This is, because that is not: It is cold here, because there is no fire.
 - (4) This is not, because that is not: There is no śi mśapā tree here, because there are no trees at all.

Внадкавани (433—357 В.С.).

- 9. An elaborate discussion of certain principles of logic is found in a Prakrta commentary on the Daśa-vaikālika-sūtra called Daśavaikālika-nīryukti. This commentary was the work of one Bhadrabāhu² of the Prācina Gotra. For 45 years this sage lived the ordinary life of the world; 17 years he passed in the performance of religious vows (Vratas) and for 14 years he was acknowledged by the Jainas to be the foremost man of his age (Yuga-pradhāna). He was a Srutakevalin, that is, one versed in the 14 Purvas of the Drstivada.
- 10. The abovementioned incidents are generally accepted as facts in the life of the author of the commentary. There is some doubt, however, as to the time in which he lived. According to the records of the Svet imbaras he was born in 433 B.C. and died in 357 B.C. The Digambaras, however, maintain there were two Bhadrabahus; that the first lived to 162 years from the nirvāna

¹ Vide footnote 4 on page 4.

² For particulars vide D. J. Klatt's Kharataragaccha-paṭṭāvalī in the Indian Antiquary, Vol XI, Sept. 1882, p. 247; Weber II, p. 999; Peterson's 4th Report on Sanskrit MSS., p. lxxxiv; and Dr. H. Jacobi's edition of the Kalpasūtra, Introduction, pp. 11-15.

³ In the Vicara-ratna-samgraha by Jayasoma-sari noticed by Peterson in his 3rd Report on Sanskrit MSS., pp. 307-308, Bhadrabahu is included among the Yuga-pravaras or Yuga-pradhanas

⁴ For further particulars about this title see R. G. Bhandarkar's Report, 1883-84, p. 122.
5 In Weber II, p. 999, in which the Gurvāvalī-sūtra of Mahopādhyāya

⁵ In Weber II, p. 999, in which the Gurvāvali-sūtra of Mahopādhyāya Dharmasāgaragaņi is noticed, we read of Sambhūtivijaya and Bhadrabāhu "Ubhau-pi sasthapattadharau."

[ि] अपिश्वमः पूर्वस्तां दितीयः
श्रीभद्रवाञ्चस्य (१) गुदः शिवाय ।
छत्वोपसर्गादिस्तस्य यो
ररत्त सङ्घं सरणाचितां ऋः ॥ १२ ॥
निर्युद सिद्यान्तपयोधिराप
स्वर यस वीरात सन्गेन्दवर्ष १०० ।

of Mahāvīra, that is, up to 365 B.C., and that the second 1 to 515 years from the nirvāna of Mahāvīra, that is, up to 12 B.C. They do not state definitely which of these Bhadrabāhus was the author of the Da'avaikālika-niryuktī, but they hold the view that the second was the author of several of the existing Jaina works. The Svetāmabara records do not contain any mention of the second Bhadrabāhu, but in the Rsimandala-prakaraṇa-vṛtti,² a commentary of the Svetāmbaras, and in the Caturvimśati prabandha it is stated that Bhadrabāhu lived in the south in Pratisṭināna and was a brother of Varahamihira. Now Varahamihira is popularly believed to have lived in the first century B.C. It is possible therefore, even according to the Svetāmbaras, that the Da'avaikālika-niryuktī was the work of a commentator who, to rely on popular belief, lived about the time of the opening of the Christian era.

11. Whenever he lived, the author of the Daśavaikālikaniryukti also wrote commentaries (niryuktis) on the following Jaina scriptures:—Āvaśvaka-sūtra, U tarādhyayana-sūtra, Acārānga-sūtra, Sūtra-kṛtanga-sūtra, Daśāsruta-skandha-sūtra, Kalpa-sūtra, Vyavahāra-sūtra, Sūrya-prajūapti-sūtra, and Rṣibhāsita-sūtra.

12. Bhadrabahu did not set himself to analyse knowledge with the object of evolving a system of logic. His object was to illustrate the truth of certain principles of the Jaina religion. To do this, he, in his Daśavaikālika-niryukti, selaborated a syllogism consisting of ten parts (daśārayava-rākya) and then demonstrated how the religious principles of Jainism satisfied the conditions of this formula.

तथाविनेयः छतविस्रभदः

श्रीक्ष्रलभद्रक ददातु गर्मा ॥ १४॥

Gurvāvalī by Munisundara-sūri published in the Jaina Yaśovijaya-granthamālā of Benares, p. 4.

1 Vide the Sarasvatī-gaccha-paṭṭāvalī in the Indian Antiquary, October 1891, and March 1892.

² Vide Dr. R. G. Bhandarkur's Reports on Sanskrit MSS, during 1883-84, p 138. Bhadrabāhu must have lived as late as the 6th century A.D., if he was really a brother of that Varāhamihira who was one of the nine Gems at the court of Vikramāditya. Munis Dharmavijaya and Indravijaya maintain that Bhadrabāhu's brother was not the same Varāhamihira that adorned the court of Vikramāditya.

उते उपद्वत विभन्नी ने उन्विभनी विवक्खपिड़ मेची। दिहंती स्वासंका तथा दिसे कि निगमणं च॥१४२॥

Daśavaikālika-niryukti, p. 74. published under the patronage of Dhanapat Sing by the Nirnaya Sāgara Press, Bombay; and Dr. E. Loumann's edition of Daśavaikālikaniryukti, p. 649.

- 13. The following is an example:—
- (1) The proposition (*Pratijāā*),—" to refrain from taking life The Syllegism. is the greatest of virtues."
- (2) The limitation of the proposition (*Pratijāā-vibhakti*)—"to refrain from taking life is the greatest of virtues according to the Jaina scriptures."
- (3) The reason (*Hetu*),—'to refrain from taking life is the greatest of virtues, because those who so refrain are loved by the gods and to do them honour is an act of merit for men."
- (4) The limitation of the reason (*Hetu-vibhakti*),—" none but those who refrain from taking life are allowed to reside in the highest place of virtue."
- (5) The counter-proposition (*Vipuksa*),—" but those who despise the Jaina scriptures and take life are said to be loved by the gods and men regard doing them honour as an act of merit. Again, those who take life in sacrifices are said to be residing in the highest place of virtue. Men, for instance, salute their fathers-in-law as an act of virtue, even though the latter despise the Jaina scriptures and habitually take life. Moreover, those who perform animal sacrifices are said to be beloved of the gods."
- (6) The opposition to the counter-proposition (Vipakṣa-pratiṣedha),—" those who take life as forbidden by the Jaina scriptures do not deserve honour, and they are certainly not loved by the gods. It is as likely that fire will be cold as that they are loved by the gods or that it is regarded by men as an act of merit to do them honour. Buddha, Kapila and others, really not fit to be worshipped, were honoured for their miraculous sayings, but the Jaina Tirthankaras are honoured because they speak absolute truth."
- (7) An instance or example (*Dṛṣṭānta*),—" the *Arhats* and *Sādhus* do not even cook food, lest in so doing they should take life. They depend on householders for their meals."
- (8) Questioning the validity of the instance or example $(\bar{A} \dot{s} u \dot{n} k \bar{a})$,—"the food which the householders cook is as much for the *Arhats* and $S\bar{a}dhus$ as for themselves. If, therefore, any insects are destroyed in the fire, the *Arhats* and $S\bar{a}dhus$ must share in the householders' sin. Thus the instance cited is not convincing."
- (9) The meeting of the question ($\bar{A}sank\bar{a}$ -pratisedha),—"the Arhats and $S\bar{a}dhus$ go to householders for their food without giving notice and not at fixed hours. How, therefore, can it be said that the householders cooked food for the Arhats and $S\bar{a}dhus$? Thus the sin, if any, is not shared by the Arhats and $S\bar{a}dhus$?"

- (10) Conclusion (Nigamana),—" to refrain from taking life is therefore the best of virtues, for those who so refrain are loved by the gods, and to do them honour is an act of merit for men."
- 14. Bhadrabāhu in his Sūtra-kṛtāṅga-niryukti! mentions another principle of the Jaina logic called Syādvāda (Syat "may be" and Vāda "assertion," or the assertion of possibilities) or Saptabhaṅgī-naya (the sevenfold paralogism).

15. The $Sy\bar{\alpha}dv\bar{\alpha}da^2$ is set forth as follows:—(1) May be, it is, (2) may be, it is not, (3) may be, it is and it is not, (4) may be, it is indescribable, (5) may be, it is and yet is indescribable, (6) may be, it is not and it is also indescribable, (7) may be, it is and it is not and it is also indescribable.

Umāsvāti (1—85 A.D.).

17. This Umāsvāti is better known as Vacaka-śramana: he was also called Nāgaravācaka, this title being probably a reference to his Sākhā (spiritual genealogy). The Hindu philosopher Mādhavācārya calls him Umāsvāti-vācakācārya. He lived for 48 years, 8 months, and 6 days and attained nirvāna in Samvat

ष्विचययं किरियाणं
 ष्विकिरियाणं च चीद चुलसीति।
 ष्ठभाषिय समृद्धी
 वेषदयाणं च बमौसा॥ २१॥

(Sutra-kṛtāṅga-niryukti, skandha l, adhyāya 12, p. 448, edited by Bhim Sing Manak and printed in the Nirnaya Sāgara Press, Bombay.)

3 Vide Sarvadarsana-sangraha, chapter on Jama darsana.

Cf. Sthananga Sutra, p. 316, published by Dhanapat Sing, Benares edition.

² Cf. Sarvadarsana samgraha translated by Cowell and Gough, p. 55. For full particulars about Syādvāda or Saptabhangī naya *ride* Saptabhangī-taranginī by Vimala Dāsa printed in Bombay.

142, i.e., in 85 A.D. In the Tattvārthādhigama-sūtra Umāsvāti gives the following account of himself:—He was born in a village ca'led Nyagrodhikā, but he wrote the Tattvārthādhigama-sūtra in Pāṭaliputra or Kusumapura (modern Patna). He belonged to the Kaubhīṣaṇin-gotra. His father was Svāti and he was consequently sometimes called Svāti-tanaya. He was also known as Vatsi-sūta, because his mother was Umā of the Vatsa-gotra. In the Tīrthakalpa of Jinaprabha-sūri it is stated that Umāsvāti was the author of 500 Sanskrit prakaraṇas (treatises). He is said to have belonged to the Svētāmbara sect though, as stated in article 2 above, it is probable that the distinction between that sect and the Digambaras had not yet come into existence.

18. It has been observed in article 16 above that in the

Parokea, indirect knowledge, and Pratyakra, direct knowledge.

Tattvarthadhigama-sūtra Pramāņa fluctuates between the meanings of valid knowledge and the sources of valid knowledge. In its former sense

न्यपोधिकाप्रस्तिन विचरता पुरवर कुतुमनानि ।
 कौभीविषना स्वातितनयेन वात्मीसुतेनार्धम् ॥ ३ ॥
 चर्डद्वनं सम्मगुदक्रमेवागतं सम्प्रधार्यः ।
 दुःखानं च दुरागमविचतमति लोकमवलोक्य ॥ ४ ॥
 द्दस्वैनीगरवाचकंन सत्तानुकम्पया हम्भम् ।
 तत्त्वाधिभगमान्त्रं स्वस्मास्वातिन। मालस्म् . ॥ ॥

(Tattvārthādhigama-sūtra. Chap. X, p. 233, edited by Mody Keshavlal Premehand in the Bibliotheca Indica Series, Calcutta.)

A similar account is found in the commentary on the Tattvārthā-dhigama-sūtra by Siddhas-nagani. This account is mentioned by Peterson in his 4th Report on Sanskrit Manuscripts, p. xvi.

For Further particulars about Umāsvāti see Peterson's 4th Report on Sanskrit Manuscripts, p. xvi, where he observes that in the Digambara Paṭṭāvalī published by Dr. Hoernle in the Indian Antiquary, XX, p. 341. Umāsvāmin (probably the same as Umāsvāti) is included as the sixth Digambara Sūrī of the Sarasvatī-gaccha, between Kundakunda and Lohācūrya II. According to Dr. Hoernle (vide "Two Paṭṭāvalīs of the Sarasvatīgaccha" by Dr. Hoernle in the Indian Antiquary, Vol. XX, October 1891, p. 351) the date of Umāsvāmin's accession is 44 A.D., and he lived for 84 years, 8 months and 6 days. Dr. Hoernle adds. the Kāṣṭhāsaṅgha arose in the time of Umāsvāmin.

Umāsvāti's Tattvārthādhigama-sūtra with his bhāsya, together with Pūjā-prakaraņa, Jambudvīpa-samāsa and Prasamarati, has been published by the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, in one volume which ends thus:—

क्रतिः चिताम्बराचार्थस्य महाकवेदमास्वातिवाचकस्य इति ॥

(Jambudvīpa-samāsa, p. 38. published as Appendix C to the Tattvārthādhigama-sūtra in the Bibliotheca Indica Series.) Pramāna, according to this Sūtra, is of two kinds: (1) Parokṣa, indirect knowledge, which is acquired by the soul through external agencies such as the organs of sense, and (2) Pratyakṣa, direct knowledge which is acquired by the soul without the intervention of external agencies. Parokṣa, indirect knowledge, includes mati i and śruta, for these are acquired by the soul through the medium of the senses and the mind. Knowledge which is attained by Yoga (concentration) in its three stages of avadhi, manaḥṇaryāya and kevala is a species of Pratyakṣa, direct knowledge, because it is acquired by the soul not through the medium of the senses.

- 19. Umāsvāti contends that inference $(Anum\bar{a}na)$, comparison $(Upam\bar{a}na)$, verbal testimony or reliable authority $(\bar{A}gama)$, presumption $(Arth\bar{a}patti)$, probability (Sambhava), and non-existence $(Abh\bar{a}va)$ are not distinct sources of valid knowledge: he includes them under Parokṣa (indirect knowledge). According to his theory the majority of them are the result of the contact of the senses with the objects which they apprehend; and some of them are not sources of valid knowledge at all.
- 20. It is interesting to note that according to Umāsvāti and the earlier Jaina philosophers all sense-perceptions (visual perception, auditory perception, etc.) are indirect apprehensions in as much as the soul acquires them not of itself but through the medium of the senses. The words Paroksa and Pratyaksa are thus used by these authors in senses quite opposite to those which they bear both in Brāhmanic logic and in the later Jaina logic.
 - 1 Mati is knowledge of existing things acquired through the senses and the mind.

Struta is knowledge of things (past, present and future) acquired through reasoning and study.

Avadhi is knowledge of things beyond the range of our perception Manahparyāya is knowledge derived from reading the thoughts of others.

Kevala is unobstructed, unconditional and absolute knowledge.

² In the *bhāiya* on aphorism 12, of chapter 1 of the Tattvārthādhigamasūtra, **Um**āsvātī observes:—

चनुमानीपमानागमार्थापत्तिसभावाभावानिप च प्रमाणानीति केचिकान्यने तत्क्षणमेतदिति चन्चेच्ये। सर्वाच्येतानि मतिशृतयोरन्नर्भूतानि दिन्द्रयार्थसङ्किकं-निमान्तत्। (Tattvärthädlingama-sütra, p. 15).

In his bhāṣya on 1—6 of the Tattvārthādhigama-sūtra Umāsvāti observes:--

चतुर्विधमित्येके।

(Tattvārthādhigama-sūtra, p. 9.)

In his bhasya on 1-35 he mentions the four Pramanas thus:-

यथा वा प्रत्यकानुमानीपमानाप्तवचनैः प्रमाणैरेकोऽर्थः प्रमीयते खविषय -नियमात् न चता विप्रतिपत्तयो भवन्ति सङ्ख्यवादा इति ॥

(Tattvärthädhigama-sûtra, p. 35).

21. Naya is the method by which things are comprehended from particular standpoints. It is of five

Naya, the method of comprehending things from particular standpoints.

from particular standpoints. It is of five kinds:—(1) Naigama, the non-distinguished (2) Saingraha, the general, (3) Vyavuhāra, the practical, (4) Rju-sūtra, the straight expression, (5) Sabda, the verbal.

22. Naigama, the non-distinguished, is the method by which an object is regarded as possessing both general and specific properties, no distinction being made between them. For instance, when you use the word "bamboo," you are indicating a number of properties, some of which are peculiar to the bamboo, while others are possessed by it in common with other trees. You do not distinguish between these two classes of properties.

23. Samgraha, the collective, is the method which takes into consideration generic properties only,

ignoring particular properties.

24. Vyavahāra, the practical, is the method which takes into consideration the particular only. The general without the particular is a nonentity. If you ask a person to bring you a plant, he must bring you a particular plant, he can not bring plant in general.

25. Rju-sūtra, the straight expression, is the method which

considers a thing as it exists at the moment, without any reference to It is vain to ponder over a thing as it was past or its future. in the past or as it will be in the future. All practical purposes are served by considering the thing itself as it exists at the present moment. For instance, a man who in a previous birth was my son is now born as a prince, but he is of no practical use to me now. The method of Riu-sūtra recognises nothing but the entity itself (bhāvu) and does not consider the name $(n\bar{a}ma)$, the image $(sth\bar{a}pan\bar{a})$, or the causes which constituted it The fact that a cowherd is called *Indra* does not make him lord of the heavens. An image of a king can not perform the functions of a king. The causes which exist in me now and will necessitate my being born hereafter with a different body can not enable me to enjoy that body now.

These four kinds of *Pramāna* seem to refer to those in the Nyāya Sūtra of the Hindu logician Aksapāda Gautama. But the same four kinds are also referred to as sub-divisions of *Hetu* in the Sthūnānga Sūtra of the Jainas, p. 309, published by Dhanapat Sing and printed in Calcutta.

¹ नैगमसंपदयवदारक्त्यमण्डा नयाः॥ १-३४॥

26. Sabda, the verbal, is the method of correct nomenclature. It is of three kinds, viz., Samprata, the Sabda. suitable, Samabhirudha, the subtle, and Evanibhūta, the such-like. In Sanskrit a jar is called ahata. kumbha or kalasa, and these are synonymous terms. Sāmprata consists in using a word in its conventional sense, even if that sense is not justified by its derivation. For example the word "Satru" according to its derivation means "destroyer," but its conventional meaning is "enemy." Samabhirūdha consists in making nice distinctions between synonyms, selecting in each case the word which on etymological grounds is the most appropriate. Evambhūta consists in applying to things such names only as their actual condition justifies. Thus a man should not be called Sakra (strong), unless he actually possesses the Sakti (strength) which the name implies.

यथायाभिभानं मन्दः। नामादिषु प्रसिदपूर्णाच्यस्यद् चर्ये प्रत्ययः साम्प्रतः सत्यु चर्येषु चर्यम्रमः समिष्ट्रदः। यञ्जनार्थयोरेनभूत इति ॥

(Tattvarthadigama-satra, p. 32)

¹ Umāsvāti in his bhāsua on 1-35 observes :--

CHAPTER II.

THE HISTORICAL PERIOD (COMMENCING FROM 453 A.D.).

THE WRITTEN RECORDS OF THE JAINAS.

27. The teachings of Mahāvīra as contained in the Jaina Agamas are said to have been handed down by memory for several centuries until in Vira Samvat 980 or A.D. 453, they were codified in writing by Devardhi Gaṇi, otherwise known as Kṣamāśramaṇa, at a council held at Valabhi. According to this theory the authentic history of the Jaina literature commences from 453 A.D., and all that preceded that period is to be regarded as merely traditional.

SIDDHASENA DIVĀKARA (ABOUT 533 A.D.).

28. The first Jaina writer on systematic logic, during the historical period, appears to be Siddhasena Divākara. Before his time there had not perhaps existed any distinct treatise on Jaina logic, its principles having been included in the works on metaphysics and religion. It was he who for the first time laid the foundation of a science called Logic $(Ny\bar{a}ya)$ among the Jainas by compiling a treatise called Nyāyāvatāra ² in 32 short stanzas.

वस्तिपुरंति नयरे । देवहि पमुष सयससंवेषि । पुष्ये षामम सिष्टिण । नवस्य षसी षाम् वीराज॥ १ ॥

> (Sukhabodhikā Ţīkā to Kalpasūtra, p. 433, printed in Kathiwar by Hira Lal Hamsarāja.)

In Devardhi Gani's redaction of the Kalpasūtra (vide Dr. Jacobi's edition of the Kalpasūtra, p. 67) we read:—

Samanassa bhagavao Mahāvīrassa jāva savva-dukkha-ppahīnassa navavāsasayāim vikkamtaim dasamassa ya vāsa-sayassa, ayam asī ime samvaochare kāle gacchai iti (148).

² Vide No. 741 in the list of MSS. purchased for the Bombay Government as noticed by Peterson in his 5th Report, p. 289. A manuscript of the Nyāyāvatāra with Vivṛti was procured for me from Bhavanagara, Bombay, by Muni Dharmavijaya and his pupil Srī Indravijaya.

¹ Vide Dr. Klatt's Pattāvali of the Kharataragaccha in the Indian Anitquary, Sept. 1882, Vol. XI, p. 247; and Dr. Jacobi's Kalpasūtra, Introduction, p. 15. See also Vinaya Vijaya Gaṇi's commentary on the Kalpasūtra which quotes the following text:—

- 29. Siddhasena Divākara is also the famous author of the Sammatitarka-sūtra which is a work in Prākṛta on general philosophy containing an elaborate discussion on the principles of logic. This author, who belonged to the Svetāmbara sect, has been mentioned by Pradyumna Sūri (q.v.) in his Vicāra-sāra-prakaraṇa and by Jina Sena Sūri in the Adipurāṇa dated 783 A.D.
- 30. Siddhasena Divākara, who was a pupil of Vṛddha-vādi-sūri, received the name of Kumuda-candra at the time of ordination. He is said to have split, by the efficacy of his prayers, the Linga, the Brāhmanical symbol of Rudra, in the temple of Mahākāla at Ujjayinī, and to have called forth an image of Pārsvanātha by reciting his Kalyāṇa-mandira-stava. He is believed by Jainas to have converted Vikramāditya to Jainism 470 years after the nirvāṇa of Mahāvira, that is, in 57 B.C.⁵
- 31. But Vikramāditya of Ujjainī does not seem to be so old as he has been identified by scholars with Yaśodharma Deva, king of Malwa, who, on the authority of Alberuni, defeated the Huns at Korur in 533 A.D. This view of scholars agrees well with the statement of the Chinese pilgrim Hwen-thsang, who, coming to India in 629 A.D., says that a very powerful king, presumably Vikramāditya, reigned at Ujjainī 60 years before his arrival there. Moreover, Varāhamihira, who was one of the nine Gems at the court of Vikramāditya, is known to have lived between 505 A.D. and 587 A.D. It is therefore very probable that

पंचित्र य वरिससर सिखसेण[इतायरो य ज्ञयपयदो । इससर वीसहिए सङ्गण्ड चळारविखपळ ॥ २९॥

(Vicāra-sāra-prakaraņa, noticed by Peterson in his 3rd Report, p. 272.)

सप्तासि वेदसंद्धं शककासमपास्य चैनग्रासादौ । चर्चासमित भागी शक्तपुर सीम्य दिवसारो ॥ ८॥

Paūcasiddhāntikā, chap. 1, edited by Dr. G. Thibaut and Sudhākara Dvivedi.

Vide also Dr. Thibaut's Introduction to the Pancasiddhantika, p. xxx.

² Cf. Prabhāvakacaritra VIII, V. 57.

³ For other particulars about Siddhasena Divākara see Dr. Klatt's Pattāvalī of the Kharataragaccha in the Indian Antiquary, Vol. XI. Sept. 1882, p. 247. Vide also Dr. R. G. Bhandarkar's report on Sanskrit MSS., during 1883-84, pp. 118, 140. Also the Prabandha-cuntāmaṇi translated by Mr. Tawney in the Bibliotheca Indica series of Calcutta, pp. 10-14.

⁴ Vide Beal's Buddhist Records, Vol. II, p. 261.

⁵ Varahamihira chose Saka 427 or A.D. 505 as the initial year of his astronomical calculation, showing thereby that he lived about that time:

Vikramāditya and his contemporary Siddhasena Divākara lived at Ujjaini about 533 A.D. I am inclined to believe that Siddhasena was no other than Kṣapanaka i (a Jaina sage) who is traditionally known to the Hindus to have been one of the nine Gems that adorned the court of Vikramāditya.

32. The Nyāyāvatāra written in Sanskrit verse gives an exposition of the doctrine of $Pram\bar{a}na$ (sources of valid knowledge) and Naya (the method of comprehending things from particular

standpoints).

33. Pramāṇa is valid knowledge which illumines itself as well as other things without any obstruction. It is of two kinds: (1) direct valid knowledge or perception (Pratyaksa)

and (2) indirect valid knowledge (Paroksa). Direct valid knowledge (Pratyaksa) is two-fold: (1) practical (Vyāvahārika) which is the knowledge acquired by the soul through the five senses (the eye, ear, nose, tongue and touch) and the mind (Manas), and (2) transcendental (Pāramārthika) which is the infinite knowledge that comes from the perfect enlightenment of the soul: it is called Kevala or absolute knowledge.

34. Indirect valid knowledge (Paroksa) is also of two kinds:

Verbal Testimony.

(1) inference (Anumāna) and (2) verbal testimony (Sābda). Verbal testimony is the knowledge derived from the words of reliable persons including knowledge from scripture. Suppose a young man coming to the side of a river cannot ascertain whether the river is fordable or not, and immediately an old experienced man of the locality, who has no enmity against him, comes and tells him the river is easily fordable: the word of the old man

धचनारिः चपणकोऽमग्सिंदः महु वैनास्त्रभट्ट घटचर्षर कास्त्रिदासाः। ख्याता वरादमिद्धिरा चपतेः सभायां रत्नानि वै वरदचि नेव विकासस्य॥

(Jyotirvidābharaņa).

In the Pancatantra and other Brahmanic Sanskrit works as well as in the Avadānakalpalatā and other Buddhist Sanskrit works the Jaina ascetics are nicknamed as Ksapaṇaka:

> भगवङ्गापितं तम् सुभद्रेष निवेदितस् । श्रुला चपणकः चिप्रमभूद द्वेषनिषाकुः॥ ८ ॥ तस्य सर्व्यक्रतां वेत्ति सुभद्गे यदि मद्गिरा । तदेष चपणश्रदां स्वच्छति श्रमणादरात् ॥ १० ॥

> > (Avadānakalpalatā, Jyotiakāvadāna).

¹ The nine Gems are:-

is to be accepted as a source of valid knowledge called personal testimony or Laukika Sābda. Scripture is also a source of valid knowledge for it lays down injunctions on matters which baffle perception and inference: for instance, it teaches that misery is the consequence of vice. Knowledge derived from this source is called scriptural testimony or Sāstraja Sābda. Scripture is defined as that which was first cognised by a competent person, which is not such as to be passed over by others, which is not incompatible with the truths derived from perception, which imparts true instruction and which is profitable to all men and is preventive of the evil path.

- 35. Inference (Anumāna) is the correct knowledge of the major term (Sādhya) derived through the middle term (Hetu, reason, or Linga, sign) which is inseparably connected with it. It is of two kinds: (1) inference for one's own self (Svārthānumāna) and (2) inference for the sake of others (Parārthānumāna).
- 36. The first kind is the inference deduced in one's own mind after having made repeated observations. A man by repeated observations in the kitchen and elsewhere forms the conclusion in his mind that fire must always be an antecedent of smoke. Afterwards, he is not certain whether a hill which he sees has fire on it or not. But, noticing smoke, he at once brings to mind the inseparable connection between fire and smoke, and concludes that there must be fire on the hill. This is the inference for one's own self.
- 37. If the inference is communicated to others through words, it is called an inference for the sake of others. A type of this kind of inference is as follows:—
 - (1) The hill (minor term or Pakṣa) is full of fire (major term or Sādhya);
 - (2) because it is full of smoke (middle term or Hetu);
 - (3) whatever is full of smoke is full of fire, as, e.g., a kitchen (example or Drstanta);
 - (4) so is this hill full of smoke (application or *Upanaya*):
 - (5) therefore this hill is full of fire (conclusion or Nigamana).
- 38. In a proposition the subject is the minor term (Pakşa) and the predicate the major term $(S\bar{a}dhya)$. The minor term is that with which the connection of the major term is to be shown: In the proposition

चाप्तोपज्ञमनुबङ्घामहरेष्टविरोधकम् ।
 तत्वापदेशकम् सार्वे शास्त्रं कापथधद्वम् ॥

"the hill is full of fire." the hill is the minor term and fire major term. The middle term (Hetu) is defined as that which cannot occur otherwise than in connection with the major Thus in the proposition: "the hill is full of fire because it is full of smoke," smoke is the middle term which cannot arise from any other thing than fire which is the major term. The example (Distanta) is a familiar case which assures the connection between the major term and the middle term: It is of two kinds: (1) homogeneous Sādharmua), such as "the hill is full of fire because it is full of smoke, as a kitchen," and (2) heterogeneous (Vaidharmya) which assures the connection between the middle term and major term by contrariety, that is, by showing that the absence of the major term is attended by the absence of the middle term, such as "where there is no fire there is no smoke as in a lake."

39. In an inference for the sake of others the minor term (Pakṣa) must be explicitly set forth, otherwise the reasoning might be misunderstood by the opponent, e.g. This hill has fire because it has smoke.

This instance, if the minor term is omitted, will assume the following form:—

Having fire, Because having smoke.

Here the opponent might not at once recollect any instance in which fire and smoke exist in union, and might mistake a lake for such an instance. In such a case the whole reasoning will be misunderstood.

40. If that of which the major term or predicate is affirmed is opposed by evidence, the public opinion, one's own statement, etc., we have that which is known as the fallacy of the minor term (Paksābhāsa) of which there are many varieties.

The semblance or fallacy of the minor term (Pakṣābhāsa)

Fallacy of the minor term.

arises when one attributes to it as a proved fact that which is yet to be proved, or when it is opposed to perception and inference, or inconsistent with the public opinion or incongruous with one's own statement, thus:—

- (1) "The jar is animate (paudgalika)"—this is a conclusion which is yet to be proved to the opponent.
- (2) "Every thing is momentary"—this is a Saugata conclusion which, according to the Jainas, is incapable of being proved.
- (3) "The general (sāmānya) and particular (višeṣa) things are without parts, are distinct from each other and are like themselves alone"—this is opposed to perception.

- (4) "There is no omniscient being"—this is, according to the Jainas, opposed to inference.
- (5) "The sister is to be taken as wife"—this is inconsistent with the public opinion.
- (6) "All things are non-existent"—this is incongruous with one's own statement.
- 41. Inseparable connection $(Vy\bar{a}pti)$ is the invariable accompaniment of the middle term by the major term. In the inference: "this hill is full of fire, because it is full of smoke," the connection between fire and smoke, that is, the invariable presence of fire with smoke, is called $Vy\bar{a}pti$ or Inseparable Connection. It is of two kinds: (1) Intrinsic and (2) Extrinsic.
- 42. Intrinsic inseparable connection (Antar-vyāpti) occurs when the minor term (pakṣa) itself as the common abode of the middle term (hetu) and major term (sādhya) shows the inseparable connection between them, thus:—
 - (1) This hill (minor term) is full of fire (major term):

(2) because it is full of smoke (middle term).

Here the inseparable connection between fire and smoke is shown by the hill (minor term) in which both of them abide.

- 43. Extrinsic inseparable connection (Bahir-vyāpti) occurs when an example (dṛṣṭānta) from the outside is introduced as the common abode of the middle term (hetu) and major term (sādhya) to assure the inseparable connection between them, thus:—
 - (1) This hill is full of fire (major term);
 - (2) because it is full of smoke (middle term);
 - (3) as a kitchen (example).

Here the reference to the kitchen is no essential part of the inference: but is introduced from without as a common instance of a place in which fire and smoke exist together, and so it reaffirms the inseparable connection between them.

- 44. Some logicians hold that, that which is to be proved, that is, the major term $(s\bar{a}dhya)$, can be established by intrinsic inseparable connection $(Antarvy\bar{a}pti)$ only: hence the extrinsic inseparable connection $(Bahir-vy\bar{a}pti)$ is superfluous.
- 45. The semblance of reason or fallacy of the middle term (Het-Fallacies of the middle term. $v\bar{a}bh\bar{a}sa$) arises from doubt, misconception or non-conception about it (the middle term). It is of three kinds:—
- (1) The unproved (Asiddha): This is fragrant because it is a sky-lotus.

Here the reason (middle term), viz., the sky-lotus, is unreal.

(2) The contradictory (Viruddha): "This is fiery because it is a body of water."

Here the reason alleged is opposed to what is to be established.

(3) The uncertain $(Anaik\bar{a}ntika)$: "Sound is eternal because it is always audible."

Here the reason or middle term is uncertain because audible-

ness may or may not be a proof of eternity.

46. The fallacy of example $(D_{i}, \bar{x}ant\bar{a}bh\bar{a}sa)$ may arise in the homogeneous or heterogeneous form from a defect in the middle term (hetu) or major term $(s\bar{a}dhya)$ or both; or from doubt about them.

47. Fallacies of the homogeneous example (Sādharmya-

drstāntāhhāsa) are as follows:—

(1) Inference is invalid (major term), because it is a source of knowledge (middle term), like perception (homogeneous example).

Here the example involves a defect in the major term (sādhya),

for perception is not invalid.

(2) Perception is invalid (major term), because it is a source of valid knowledge (middle term), like a dream (homogeneous example).

Here the example involves a defect in the middle term (hetu),

for the dream is not a source of valid knowledge.

(3) The omniscient being is not existent (major term), because he is not apprehended by the senses (middle term), like a jar (homogeneous example).

Here the example involves a defect in both the major and middle terms (sādhya and hetu), for the jar is both existent and

apprehended by the senses.

(4) This person is devoid of passions (major term), because he is mortal (middle term), like the man in the street (homogeneous example).

Here the example involves doubt as to the validity of the major term, for it is doubtful whether the man in the street

is devoid of passions.

(5) This person is mortal (major term), because he is full of passions (middle term), like the man in the street (homogeneous example).

Here the example involves doubt as to the validity of the middle term, for it is doubtful, whether the man in the street

is devoid of passions.

(6) This person is non-omniscient (major term), because he is full of passions (middle term), like the man in the street (homogeneous example).

Here the example involves doubt as to the validity of both the major and middle terms, for it is doubtful whether the man

in the street is full of passions and non-omniscient.

It is stated in the Nyāyāvatāra-vivṛti that some unnecessarily lay down three other kinds of fallacy of the homogeneous example (Sādharmya-drajāntābhāsa), viz.:—

(1) Unconnected (Ananvyaya), such as: This person is full of passions

(major term), because he is a speaker (middle term), like a certain man in

Magadha (example).

Here though a certain man in Magadha is both a speaker and full of passions, yet there is no inseparable connection between "being a speaker" and "being full of passions."

(2) Of connection unshown (Apradar fitanvaya), such as:—

Sound is non-eternal (major term), because it is produced (middle term), as a jar (example).

Here though there is an inseparable connection between "produced" and "non-eternal," yet it has not been shown in the proper form as :-

"Whatever is produced is non-eternal as a jar."

(3) Of inverted connection (Viparitanvaya), such as:

Sound is non-eternal (major term), because it is produced (middle term). Here if the inseparable connection (vyapti) is shown thus-

- "Whatever is non-eternal is produced as a jar," instead of—
 "Whatever is produced is non-eternal as a jar," the example would involve the fallacy of inverted connection.
- 48. Fallacies of the heterogeneous example (Vaidharmyadrstāntābhāsa) are of six kinds, thus:—
- (1) Inference is *invalid* (major term), because it is a source of knowledge (middle term): whatever is not invalid is not a source of knowledge, as a *dream* (heterogeneous example).

Here the example involves in the heterogeneous form a defect in the major term (sadhya) for the dream is really invalid though it has been cited as not invalid.

(2) Perception is non-reflective or nirvikalpaka (major term), because it is a source of knowledge (middle term): whatever is reflective or savikalpaka, is not a source of knowledge, as inference (heterogeneous example).

Here the example involves in the heterogeneous form a defect in the middle term (sadhana), for inference is really a source of knowledge though it has been cited as not such.

(3) Sound is eternal and non-eternal (major term), because it is an existence (middle term): whatever is not eternal and noneternal is not an existence, as a jar (heterogeneous example).

Here the example involves in the heterogeneous form a defect in both the major and middle terms (sādhya and sādhana), for the jar is both "eternal and non-eternal" and "an existence."

(4) Kapila is not omniscient (major term), because he is not a propounder of the four noble truths (middle term): whoever is omniscient is the propounder of the four noble truths, as Buddha (the heterogeneous example).

Here the example involves in the heterogeneous form a doubt as to the validity of the major term (sādhya), for it is doubtful whether Buddha was omniscient.

(5) This person is untrustworthy (major term), because he is full of passions (middle term): whoever is trustworthy is not full of passions, as Buddha (heterogeneous example).

Here the example involves doubt as to the validity of the

middle term (hetu), for it is doubtful whether Buddha is not

full of passions.

(6) Kapila is not devoid of passions (major term), because he did not give his own flesh to the hungry (middle term): whoever is devoid of passions did give his own flesh to the hungry, as Buddha (heterogeneous example).

Here the example involves doubt as to the validity of both the major and middle terms (sādhya and sādhana), for it is doubtful whether Buddha was devoid of passions and gave his own flesh to the hungry.

It is stated in the Nyāyāvatāra-vivṛti that some unnecessarily lay down three other kinds of fallacy of the heterogeneous example (Vaidharmyadṛ#tāntābhāsa), viz.—

(1) Unseparated (Avyatireki): This person is not devoid of passions (major term), because he is a speaker (middle term): whoever is devoid of passions is not a speaker, as a piece of stone (heterogeneous example).

Here though a piece of stone is both "devoid of passions" and "not a speaker," yet there is no invariable separation (vyatireka vyāpti) between "devoid of passions" and "a speaker."

(2) Of separation unshown (Apradarátavyatireka):

Sound is non-eternal (major term), because it is produced (middle term) :

as ether (example).

Here though there is an invariable separation between "produced" and "eternal," yet it has not been shown in the proper form, such as: "Whatever is non-non-eternal is not produced, e.g., ether."

(3) Of contrary separation (Viparita-vyutureka):

Sound is non-eternal (major term), because it is produced (middle term): whatever is not produced is non-non-eternal, eg., ether (example).

Here the example has been put in a contrary way, for the proper form should have been: Whatever is non-non-eternal is not produced, e.g., ether.'

- 49. Refutation ($D\bar{u}_sana$) is the pointing out of defects or fallacies in the statements of the opponent in any of the forms enumerated above. The semblance of a refutation (Dusanābhāsa) is the contrivance to allege defects where there are no defects at all.
- 50. The immediate effect of Pramāna (valid knowledge) is the removal of ignorance. The consequence of the transcendental perception (Pāramārthika Pratyaksa Pramāna) is bliss and equanimity consisting in salvation (Moksa or final emancipation). while that of the other kinds of Pramana (direct and indirect knowledge) is the facility which they afford us to choose the desirable and reject the undesirable things.
 - 51. Naya is the method of comprehending things from particular Naya or the method standpoints. Thus we may conceive

from particular stand points.

of comprehending things rose either as a flower possessing the attributes common to all flowers or as a thing possessing attributes which are

peculiar to the rose as distinguished from other flowers. Naya is of seven kinds: naigama, samgraha, vyavahāra, rjusūtra, śabda, samabhirūdha, and evambhūta.

52. Knowledge which determines the full meaning of an object through the employment, in the scriptural method, of one-sided nayas, is called $Sy\bar{n}dv\bar{n}da$ -śruta. It is the perfect knowledge of things taken from all possible standpoints. Thus a thing may be, may not be, both may or may not be, etc., according as we take it from one or other standpoint.

The soul (Jiva) is the knower, the illuminator of self and non-self, doer, enjoyer, undergoes changes of condition and is

self-conscious, being different from the earth, water, etc.

This system of $\bar{P}ram\bar{a}na$ and Naya, with which all of us are familiar, and which serves to perform all practical functions, has no beginning and no end.

SIDDHASENA GAŅI (600 A.D.).

53. Siddhasena Gaṇi, who belonged to the S'vetāmbara sect, was the author of a commentary on Umasvāti's Tattvārthādhigama-sūtra called Tattvārthatīkā, in which the logical principles of Pramāṇa (the sources of knowledge), and Naya (the method of comprehending things from particular standpoints) have been fully discussed. He was a pupil of Bhāsvāmin² who was a spiritual successor of Simhasūri, himself a disciple of Dinna Gaṇi. Siddhasena Gaṇi³ is generally believed to have been a contemporary of Devardhigaṇi Kṣamāśramaṇa, who flourished 980 years after Mahāvīra, or about 453 A.D. But as he has in his Tattvārthaṭīkā quoted Siddhasena Divākara and was posterior to Simhagiri or Simhasūri, a contemporary of Vikramāditya, I am inclined to suppose that he lived after 533 A.D., or about 600 A.D.

SAMANTABHADRA (600 A.D.).

54. Samantabhadra, who belonged to the Digambara sect of Southern India, was the famous author of a well-known com-

श्रीकार्यकोऽनयनः सस्यात्रमधेनुनीकनञ्जाषः । तत्रार्थमाक्रविकासिमां यथात् चिन्नमैनविषः ॥ ०

(Tattvārthaṭīkā, noticed in Peterson's 3rd Report, p. 85.)

3 Simhasūri is identified by Peterson with Simhagiri who was a contemporary of Vikramāditya.

(Peterson's 4th Report, pp. cxxxi and cxxviii.)

Muni Dharmavijaya and his pupil Indra-vijaya tell me that Siddhasena Gani was a contemporary of Devardhigani Kamasramana,

¹ A palm-leaf manuscript of the Tattvārthatīkā in the temple of Sāntinātha, Cambay, has been noticed by Peterson in his 3rd Report, pp. 83-86.

mentary on Umāsvāti's Tattvārthādhigama-sūtra called Gandha-hasti-mahābhāṣya. The introductory part of this commentary is called Devāgamastotra ¹ or Āptamīmāmsā, and is replete with discussions of logical principles besides a review of the contemporary schools of philosophy including the Advaita Vāda.² The Āptamīmāmsā has been cited by the Hindu philosopher Vācaspati Miśra³ in explaining S'ankarācārya's criticism of the Syādvāda doctrine in the Vedānta-sūtra.

55. Samantabhadra, who was styled a Kavi and whose works were commented on by Vidyānanda and Prabhācandra, was also the author of the Yuktyanusāsana, the Ratnakaraudaka (also called Upāsakādhyayana), the Svayambhū-stotra, and the Caturvim-

who flourished 980 years after the nirvana of Mahavira. Vide also Uvasagadasāo edited by A. F. R. Hoernle, Appendix III, page 50.

In the Pāṇḍavapurāṇa he is extelled as the author of the Devagama-

totra:-

समन्त्रभद्दी भद्दाची भातु भारतभूषणः देवागमेन येनाच चन्नो देवागमः छतः ॥

(Pāṇḍavapurāṇa, noticed in Peterson's 4th Report, p. 157.)

श्रद्धितेकान्मपचेऽपि वहो। भेदी विवधते। कारकायां जियायाच नेकं कस्मात् प्रजायते॥ २॥॥

(Āptamīmāmsā, verse 24.)

3 Vācaspati Miśra in his Bhāmatī-tīkā on Sankara's exposition of the Vedānta Sūtra 2-2-33 quotes the following verse:—

स्त्राहादः पर्वचैकानात्यागात् विंहनचिहिधेः। सप्तभन्ननचार्वची चैयादैचवित्रमञ्जत् ॥

(Bhāmatī, Bibliotheca Indica, p. 458.)

The same verse occurs in the Aptamimansa as follows:-

स्रादादः सर्वयेकानात्यागात् किं वृत्तचिद्धिः। स्रमञ्जनयापेज देशादेय विशेषकः॥ १०४॥

(MSS. of the Aptamīmāmsā, verse 104, borrowed from Mr. Jain Vaidya of Jaipur.)

Vidyānanda at the closing part of his commentary on the Aptamīmāmsā (called Apta-mīmāmsālankṛti-ṭīkā aṣṭasāhasrī) refers to Samanta-bhadra thus:—

येनायेषकुनीतिष्टतिस्पर्तः प्रेषावतां ग्रोषिताः सद्दाचेऽत्यकसङ्कनीतिष्टितास्त्रजायेसायेस्यातः। स त्रोस्तानि समन्तरभद्ग यतिस्त् यूराकु विस्तर्भानुमान् विद्यानन्दक्षप्रदोऽनवस्थियां साहादमार्गायपोः॥

> (Folio 218, Aptamīmāmsālankṛti-ṭīkā, Govt. Collection, in the Asiatic Society of Bengal, No. 1525.)

śati-jina-stuti. He is mentioned by Jina Sena in the Ādipurāṇa composed about 838 A.D., and is referred to by the Hindu philosopher Kumārila. Kumārila, a contemporary of the Buddhist logician Dharmakīrti, is generally held to have lived in the 7th century A.D. Samantabhadra is supposed to have flourished about 600 A.D.

56. The Apta-mimāmsā consists of 115 stanzas in Sanskrit, divided into ten chapters called Paricehedas, in the course of which a full exposition of the seven parts of the Syād-vāda or Sapta-bhangī-naya has been given. The first and second parts of the doctrine, viz., Syād-asti ("may be, it is"), and Syād-nāsti ("may be, it is not"), have led to most interesting discussion of the relation between asti, that is, bhāva or existence, and nāsti, that is, abhāva or non-existence.

57. Non-existence (Abhāva) is divided into four kinds: (1) antecedent non-existence (prāgabhāva), e.g., a lump of clay becomes non-existent as soon as a jar is made out of it, so the jar is an antecedent non-existence with reference to the lump of clay; (2) subsequent non-existence (pradhvaṁsābhāva), e.g., the lump of clay is a subsequent non-existence with reference to the jar; (3) mutual non-existence (anyonyābhāva or anyāpoha), e.g., a jar and a post are mutually non-existent with reference to each other; and (4) absolute non-existence (samavāyābhāva or atyantābhāva), e.g., the inanimate is not a living object. It is observed that on the supposition of mere existence to the entire exclusion of non-existence, things become all-pervading, beginningless, endless, indistinguishable and inconceivable. For

Prabhācandra in his commentary on the Ratnakaraṇḍaka (or Upā-sakādhyayana) observes:—

वेनाज्ञानतमो विनामा निष्णः भयाताचेतोगतं सम्यग्ज्ञाननदांग्रुभिः प्रकटितः सामारमागोऽविष्णः । स त्रोरवकरत्वकाससर्वाः संस्तुरित्कोपको जोवादेव समनाभद्रसुनिषः त्रोसत्प्रभेन्द्जिनः॥

> (Upāsakādhvayana with the commentary of Prabhācandra noticed in Peterson's 4th Report, pp. 137-38.)

1 Vide Dr. R. G. Bhandarkar's Report on Sanskrit MSS. during 1883-84, p. 118, and J.B.B.R.A.S., for 1892, p. 227.

श्रीविकाले पदार्थानासभावानासप्रक्रवात् । सर्वात्र्यस्थानास्यक्तसस्य प्रमाशकस्य ॥ ८ ॥ कार्य्यस्यमभादि स्थात् प्रामभावस्य निक्रते । प्रश्चेत्रस्य प्रभवेशनमातां त्रलेत् ॥ १० ॥ सर्वात्रस्य तरेतं स्वादन्यापाद्यतिकते । स्थाय समयवित सपदेश्येत सर्वया ॥ ११ ॥ instance, if the antecedent non-existence is denied, action and substance are to be supposed as beginningless, while on the denial of the subsequent non-existence, they become endless, and in the absence of mutual non-existence they become one and all-pervading, while on absolute non-existence being denied they are to be supposed as existing always and everywhere.

58. In the same way on the supposition of mere non-existence to the entire exclusion of existence, it becomes impossible to establish or reject anything (since it is non-existent). If on the other hand existence and non-existence, which are incompatible with each other, are simultaneously ascribed to a thing, it becomes

indescribable. Therefore the truth is as follows:-

(1) A thing is existent—from a certain point of view

(2) It is non-existent—from another point of view.

(3) It is both existent and non-existent in turn—from a third point of view.

- (4) It is *indescribable* (that is, both existent and non-existent simultaneously)—from a fourth point of view.
- (5) It is existent and indescribable—from a fifth point of view.
- (6) It is non-existent and indescribable—from a sixth point of view.
- (7) It is both existent and non-existent and indescribable—from a seventh point of view.

AKALANKADEVA (ABOUT 750 A.D.).

59. Akalanka, otherwise known as Akalankadeva or Akalankacandra, was a famous logician who belonged to the Digambara sect. He was designated as a Kavi 1 (poet)—a title of special honour given to writers of repute. He wrote a commentary on Samantabhadra's Āptamīmānsā called Aṣṭa śatī 2 which is a

सभावेदाक्यपचेऽपि भावापक्यवादिनाम्। स्वीधवाक्यप्रमाणं न केन साधनदूषसम्॥१२॥ विरोधाद्वीभयेकात्मां स्थादादन्याय विदिवाम्। स्वास्तेदाक्तेऽस्यक्तिनीवास्यमिति युक्यते॥१२॥ क्यंसिके सदेवेद्यं क्यंसिद्सदेव तत्। तथाभयमवास्यं स्वस्वीगाद्य सर्वेद्या॥१४॥

> (Aptamīmāmsā, MSS., verses 9-14, lent to me by Mr. Jain Vaidya of Jaipur.)

1 For an explanation of the term "Kavi" vide R. G. Bhandarkar's Report on Sanskrit MSS, during 1883-84, page 122.

² A manuscript of the Asta-satī was kindly supplied to me by Mr. Jain Vaidya of Jaipur early in 1907.

most precious work on the Jaina philosophy dealing mainly with logic. Māṇikyanandi's Parīkṣāmukha-sūtra (q.v.) was based on another work on logic, called Nyāya-viniścaya, written by Akalanka, to whom the following works are also attributed: Laghīyastraya, Akalanka-stotra, Svarūpa-sambodhana and Prāyaścitta. Laghusamantabhadra in his Aṣṭa-sāhasrī-viṣama-pada-tātparya-ṭīkā calls Akalanka as Sakala-tārkika-cakra-cūḍā-maṇi or "the crest-gem of all logicians."

60. In the Pāṇḍava-purāṇa² reference is made to a legend according to which Akalanka was embarrassed in a controversy with a Buddhist antagonist. Finding that the antagonist was effectively prompted by Māyādevi concealed in a jar, Akalanka is said to have put an end to that prompting or inspiration by

kicking the jar over with his foot.

61. Akalanka, though mentioned along with Dharmakīrti ⁸ as a logician, flourished at a considerably later time. He is held to have been a contemporary of Rāṣṭrakūṭa king Subhatunga ⁴ or Kṛṣṇarāja I. As Kṛṣṇa-rāja's son, Govind II, lived in Saka 705 ⁵ or 783 A.D., Kṛṣṇa-rāja I, and consequently his contemporary Akalanka, must have flourished about 750 A.D.

VIDYĀNANDA (ABOUT 800 A.D.).

62. Vidyānanda, mentioned by the Hindu philosopher Mādhavācārya, was a Digambara logician of Pāṭalīputra. He was the author of the Āpta-mīmāmsālankṛti, otherwise called Aṣṭasāhasrī, an exhaustive sub-commentary on the Āpta-

पक्षक्षां अस्त स्वा क्रियतु कृतस्। पादेन तादिता वेन नावादेनी घटक्षिता॥

(Pāṇḍavapurāṇa, noticed by Peterson in his 4th Report, p. 157.)

े वाचकमुद्धाविरचितानि सक्छमालचूड्रामिषस्तानि तचार्यस्वाचीति यद्येवमक्षक्रभ्रमंकीचादिवत् प्रकरणमेव कि नारस्यते किमनया स्वकारलाकोपुष-विक्या

> (Pramāṇa-mīmāṁsā, by Hemacandra, noticed by Peterson in his 5th Report, p. 148.)

5 Vide R. G. Bhandarkar's "Early History of the Deccan," 2nd edition, p. 78.

6 Vide the chapter on the Jaina system in the Sarvadarsana-samgraha translated by Cowell and Gough, p. 56.

¹ Vide Aşţasāhasrī-vişamapada-tātparyaṭīkā by Laghusamanta-bhadra, noticed by Peterson in his 5th Report, p 217.

[•] Vide K. B. Pathak's article on "Bhartrhari and Kumārila" in the Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. XVIII, 1892.

mīmāmsā, containing an elaborate exposition of various logical principles. Vidyānanda, in the opening and the closing lines of his Aṣṭasāhasrī, makes an indirect reference to Samantabhadra and Akalanka respectively, while in chapter X of the work he distinctly says that he followed the Aṣṭasatī of Akalanka in explaining the Aptamīmāmsā. Another logical treatise called Pramāṇa-parīkṣā is also attributed to him. He was also the author of the Sloka-vārtika and Apta-parīkṣā.

63. He has, in his Astasāhasrī, criticised the doctrines of the Sāmkhya, Yoga, Vaisesika, Advaita, Mimāmsaka and Saugata, Tāthāgata or Bauddha philosophy; and has also mentioned Dignāga, Udyotakara, Dharmakīrti, Prajňākara, Bhartrhari, Sabarasvāmi, Prabhākara and Kumārila. Vidyānanda was

त्रीवर्दमानमभिवन्दा समन्त्रभङ्गसुत्रवोधमितमानमनिन्द्यवाचम् । माकावताररचितस्त्रतिगोचरात्रमोमांसितं क्रतिरसंक्रियते सयास्य ॥ १॥

The closing lines of the Astasāhasrī are :-

त्रीमद्रकलक्ष्ममस्थरकुल विद्यानन्दसम्बन भूयात्। गदमोमांसालंकतिरदसायकी सताबहाँ॥

The lines in Chapter X referred to run thus:--

नीसद्वरुष्ट्विटतां समन्तभद्रोक्तिमन संचेपात्। परमागमार्थविषयामस्यादश्चीं प्रकाशयति॥

(Aṣṭasāhasrī, MSS., Asiatic Society of Bengal.)

² यदक्तं धर्मकौक्तिंनाः—

श्वतद्रूप पराष्ट्रत वसुमात्र प्रवेदमात् । सामान्यविषयस्त्रोक्षं सिक्षकेदाप्रतिष्ठितेः ।

(Quoted in Astasahasri, chap. I.)

चर्चीपयोगेऽपि पुनः सार्त्तं सन्दानुयोजनम्। चचथीयेद्यपेचेत सोऽयी सम्बद्धतो भवेत्।

(Quoted in Astasahasri, chap. I.)

प्रजाकरखोदं वचः:-

क्रमप्रतीतेरेवं खात् प्रथमधावना मितः। तत्सामर्थात् पुनः पद्माकृ यतः कर्ता प्रतीयते ॥

(Quoted in Astasāhasrī, chap. I.)

न वीऽस्ति प्रत्यया सीके यः मञ्दान्गमाहते । चन्दिस्ताभाति सर्वे मञ्दे प्रतिष्ठितस् ॥

> (This verse of Vākyapadīya by Bhartrhari is quoted in the Aşṭasāhasrī, vide J.B.B.R.A.S. for 1892, p. 221.)

¹ The opening lines of the Asta-sahasri are :-

otherwise named Pātra Kesari or Pātra Kesari Svāmi who has been praised by Jina Sena in the Adi Purana 1 composed about Saka 760 or A.D. 838. He is believed to have lived early in the 9th century A.D. 3 at Pātaliputra.*

Mānikya Nandi (about 800 A.D.).

- 64. Māṇikya Nandi was a Digambara author, whose Parīkṣāmukha-śāstra b or Parīksā-mukha-sūtra is a standard work on the Jaina logic. As his work is based on that of Akalanka. he must have lived after 750 A.D. The earliest commentary on the Pariksā-mukha-sāstra is the Prameya-kamala-martanda of Prabhācandra. Vidyānanda, Māṇikya Nandi and Prabhā-candra have been pronounced to be contemporaries.7 So Manikya Nandi seems to have lived about 800 A.D.
- 65. The Parikṣā-mukha-sūtra is divided into six chapters thus: (1) the characteristic of valid knowledge (Pramanasvarūpa); (2) direct apprehension or perception (Pratyaksa); (3) indirect apprehension (Paroksa); (4) the object of valid knowledge (Visaya); (5) the result of valid knowledge (Phala); (6) the semblances or fallacies ($\bar{A}bh\bar{a}sa$).

¹ अङ्काककंक श्रीपास पाचकेसरियां ग्रहाः। विद्यां इदयाद्वा दारायकेतिविक्साः ॥ ५३॥

(Ādīpurāṇa, quoted by Mr. K. B. Pathak, J.B.B.R.A.S., for 1892, p. 222.)

Mr. Pathak has quoted Samyaktvaprakāśa to show that Vidyānanda and Pātrakesari were identical :-

तथा खोकवार्त्तिके विद्यानन्द्यपरमाम पावकेशरिखामिना यद्क्तं तथ लिखावे तकार्ये द्वानं स्क्राग्टर्भनस्।

(J.B.B.R.A.S., for 1892, pp. 222, 223.)

2-3 Vide K. B. Pathak's article on Bhartrahari and Kumārila in J.B.B.R.A.S., for 1892, pp. 227, 229.

4 Vide Brahma-nemidatta's Kathākosa, life of Pātrakesari alias Vidvānanda.

⁵ A manuscript of the Pariksāmukha-sāstra was kindly lent to me by Mr. Jain Vaidya of Jaipur (Rajputana), and subsequently another manuscript of the work was procured from the Deccan College, Poona.

Peterson in his 4th Report, p. 155, notices Parikṣāmukham saṭikam. The Tikā is the Pruneya-ratna-mālā or Parikṣāmukhapañjikā of Anantavirya, which opens thus:

चक्रकचो अभेच हमें येन भी मता। न्यायविद्यास्तं तसी नमी माणिकानन्दिने ॥ १॥

7 Vide K. B. Pathak's article on Bhartrhari and Kumārila in J.B.B. R.A.S., for 1892, pp. 219, 220, 221. Mr. Pathak says that Manikya Nandi has mentioned Vidyananda, but in the text of the Pariksa-mukha-sastra itself I have not come across any such menticu.

Valid knowledge. Which ascertains the nature of what was uncertain to one's self. It generally arises in the form: "I know the jar by myself," which consists of a subject, an object, an act, and an instrument. Just as a lamp illumines itself as well as the surrounding objects, so the Pramāṇa sets forth the knower as well as the thing known.

67. Pramāna is of two kinds: (1) direct knowledge (Pratyaksa) which arises through the senses, etc., and (2) indirect knowledge (Paroksa) consisting of recollection (Smrti), recognition (Pratyabhijnāna), argumentation (Tarka or Uha), inference (Anu $m\bar{a}na$), and the scripture ($\bar{A}gama$). Recollection is a knowledge of the form "that" which arises through Kinds of valid knowledge. the awaking of impressions, thus: "that Devadatta." Recognition is a knowledge which arises from perception through recollection in the forms, "this is that," "this is like that," "this is different from that," "this is the counterpart of that," etc., thus: "this is that Devadatta," "the bos gavacus is like the cow," "the buffalo is different from the cow," "this is far from that," "this is a tree," etc. Argumentation is a knowledge of the connection between the middle term and the major term based on the presence or absence of the latter, in the form, "if this is, that is, if this is not, that is not," thus smoke arises only if there is fire, but it cannot arise if there is no fire. Inference is the knowledge of the major term arising through the middle term: there is fire here because there is smoke.

68. Pervasion 2 or inseparable connection ($Vy\bar{a}pti$ or $Avin\bar{a}$
Terms of a Syllogism. $bh\bar{a}va$) is the universal attendance of the middle term by the major term in simultaneity or succession: thus fire and smoke may abide simultaneously or the latter may follow the former.

If the middle term and the major term exist simultaneously, the former is called vyāpya, pervaded or contained, and the

latter vyāpaka, pervader or container.

But if the middle term follows the major term, the former is called effect $(k\bar{a}rya)$, and the latter cause $(k\bar{a}rana \text{ or } hetu)$, thus fire is the cause of smoke. Ordinarily, however, the major term is called $s\bar{a}dhya$ or that which is to be proved, and the middle term is called $s\bar{a}dhana$ or that by which it is to be proved. Sometimes the major term is also called dharma or predicate, and the middle term linga, mark or sign.

The minor term is called *Pakṣa*, the place or locus in which the major term abides, or *Dharmin*, the subject, thus: "this

¹ साधनात् साध्यविज्ञानमन्सानम् ॥ ९ ॥ (Pariksä-mukha-sütra).

² सदज्ञसभावनियमोऽनिकाभावः ॥ ११ ॥ (Parīkṣā-mukha-sūtra).

place is fiery "; "sound is mutable": here "this place" and "sound" are the minor terms. Some philosophers, who divide the middle term (reason) into three phases, dispense with the minor term in an inference.

The middle term (*Hetu*) is defined as that which is inseparably connected with the major term, or in other words, which cannot come into existence unless the major term exists. For instance, smoke could not come into existence unless the fire existed.

- 69. The middle term or reason (Hetu) is divided as (1) per-Different phases of the middle term. ceptible (upalabdhi), and (2) imperceptible (anupalabdhi). Each of these again may occur in the form of an affirmation (Vidhi) or negation (pratisedha).
- 70. The perceptible reason in the affirmative form admits of six subdivisions according as it is:—
 - (i) the pervaded $(vy\bar{a}pya)$ —sound is mutable because it is factitious;
 - (ii) an effect (kārya)—this man has got intellect because there are (intellectual) functions in him:
 - (iii) a cause (kārana)—there is a shadow here because there is an umbrella;
 - (iv) prior (pūrva)—the Rohiņi stars will rise for the Kṛttikās have risen.
 - (v) posterior (uttara)—the Bharani stars certainly rose for the Kṛttikās have risen;
 - (vi) simultaneous (sahacara)—the man had a mother for he had a father; or this mango has a particular colour because it has a particular flavour.
- 71. The perceptible reason in the negative form admits of six subdivisions as follows:—
 - (i) the pervaded $(vy\bar{a}pya)$ —there is no cold sensation because of heat;
 - (ii) an effect (kārya)—there is no cold sensation because of smoke;
 - (iii) a cause (kāraṇa)—there is no happiness in this man because of the shaft in his heart;
 - (iv) prior (pūrva)—the Rohiņi stars will not rise at once for the Revati [only] has risen.
 - (v) posterior (uttara)—the Bharaṇi did not rise a moment ago for the Puṣyā has risen.
 - (vi) simultaneous (sahacara)—there is no doubt of the existence of the other side of this wall for this side of it is perceived.

- 72. The *imperceptible* reason in the *negative* form admits of seven subdivisions as follows:—
 - (i) identity (svabhāva)—there is no jar here because it is imperceptible;
 - (ii) the pervaded (vyāpya)—there is no Simsapā here because there is no tree at all;
 - (iii) an effect $(k\bar{a}rya)$ —there is no smouldering fire here because there is no smoke;
 - (iv) a cause (kāraṇa)—there is no smoke here because there is no fire;
 - (v) prior (pūrva)—the Rohini stars will not rise in a moment for the Kṛttikās are not perceptible;
 - (vi) posterior (uttara)—the Bharaṇi did not rise a moment ago for the Kṛttikās are not perceptible;
 - (vii) simultaneous (sahacara)—in this even balance there is no bending upwards because it is not perceptible.
- 73. The *imperceptible* reason in the affirmative form admits of three subdivisions thus:—
 - (i) an effect (kārya)—in this man there is some disease because there is no healthy movement in him;
 - (ii) a cause (kāraṇa)—this man is sorrowful because he has no union with his beloved ones;
 - (iii) identity (svabhāva)—there is uncertainty here because certainty is not discernible;
- 73. The middle term and the major term are the parts of an inference, but the example (udāharaṇa) is not. Nevertheless for the sake of explaining matters to men of small intellect, the example (udāharaṇa or dṛṣṭānta), nay, even the application (upanaya) and the conclusion (nigamana) are admitted as parts of an inference. The example is of two kinds: (1) the affirmative or homogeneous (anvayi or sādharmya) which shows the middle term as covered by the major term, such as: wherever there is smoke, there is fire, as in a kitchen; and (2) the negative or heterogeneous (vyatireki or vaidharmya) by which the absence of the middle term is indicated by the absence of the major term, e.g., wherever there is no fire, there is no smoke, as in a lake.
 - 74. Inference is of two kinds, viz., (1) inference for one's own self (svārthānumāna), and (2) inference for the sake of others (parārthānumāna).
- An instance of the latter kind of inference is given below:—
 - (1) Sound (minor term) is mutable (major term)—proposition:
 - (2) because it is factitious (reason or middle term):

- (3) whatever is factitious is mutable, as a jar (affirmative or homogeneous example);
- (4) sound is factitious (application);
- (5) therefore sound is mutable (conclusion).

Or

- (3) whatever is not mutable is not factitious, as the milk of a barren woman's breast (negative or heterogeneous example);
- (4) but sound is factitious (application);
- (5) therefore sound is mutable (conclusion).
- 75. Testimony (\$\bar{A}gama\$) is a knowledge of objects derived from the words of reliable persons or scripture in virtue of their natural fitness or suggestiveness—e.g., the north pole exists.
- 76. Objects of valid knowledge are either general (sāmānya) or Objects of valid knowledge.

 Objects of valid knowledge are either general (sāmānya) or particular (višeṣa). The general is of two kinds: (1) homogeneous (tiryak), including many individuals of like nature
- as, the "cow" is a general notion which signifies many individual cows as Sabalā, Khamba, Mumbha, etc.; and (2) heterogeneous ($\bar{u}rddhvat\bar{a}$), including many individuals of dissimilar nature, as, "gold" is a general notion comprising a bracelet, necklace, ear-ring, etc. The particular is also of two kinds: (1) relating to things (vyatircka), e.g., cow, buffalo, elephant, dog, are four particular things distinguished from one another; and (2) relating to action such as pleasure, pain, etc., experienced by the soul.
- 77. The result or consequence of valid knowledge is the cessa-Result of valid knowtion of ignorance enabling one to choose ledge. the desirable and reject the undesirable.
- 78. Fallacy or semblance consists of the knowledge of that Various kinds of Fallavarious kinds of Fallavarious kinds of Fallait is of many kinds, such as the fallacy—
 - (1) of perception (pratyakṣābhāsa), e.g.—to mistake a post for a man;
 - (2) of recollection (smaranābhāsa)—in trying to recollect Jinadatta to say: "O, that Devadatta";
 - (3) of recognition (pratyabhijñānābhāsa)—on seeing a greyhound to say: "this is a tiger";
 - (4) of argumentation (tarkābhāsa)—" whoever is his son must be black";
 - (5) of the minor term (pakṣābhāsa) —" sound is impermanent": This is a fallacy of the minor term according to the Mimāmsakas. for they do not attribute

impermanency to sound; or fire is not hot because it is a substance as water;

- (6) of the middle term or reason (hetvābhāsa)—sound is eternal because it is factitious;
- (7) of example (drstāntābhāsa)—sound is eternal because it is corporeal, like a jar;
- (8) of verbal testimony (āgamābhāsa)—"there is a heap of sweetmeats on the side of the river, run you boys"; "there are a hundred elephants on his finger"; "the Jainas are allowed to eat in the night" [as a fact they are not so allowed according to their scripture].
- 79. Māṇikya Nandi in the Parīkṣāmukha-sūtra (chapter vi, aph. References to contemporaneous systems of philosophy.

 Saugata, Sāmkhya, Yoga, Prābhākara, Jaiminiya, etc. In the 3rd chapter of the work he has alluded to—"a certain philosopher who maintaining three phases of the reason or middle term (hetu) dispenses with the minor term (pakṣa)."
- 80. He concludes his work by referring to it as a mirror through which a man can see what is to be accepted and what rejected.²

PRABHĀ CANDRA (ABOUT 825 A.D.).

81. Prabhā Candra styled a Kavi, a member of the Digambara sect, was the author of the famous logical treatise called the Prameya-kamala-mārtaṇḍa, the earliest commentary on the Parīkṣāmukha-sūtra of Māṇikya Nandi. He was also the author of the Nyāya-kumuda-candrodaya (or briefly Candrodaya), a commentary on the Laghīyastraya of Akalanka. He has in his Prameya-kamala-mārtaṇḍa mentioned Bhagavān Upavarṣa,

(Parīkṣāmukha-sūtra, MSS. lent to me by Mr. Jain Vaidya of Jaipur).

परीकामुखमाद्धे 'देखोपादेशमद्धाः। संविदे मादधा नासः परीकाद्धनद् सधान्॥

> (Parīksāmukha-sftra, chap. VI, MSS. lent to me by Mr. Jain Vaidya of Jaipur).

गध्याविमाभाविलेन निश्चितो देतुः॥ १०॥
को वा विधा चेतुमृक्का समर्थयमानो न पच्यति॥ ६९॥

Sabarasvāmi, Bhartrhari, Bāṇa,¹ Kumārila,² Prabhākara, Dignāga, Udyotakara Dharmakīrti, Vidyānanda and others. He himself has been mentioned by Jina Sena in the Ādi Purāṇa ⁸ composed about Saka 760 or A.D. 838. Prabhā Candra, as a contemporary of Maṇikya Nandi and Vidyānanda, is believed to have lived in the first half of the 9th century A.D.

MALLAVADIN (ABOUT 827 A.D.).

82. He belonged to the Svetāmbara sect and was the famous author of a commentary on the Buddhist logical treatise Nyāyabinduṭikā called Dharmottara-ṭippanaka. According to a Jaina legend,* Malla was the son of King Silāditya's sister. He was called vādin or logician, because, having vanquished the Buddhists in a dispute, he re-established the Jaina faith and brought to its former glory the great figure of Adinātha on Mount Satruūjaya (in Kathiwar).

83. A palm-leaf manuscript b of the Dharmottara-tippanaka

1 Prabhā Candra has quoted the following verse from Bāṇa's Kādambarī:—

रजोज्ये जनामि चन्नहत्त्वे चित्रतो प्रजामां प्रज्ञये तसःस्पृत्रे । चजाय सर्वेच्यिति-माम-देतवे चयीमयाय चित्रचाळाने ससः ॥

(Prameya-kamala-mārtaṇḍa, Deccan College, MSS., p. 21a, quoted by Mr. K. B. Pathak in J.B.B.R.A.S., for 1892, p. 221.)

² Prabha Candra refers to Kumarila otherwise called Bhatta thus:—

तथा वर्षापत्तिरीय प्रमावामारं तक्कणं स्वर्धापत्तिरीय हहः श्रुतो वा वर्षीऽन्यशा नैगयपद्यते रूत्यहर्षायकव्यना, कुमारिकीऽपि स्तरेव भाषाकारवची याच्छे।

> (Prameya-kamala-mārtaṇḍa, quoted by Mr. K. B. Pathak in the J.B. B.R.A.S., for 1892, p. 227).

8 In the Adi Purana Prabha Candra is thus mentioned:---

चन्द्रांद्राद्राभयम् प्रभाचन्द्रं विवे सुवे। स्रता चन्द्रोदयं येन मचदास्त्रादितं जनत्॥ ४०॥

(Quoted by Mr. K. B. Pathak in J.B.B.R.A.S., for 1892, p. 222.)

On p. 227 of the same journal the date of the Adipurana is fixed at Saka 760 or 838 A.D.

- 4 Peterson 4, pp. 3-4, in which is mentioned the legend from the Prabandhacintāmaṇi (Rāmacandra's edition, Bombay, p. 273).
- ⁵ इति भन्नेश्वरिष्यनके जीमस्याद्याचार्यस्ते स्तीयः परिच्येदः समाप्तः सङ्गसं मचाजीः ॥

is preserved at Anhilwad Patan and is said to be dated Samvat 1231 or 1174 A.D. According to the Prabhāvakacaritra ¹ Mallavādin was also the author of a Padmacaritra and lived in Vira Samvat 884 or 357 A.D. But this is impossible as Dharmottara (q.v.), on whose Nyāyabinduṭīkā Mallavādin wrote Tippanaka, lived about 837 A.D. On the other hand Mallavādin is mentioned ² by Hem Candra Sūri who lived during 1088—1172 A.D. It seems therefore probable that the year 884 in which Mallavādin lived does not refer to Vīra Samvat, but to Vikrama Samvat. On that supposition Mallavādin lived in 827 A.D. and was a contemporary of Dharmottara.

PRADYUMNA SÜRI (ABOUT 980 A.D.).

84. He ³ belonged to the Rājagaccha of the Svetāmbara sect. In Māṇikyacandra's Pārśvanātha-caritra, ⁴ his prowess in logical discussions is referred to in the following terms:—

"There was born the preceptor Pradyumna Sāri—the first healer of disease of the world—who entirely removed all corruptions from the body of men (or detected all defects in disputation committed by men) and who, using sharp logical expressions, made his irrelevant opponents to sweat and thereby to be cured of the fever of pride."

संवत् १२३१ वर्षे भाइपद ग्रादि १२ रवी श्वरोश जंबाविखवास वास्त्रय यः दास्त्रसम्बन्धः चास्त्रेन भक्षीयं भक्षीतर ठिप्पनकं सिमापितम् ॥

(Noticed in Peterson 5, App. p. 3.)

1 Vide Klatt, Vienna Oriental Journal, Vol. IV, p. 67.

² **चनु मधागदिनं तार्किकाः।** तखादन्ये शीना दत्यर्थः॥

(Siddha Hema Sabdānuśāsana Brhat Ţīkā, 2-2-39).

- 8 For further particulars about Pradyumna Sūri see Peterson's 4th Report, p. lxxix.
 - पुंचां विषयणं विकारमण्डं निर्मूछमुक्ययंखवादाः समभूकु भवासयभिषक् प्रदासस्तरिर्मुदः ।
 येन खेदयता प्रयुव्ध तरकां तर्कावक्कां भारतीं
 वादीन्ताः प्रविकापिनो चनतरं दर्धक्यरं त्याजिताः ॥ ॥ ॥
 दिवस्यरसमाज्ञान्तवेद्वपद्धं समाददे ।
 यः प्रत्यचं नरेन्द्रस्य जवतस्त्यसः पुनः ॥ ॥ ॥
 नौरावतानिथौ राजवक्क्युर्मुं चवादिषः ।
 स्तरिः प्रयुक्कसर्याक्काः पूर्व वः पूर्वजोऽभवत् ॥ १८ ॥

85. In the same work reference is made to his victory over the Digambaras of Venkapaṭṭa in the presence of the king of that province. He delighted the kings of various countries by no fewer than eighty-four triumphs in discussion. He was eleventh in ascent from Māṇikyacandra Sūri, who wrote his Pārśvanātha-caritra in Samvat 1276 or 1219 A.D. Pradyumna must have flourished about 980 A D., for he was the preceptor of Abhayadeva Sūri (q.v.) who lived a little before 1039 A.D.

ABHAYADEVA SÜRI (ABOUT 1000 A.D.).

86. Abhayadeva Sūri belonged to the S'vetāmbara sect 1 and was the pupil and successor of Pradyumna Sūri of the Rājagaccha. He was an eminent logician and author of Vādamahārnava, a treatise on logic called the Ocean of Discussions, and of a commentary on the Sammati-tarka-sūtra called Tattvārthabodha-vidhāyinī.² "He is described as a lion that roamed at ease in the wild forest of books on logic. That the rivers of various conflicting opinions might not sweep away the path of

चपादक्तकोपाक्षिभुवनिमर्थादिहेशमोपाकान्। यथुश्वतुरिधकामीत्या वादक्रयेरंजयामास ॥ २८ ॥ श्रीक्षभयदेवस्तरिक्षक्तिक्षस्त्रभूत् । भग्नासनास्त्रिसकाङ्गीर्थदास्त्रमण्डियत्॥ २८ ॥

(Pārsvanātha-caritra as noticed by Peterson in his 3rd Report, pp. 57-164.)

तर्कप्रयविचारदुर्गमवनीसञ्चारपञ्चाननस्वास्टेश्भयदेवस्तरिरजनि सेताम्बरपामणीः ।
सद्दास्त्रश्रतिलालमा मधुकरी कोलाइलाम्ब्रिनी
दिला विद्यरक्षणं श्रितवती ब्राह्मी यदीयाननम् ॥ ६ ॥
दक्षित्रमाः मस्यभेदनेता
भुवं करिखानि जद्देः भनेताः ।
दतीय रोधाय चकार तामां
प्रस्तेय रोधाय चकार तामां
प्रस्तेय रोधाय चकार तामां
प्रस्तेय वादमदार्षयं यः ॥ ० ॥
विद्याद्यस्त्रमीलम्बर्गमवाः प्रेर्ज्यत्तपोऽदर्मविविद्याद्यस्त्रमीलम्बर्गमवाः प्रेर्ज्यत्तपोऽदर्मविविद्याद्यस्त्रमुख्यानमवाः प्रदर्भवान् ।
यः स्मूर्णद्वयुद्धमुख्यनमतीजिन्योः पुरः प्रविकान् ।
वादे वादिवरान् विजित्य विजयनीसंप्रदं स स्थान् ॥ ८ ॥

(Pārsvanātha-caritra by Māṇikyacandra noticed by Peterson in his 3rd Report, pp. 158-59.)

^{\$} See R. Mitra's Catalogue, X, pp. 39-40.

the good, Abhayadeva ¹ wrote his Vāda-mahārṇava." He was succeeded by Jineśvara Sūri, a contemporary of King Muñja. ² He was the ninth predecessor of Siddhasena Sūri, who wrote Pravacana sāroddhāra-vṛtti in Samvat 1242 or 1185 A.D. It was probably this Abhayadeva Sūri, who was "world-renowned" and a teacher of Sānti Sūri ³ who died in Samvat 1096 or 1039 A.D.

LAGHUSAMANTABHADRA (ABOUT 1000 A.D.).

87. He * wrote a commentary on the Astasāhasrī of Vidyā nanda called the Astasāhasrī-viṣamapada-tātparya-ṭīkā b and seems to have belonged to the Digambara sect and lived about 1000 A.D.

Ananta-virya (about 1039 A.D.).

88. Ananta-virya was the Digambara author of a commentary on the Parikṣāmukha of Māṇikya Nandi called Parikṣā-mukha-pañjikā or Prameya-ratnamālā, as also a commentary on Akalanka's Nyāya-viniścaya called the Nyāya-viniścaya-vṛtti. He wrote the former for Santi-ṣena at the request of Hirapa, son of Vijaya and Nāṇambā. Now Sāntiṣena, supposed to be identical with Sānti Sūri, died in Samvat 1096 or A.D. 1039. His contemporary Ananta-virya must, therefore, have flourished

1 For particulars about Abhayadeva Sürı see Peterson's 4th Report,

² Weber's Die Handschriften-verzeichnisse, etc., p. 851, vv. 1, 2, and pp. 121, vv. 4-5. Jineśvara Sūri was probably a spiritual brother of Dhaneśvara Sūri.

ं यस्याभूतुषराममे गुणनिधिः श्रीसर्वदेवाक्रयः स्रोगोऽभयदेव स्रिटिश्वितस्त्रातप्रमाणेऽपि च । तस्त्रेयं सुगुबद्दयादिधगत (?) दस्यात्राविद्यागुण (?) प्रस्यास्त्राय चिरं भुवि प्रचरतु श्रीग्रानिस्त्रः हतिः॥

(Uttarādhyayana brhadvrtti by Santyacarya noticed by Dr. R. G. Bhandarkar in his Report on Sanskrit MSS. for 1883-84, p. 44.) See also Weber's Die Handschriften-verzeichnisse der Königlichen Bibliothek zu Berlin, p. 827.

4 Vide Peterson's Sixth Report, p. xxiii.

5 The Astasāhasri-visama-pada-tātparya-tikā has been noticed in Peterson's Fifth Report, pp. 216-219, where we read:

देवं खामिनममसं विद्यानन्दं प्रवस्य निजभक्त्या । विष्टषोस्यष्टपाचनोविषमपदं स्वष्टमन्तमद्रोऽदम् ॥

वैनेयप्रियपुषस्य चौरपस्योपरोधतः। यानियेषार्थमार्था परीक्षामुखपञ्जिता ॥ ६॥

(Parīkṣā-mukham saṭīkam, noticed in Peterson's Fourth Report, p. 155.)

about that time. Ananta-vīrya must have lived before the 14th century, for he is mentioned by Mādhavācārya in the chapter on Jaina darśana in the Sarvadarśana-samgraha.

DEVA SÜRI (1086-1169 A.D.).

- 89. Deva Sūri, called Vādipravara or the foremost of disputants, belonged to the S'vetāmbara sect and was a pupil of Municandra Sūri. He was the author of the well-known treatise on logic called Pramāṇa-naya-tattvālokālaṅkāra on which he himself wrote an elaborate commentary named Syādvādaratnākara. He totally vanquished the Digambara Kumudacandrācārya in a dispute over the salvation of women [at the court of Jaya-simha-deva at Anahillapurapattana in N. Guzerat] and thereby practically stopped the entrance of the Digambaras into that town. The dispute 3 took place in Samvat 1181 or 1124 A.D.
- 90. Ratnaprabha Sūri, a pupil of Deva Sūri, in his Upadeśamālā-tīkā, composed in Samvat 1238 or A.D. 1181, writes:—
- "Lord Srī Deva Sūri, who was the crest-gem of the pupils of the esteemed Municandra Sūri and succeeded him in his patta (sacred chair), conquered the Digambaras in the council-room of

श्राहादरमाकर इत्यन्ति प्रन्यो मन्त्रमः। वादिष्टन्दारकत्रोमदुदेवद्धरिविमिर्मतः॥ ॥॥

Malladhāri Rāja
4ekhara Sūrı's Pañjıkā on Syādvāda-ratnākarāvatā-ik.

चन्द्राहणिववर्षेऽन वैशाखे पूर्णिमादिने। चाझतो वादिशालायां तो वादिशतिवादिनो॥

(Prabhavakacar., XXI, v. 95, quoted by Dr. Klatt in his article on "Historical Records of the Jams" in the Indian Antiquary, Vol. XI, Sept. 1882. p. 254.)

4 Ratnaprabha Sūri observes :--

शिष्यः त्रीमृनिचन्त्रस्त्रिगद्यभिमी तार्थेषुड्रामिषः पट्टे से विनिवेशितस्वद्यं च त्रीदेवस्त्रिप्तमुः । खाद्याने जयस्विद्देवस्पतेर्थेनास्वदिग्वासमा सीनिवांषसमर्थनेन विजयस्यः समुत्रस्थाः ॥ तस्वद्वप्तस्थां भवज्ञयं गृषपामाभिरामोदयाः त्रीभदेवस्त्रस्य ग्राचिथयस्त्रस्यानस्त्रीतये । त्रीदेवस्त्रस्य ग्राचिथयस्त्रस्य स्तर्भाः श्रीस्त्रम्यस्ति स्वाद्यस्ति ग्राम्स्तर्वे स्वाद्यस्ति ग्राम्स्ति स्वाद्यस्ति स्वाद्यस्ति स्वाद्यस्ति स्वाद्यस्ति स्वाद्यस्ति ।

(Upadeśamālāṭīkā noticed by Peterson in his 3rd Report, p. 167.)

¹ Vide the Indian Antiquary, Vol. XI, p. 253; and Dr. R. G. Bhandar-kar's Report on Sanskrit MSS. during 1883-84, p. 129.

King Jaya-simha-deva and raised a pillar of victory by maintaining the nirvaṇa or salvation of women [that is, holding that

even women are capable of attaining nirvana]."

91. In Samvat 1204 or 1147 A.D. Deva Sūri founded a caitya, raised a bimba at Phalavardhigrāma, and established an image of Neminātha at Arāsana. He was born in Samvat 1143 or 1086 A.D., attained the rank of Sūri in 1174 Samvat or 1117 A.D., and ascended to heaven in Samvat 1226 or 1169 A.D.²

92. The Pramāṇa-naya-tattvālokālankāra 8 consists of eight

chapters (parichedas), viz.—

Subjects of the Pramananaya-tattvālokālankāra. (1) Determination of the nature of valid knowledge (pramāṇa-svarūpa-nirnaya); (2) determination of the

Munisundara Sūri in his Gurvāvalī composed in Samvat 1466 gives a similar account:—

वनदितवातुरशीत सुनदिकीका-स्थां स्वस्त्र प्रमानदिकीका । बादा व कुनुद्वन्द्र दिग्यने अस्ति ॥ ०४ ॥ स्थादा दर साकरतक विधा सुदे च केषां निष्ठ देवस्त्र रिः । यत्त सुविंशतिस्तरिया खं यस्त्र नामा विदितं वसूत ॥ ०५ ॥ वेद मुनोशमिते अस्टे देवगु वर्जगद्यु नरोऽ श्रुद्तः । श्रीमृतिष्द्र ग्रोरिति शिष्या बद्याऽभवन् विदिताः ॥ ०६ ॥

(Gurvāvalī published in the Jaina Yaśovijaya-granthamālā of Benaros, pp. 18-19.)

1 Vide Peterson's 4th Report, p. lv.; also Klatt, Ind. Ant. X1. p. 254.

शिक्षिवेद्शिवे जन्म दीचा युग्गगरिक्दे। वेदाखगंकरे वर्षे स्वरिक्षमभवत् प्रभोः ॥ रस्युग्गरवी वर्षे त्रावणे मासि संगते। छ यपचस्य सप्तग्यामपराक्रे गुरोर्दिने ॥ मण्येलोकस्थितं लोकं प्रतिवाध्य पुरन्दर-वोधका द्व तं जग्गदिवं त्रोदेवस्ट्रयः ॥

(Prabhāvakacar., XXI, vv. 287 seq, quoted by Dr. Klatt in his article on "Historical Records of the Jains" in the Indian Antiquary, Sept. 1882, Vol. XI, p. 254.) According to some authorities Deva Sūri was born in Samvat 1134 or 1077 A.D.

3 The Pramāṇa-nayatattvālokālankāra has been printed and published

in Benares in the Jaina Yasovijaya series.

nature of perception (pratyakṣa-svarūpa-nirṇaya); (3) determination of the nature of recollection, recognition, argumentation and inference (smaraṇa-pratyabhijnāna-tarkānumāna-svarūpa-nirṇaya); (4) determination of the nature of valid knowledge derived from verbal testimony or scripture (āgamākhya-pramāṇa-svarūpa-nirṇaya); (5) determination of the nature of objects of knowledge (viṣaya-svarūpa-nirṇaya); (6) determination of the consequences and semblances or fallacies of knowledge (phala-pramāṇa-svarūpādyābhāsa-nirnaya); (7) determination of the nature of one-sided knowledge (nayātma-svarūpa-nirṇaya); and (8) determination of the right procedure of a disputant and his opponent (vādi-prativādi-nyāya-nirṇaya).

As this work is written on the same plan as Māṇikya Nandi's Parīkṣāmukha-sūtra or Akalanka's Nyāya-viniścaya as well as Siddhasena Divākara's Nyāyāvatāra, I shall pass over the

common points, mentioning only the special features.

93. Pramāna or valid knowledge is defined here as the knowledge which ascertains the nature of itself Valid knowledge. and all other things. The intercourse between the sense-organs and the objects of sense is not pramāna (valid knowledge), for though it can ascertain the nature of objects outside itself, it cannot ascertain its own nature, since it has no consciousness. Pramāna must certainly be knowledge, for it is capable of choosing what is desirable and rejecting what is undesirable. It must also be definite in character for it is opposed to superimposition (samāropa). Superimposition is of three kinds: (1) inversion (viparyaya)—such as to look upon a pearl-oyster as a piece of silver; (2) doubt (samsaya)—such as: is this a post or a man? and (3) uncertainty (anadhyavasāya) consisting in a mere cogitation in the mind as to what the thing might be.

94. Pramāṇa (valid knowledge) is of two kinds: (1) direct (pratyaksa) perception, and (2) indirect (parokṣa). The direct knowledge or perception is of two kinds: practical (sāmvyavahārika) and transcendental (pāramārthika). The practical direct knowledge again is subdivided as that which arises through the sense-organs (indriya-nibandhana) and that which does not arise through the sense-organs (anindriya-nibandhana) but through the mind (manas). Each of these passes through four stages, 'viz.: (1) avagraha, distinguishing the type whether it be, e.g., horse or man, but not discerning the characteristics;

¹ The explanation of avagraha, etc., as given here is taken from Col. Jarrett's translation of the Ain-i-Akbari, published by the Asiatic Society of Bengal, vol. III, p. 190, as the portion related to pramāņa in the Jaina

(2) $ih\bar{a}$, inquiring, e.g., whence came the man and from what country came the horse; (3) $av\bar{a}ya$, arriving at a correct identification of the above, and (4) $dh\bar{a}ran\bar{a}$, recollecting the thing

particularised and keeping it in mind.

The transcendental direct knowledge (pāramārthika) is that which comes exclusively from the illumination of the soul and is profitable to emancipation. It is two-fold: (1) vikala (defective) including avadhi-jāāna (limited knowledge), i.e., knowledge of special objects which, near or remote, are not differentiated, and manaḥ-paryāya, i.e., definite knowledge of another's thoughts and the laying bare of the secrets of the heart; and (2) sakala, i.e., perfect, which is the unobstructed intuition of the entire aspects of a thing. One who possesses that perfect transcendental knowledge is called an arhat, i.e., one freed from all faults or obstructions.

95. Indirect knowledge (parokṣa) is of five kinds: viz., (1)

Indirect knowledge. recollection (smarana); (2) recognition (pratyabhijñāna); (3) argumentation (tarka); (4) inference (anumāna); (5) verbal testimony or the knowledge derived from the words of a reliable person or scripture (āgama).

96. Inference is of two kinds: (1) svārtha, for one's own self, and (2) parārtha, for the sake of others.

Hetu (reason or the middle term) is defined as that which cannot happen except in connection with the major term. The definition that the hetu (middle term) is that which possesses three characteristics, is to be rejected as involving fallacies. Some maintain the threefold characteristic or division of the hetu (reason or middle term), but do not admit the necessity of using the minor term (pakṣa) in an

chapter of Ain-i-Akbari very closely resembles that in the *Pramāna-naya-taitvālokālaņkāra*. Dr. R. G. Bhandarkara's explanation of these terms given on p. 93, footnote, of his Report on Sanskrit MSS., for 1883-84, is, however, different.

¹ निश्चितान्यथानुपपश्चेकलचणे देतुः न तु निलचणकादिः। तस्य देलाभाषस्यापि स्थानत् ॥ ११॥

(Pramāṇa-naya-tattvālokālaṅ**kāra,** Chap. III.)

This is an attack on Dharmakīrti and other Buddhist logicians who define the three characteristics of hetu as follows:—

वैक्यं पुनक्षिङ्गस्य चनुमेरी सक्तमेव । सपक्त रव सक्तम् । चसपक्षे चासक्तमेव निश्चितम् ।

(Nyāyabindu, Chapter II.)

inference. Again, according to others, as the connection or absence of connection between the middle and the major terms can be shown by internal inseparable connection (antar-vyāpti), the example forming the external inseparable connection (bahir-vyāpti) is useless. For instance:—

The hill (minor term) is fiery (major term), because it is smoky (middle term) as a kitchen (example).

Here the hill is an integral part of the inference, and in it may be found the necessary connection between fire and smoke. Why then should we burden our inference with an example from without? The kitchen certainly shows the same connection: fire and smoke are found together there: but the kitchen is not an essential part of the inference, and so for the purpose in hand the connection which it proves may be described as the external inseparable connection. We must look to logical neatness, and the economy of mental labour, since the mind is liable to be confused when the unessential is brought across its track.

97. The application (upanaya) and conclusion (nigamana) as parts of the syllogism are also useless, but these together with the example are to be employed to convince men of small intellect.³

Parts of a syllogism.

Avayava or parts of a syllogism are stated to be the following:—

1. Pakṣa-prayoga (use of the minor term, otherwise called proposition, pratijñā)—the hill is fiery.

2. Hetu-prayoga (use of the middle term)—because it is smoky.

3. Dṛṣṭānta (example)—whatever is fiery is smoky just as a kitchen.

4. Upanaya (application)—this hill is smoky.

5. Nigamana (conclusion)—therefore this hill is fiery.

98. Non-existence (abhāva or anupalabdhi) is subdivided as (1) antecedent (prāgabhāva); (2) subsequent (pradhvaṁsābhāva); (3) mutual (itaretarābhāva); and (4) absolute (atyantābhāva). Various kinds of ābhāsa or fallacy are also enumerated. Under the verbal

¹ चिविधं साधनमभिधायैव तत्स्यमर्थनं विद्धानः कः खल् न प्चप्रयोगम् चङ्गोकुषते ६२६६ (Pramāṇa-naya-tattvālokālaṅkāra, Chap. 111.)

³ चनार्थाप्ता हेतोः साध्यप्रत्यायने सन्नावसन्तो च बिर्स्थाप्तेवद्वावनं वर्णस् ॥ १५ ॥ (Pramāņa-naya-tattvālokālankāra, Chap. III.)

³ मन्द्रमतीं सु युत्पाद्धितुं दृष्टाक्नापनयिनगमनान्यपि प्रयोच्यानि ॥ २८ ॥ (Pramāṇa-naya-tattvālokālaṅkāra, Chap. III.)

testimony (i.e., $\bar{a}gama$) as also under the method of one-sided interpretation (naya) there is given an elaborate exposition of the $\bar{S}aptabha\dot{n}g\bar{\imath}naya$ (sevenfold paralogism). The mediate and immediate results of valid knowledge (pramāṇa) have been clearly laid down.

- 99. The results of knowledge and the practical use made of them are stated to be not illusory (samvṛti), but real (pāramār-thika).
- 100. Under naya (the method of comprehending a thing from one particular point of view), the fallacies of it (nayābhāsa) are also enumerated thus:—
 - (1) Naigamābhāsa (the fallacy of the naigama)—e.g., in Fallacies of Naya. estimating a soul we make a distinction between its "existence" (generic property) and its "consciousness" (specific property).
 - (2) Samgrahābhāsa (the fallacy of the collective)—occurs when we call a thing real if it possesses the generic property alone, altogether losing sight of its specific properties, as when we say a bamboo is real so far as it is a tree, but it has no specific properties.
 - (3) Vyavahārābhāsa (the fallacy of the practical)—e.g., the Cārvāka philosophy which makes a wrong distinction of substance, quality, etc.
 - (4) Rjusūtrābhāsa (the fallacy of the straight expression)—
 as the Tathāgata philosophy which altogether denies
 the reality of things.
 - (5) Sabdābhāsa (the verbal fallacy)—occurs when we recognise the distinction of times into past, present and future, but go on attaching one and the same meaning to a word in all the three times, e.g., if we now use the word "kratu" (sacrifice) in the sense of "strength" which it signified a thousand years ago.
 - (6) Samabhirūdhābhāsa (the fallacy of the subtle)—occurs when we interpret synonymous words such as Indra, S'akra, Purandara, etc., signifying altogether different things.
 - (7) Evambhūtābhāsa (the fallacy of the such-like)—occurs when a thing is discarded simply because it does not, at the moment, possess the properties implied by the name, e.g., Rāma is not a man (a thinking animal) because he is not at present thinking.
- 101. The soul $(\bar{a}tm\bar{a})$ which is the doer and enjoyer, and an embodiment of consciousness, is of the same size as its body.

In every person there is a separate soul which, having got rid of the bondage of its *karma* (act-fruits), attains emancipation.

102. The last chapter expounds the method of debate. Discussion $(V\bar{a}da)$ consists in assertion Rules of Debate. and counter-assertion for the establishment of a certain proposition by rejecting its opposite. The disputant or the person who opens the discussion may be eager either to gain a victory or to ascertain a truth. The truth may be sought either for one's own self as a disciple seeks it, or for others as a teacher seeks it. The same remarks apply to the opponent or respondent. There are four constituents of a council of discussion, viz., (1) the disputant $(v\bar{a}d\bar{i})$; (2) the opponent (prativadi); (3) the members (sabhya); and (4) the president (sabhāpati). The duty of the disputant and his opponent consists in establishing his own side and opposing the other side by means of proof. The members must be acceptable to both the parties in respect of the skill in grasping their dogmas; they must have a good memory, be very learned, and possess genius, patience and impartiality. Their duties consist in stating the assertions and replies of the disputant and his opponent with reference to the particular subject of discussion, in estimating the merits and demerits of their arguments and counter-arguments, in occasionally interrupting them for setting forth some established conclusions, and in, as far as possible, declaring the result of the discussion. The President must be endowed with wisdom, authority, forbearance and impartiality. duty consists in judging the speeches of the parties and the members, as also in preventing quarrels, etc., among them. In the event of the parties being desirous of victory alone, they may continue the discussion with vigour as long as the members wish; but if they are eager to ascertain the truth alone, they may continue the discussion so long as the truth is not ascertained and so long as they retain their vigour.

HEMACANDRA SÜRI (1088-1172 A.D.).

103. Hemacandra Sūri! (surnamed Kalikāla-sarvajña), born at Dhandhuka in Ahmedabad, was a pupil of Devacandra of the Vajraśākhā. He was a contemporary of King Jaya Simha and is said to have been the preceptor of Māhārāja Kumāra Pāla of Guzerat about Samvat 1199-1229. He was the author of a large number of works such as Kāvyānuśāsana-vṛtti, Chan-

¹ For details about Hemacandra, see Bühler's "Ueber das Lebens des Jaina Monches Hemacandra"; Pe'erson's 4th Report, p exli, and p. 82; and also Peterson's lecture on the story of Hema Candra published in the Bombay Gazette, August 29, 1895.

donuśāsanavrtti, Abhidhāna-cintāmaņi or Nāmamālā, Anekārtha-samgraha, Dvāśraya-mahā-kāvya, Trisastiśalākapurusa-caritra (a part of which is called Mahāviracaritra and the appendix called Pariśistaparya). Yogaśāstra, Nighantuśesa, etc.

104. He was also the author of a most important work on logic called Pramāṇa-mīmāṁsā, on which he himself wrote a commentary. This work, which is divided into five chapters, is written in the Sūtra or aphoristic style, and not in the form of a

prakarana (commentary).

105. He was a spiritual brother of Pradyumna Sūri, was born in Samvat 1145 or 1088 A.D., took the vow (vrata) in 1150 Samvat or 1093 A.D., attained the rank of Sūri in 1166 Samvat or 1109 A.D., and ascended to heaven (died) in 1229 Samvat or 1172 A.D. 3

CANDRAPRABHA SÜRI (1102 A.D.).

106. Candraprabha Sūri (born in Guzerat), who founded the Pūrņimāgaccha; in Samvat 1159 or 1102 A.D., was a pupil of

वाधकमुख्यविरिचितानि सकल्लाखचूड़ामणिभूतानि तत्त्वार्थसूचाणीति यद्यव-मकलक्षधमंकौत्त्वांदिवत् प्रकरणमेव किंनारस्यते किमनया स्वन्कारत्वाडोपुदिकया मैवं वोचः। भिन्नदिच्छंयं जनस्रतो नास्य खेच्छाप्रतिवन्थो लौकिकराजकीयं वा शासनमस्रोति यत्किञ्चिदेतत् तच वर्षसमूद्यासकैः पश्चभिरध्यायैः शास्त्रमेतद्रचयदा-चार्यः। तस्य च प्रेचावत्प्रदृष्टांगमभिधातुनिद्मादिस्त्वम्। स्वय प्रमाणमोमांसा स्वय रत्यस्य स्विकारार्थलात्।

(Quoted in Peterson's 5th Report, p. 148.)

श्रीमांखन्द्रकुनेऽभवद्गणनिधिः प्रयुव्वसूरिप्रसु-वेश्र्यस्य च चित्रहेमविधयं श्रीहेमसूरिविधिः ॥

(Candrasena's commentary on Utpadasiddhiprakarana, a manuscript of which is noticed in Peterson's 3rd Report, p. 209.)

अ श्रवेदेखरे वर्षे कार्शिके पूर्णिमानिशि । जन्माभवत् प्रभोर्थीमवाण्यंभो वृतं तथा ॥ रचवडोखरे स्ट्रिपिष्ठा चमजायत । नन्दद्वयरवी वर्षेऽवसानमभवत् प्रभोः ॥

(Prabhāvakacar., XXII, v. 851 seq., quoted by Klatt in Ind. Ant., Vol. XI, Sept. 1882, p. 254.)

¹ A manuscript of the Pramana-mimans with the commentary by the author himself has been noticed by Peterson in his 5th Report on Sanskrit MSS., pp 147-148. In explaining why the Pramana-mimans was written in the form of aphorisms, Hemacandra in the first chapter of the commentary says:—

⁴ For the origin of the Pūrnimāgaccha see Dr. R. G. Bhandarkar's Report, 1883-84, p. 147.

Jayasimha Sūri and preceptor of Dharmaghoṣa. He i was the author of Darśanaśuddhi, otherwise called Samyaktva-prakaraṇa, and possibly also of the two logical treatises called the Prameyaratnakoṣa and Nyāyāvatāra-vivṛti. He was a great logician, and in debate appeared as a lion before the opponents who resembled elephants.

107. The Nyāyāvatāra-vivṛti is an excellent commentary on the Nyāyāvatāra of Siddhasena Divākara. In it mention is made of the Buddhist logicians Dharmottara, Arcaṭa⁴ and others, and there is also a criticism of the views of Saugata, Naiyāyika, Mīmāmsaka, Vaisesika, Sāmkhya, Cārvāka, Bauddha, Sauddhodani, Kaṇabhakṣa, Akṣapāda, Brahama-vādi, etc.

NEMICANDRA KAVI (ABOUT 1150 A.D.).

108. Nemicandra, born in Guzerat, who combatted the views of the Hindu philosopher Kaṇāda, was a great teacher of

1 For Candraprabha Suri see also Peterson's 4th Report, p. xxvii.

तीर्थं बीरिवभोः सुधर्मगणस्त्रमानस्त्रभेत्रति सारिवोक्सस्यस्त्रम् कल्लिभोद्यासम्मेतद्वतिः। साहित्यागमतर्वस्यस्यम्बानिसापगासगरः त्रीचन्द्रप्रभद्धरिरद्वतमतिर्वाहीभसिंदीऽभवत ॥ १॥

(Dasavaikālikatīkā by Tilakācārya, noticed in Peterson's 5th Report, p. 65.)

+ प्रमाणेत्यादि खनेन च तादाक्षात्रनुत्वित्वच्च विकलतया ध्वनेविद्दं प्रति वामाखनेगाद् चिभवेयादिस्यनहारीत्यद्वाचंत्रंयसुचेन नेतारः नवर्ष प्रति प्रात्माद्याने इति वर्षोत्तरो मन्यते ... चर्चटसु चाद न नावकोत्यादकनेतत् प्राताखाभावात् वेर्षा चाप्रमाचादप्रदृष्टकः।

(Nyāyāvatāra-vivrti, on verse l.)

² The manuscript of Nyāyāvatāra-vivṛti, which I consulted, was obtained from Bhavanagar, Bombay, through Munis Dharmavijaya and Indravijaya. In the Nyāyāvatāra-vivṛti itself there is no mention of Candraprabha Sūri. Elsewhere I have seen it stated that it was the work of that author. The authorship must, however, for the present, remain an open question. In the colophon of the Nyāyāvatāra-vivṛti it is stated that it was the work of Siddhasena-Divākara-vyākhyānaka or simply Siddha-vyākhyānaka which was evidently a surname. Munis Dharmavijaya and Indravijaya relying on the line are a surname. Munis Dharmavijaya and Indravijaya relying on the line are a surname. Munis Peterson's 3rd Report, p. 168) are inclined to identify Siddha-vyākhyānaka with Siddharşi who lived in Saṃvat 962 or 905 A.D. (as is evident from Peterson's 4th Report, p. cxxix). There is another commentary on the Nyāyāvatāra by Haribhadra Sūri. For Darśana-śuddhi, vide Peterson 3, App. 91; for Prameya-ratna-kośa, vide the Jaināgama List, published in Bombay, p. 77; and for the Nyāyāvatāra-vivṛti vide Peterson 3, p. xvi.

logic.¹ He was a pupil of Vairasvāmi and preceptor of Sāgarendu (Sāgaracandra) Muni, as is mentioned by Māṇikyacandra, Sāgarendu Muni's pupil, in his Pārśvanātha-caritra written in Samvat 1276 or 1219 A.D. As Mānikyacandra flourished about 1219 A.D., his preceptor's preceptor Nemicandra must have lived about 1150 A.D. Nemicandra was styled a Kavi. 3

Ānanda Sūri and Amaracandra Sūri, nicknamed Tiger-cub and Lion-cub (1093-1150 A.D.).

109. These two, born in Guzerat, were great logicians who, even in their boyhood having overcome their elephant-like opponents in dispute, were nicknamed, respectively, Vyāghra-śiśuka (Tiger-cub) and Simha-śiśuka (Lion-cub.) They were the twin pupils and successors of Mahendra Sūri in the Nāgendra-gaccha, and were succeeded by Haribhadra Sūri. As Siddharāja from whom they received their nicknames ascended the throne in Samvat 1150 or 1093 A.D., they must have flourished at the beginning of the 12th century A.D. It is probably these two

वहतकिन्नगिवन्य विकास विकास कार्या अपित कार्या क

(Pārsvanātha caritra noticed in Peterson 3, p. 160.)

The same verse is quoted almost verbatim in the Kāvya-prakāsa-samketa by Māṇikyacandra Sūri, noticed in Peterson 3, p. 321.

² For Nemicandra, see also Peterson 4, p. lxxi.

See Dr. R. G. Bhandarkar's Report, 1883-84, p. 122.
Udayaprabha Sūri, who was the successor of Haribhadra Sūri through Vijayasena Sūri, in his Dharmābhyudaya-mahākāvya, noticed by Peterson in his 3rd Report, pp. 16-19, writes:—

चानन्द् रिरिति [तस्य वधूव] शिकाः
पूर्वीऽपरः समधरोऽमरचन्द्वारः ।
धर्मदिपस्य दसनाविन पापदचचोदचमी जगति यो विश्वदो विभातः ॥ ६ ॥
चस्राधवाङ्मयपयोनिधिमन्दरादिसुद्राजुषोः विभानयोः सुमन्ने महिकाः
वाक्रेऽपि निर्देशितवादिमजी जनाद
यो वाक्रसिंदिस्युकाविति सिदराजः ॥ ४ ॥

⁵ For further particulars of Ananda Süri and Amaracandra Süri see Peterson 4, p. vii. 8

logicians who are referred to by the Hindu logician Gangesa Upādhyāya in his Tattva-cintāmaņi under Sinha-vyāghrī-lakṣaṇa of Vyāpti.

HARIBHADRA SÜRI (ABOUT 1168 A.D.).

110. We find mention of at least two Svetāmbara Jaina authors bearing the name Haribhadra Sūri. One died in Samvat 535 or 478 A.D., while the other, who was a pupil of Ānanda Sūri and Amaracandra Sūri of the Nāgendragaccha, lived about Samvat 1225 or 1168 A.D.² It is this second Haribhadra Sūri who was called "Kalikāla-Gautama." He must have been an eminent logician if we suppose him to be the author of the Saḍdarśana-samuccaya, the Daśavaikālika-niryukti-tīkā, the Nyāya-praveśaka-sūtra and the Nyāyāvatāra-vṛtti. There are

पंचसर पणतीर विद्वमकालाची भाति चलमिची। चरिभइस्टरिस्टरो निक्ष्णो दिसल सिवसुरक्क ॥ १०० ॥

(Gacchotpatti-prakīrņaka quoted in the Gāthāsīhāsrī noticed in Peterson 3. p. 284.)

² Klatt refers to Bühler's Sukrtusamkīrtana, pp. 24-25; see Peterson 4, pp. cxxxix, cxl.

उत्तरामापनिषञ्जिषस्व द्यो भीजनाभूनिस्योः पट्टे त्रीहरिभद्रसूरिरभवत्रारिनिणामप्रणोः। भान्या ग्रून्यभनात्रयैरितिचिराद्यसिद्वत्रच्यानतः समुद्देः कल्लिकालगौतम इति ख्यातियितेने गुणैः ॥ ॥ ॥

(Dharmālshyudaya-mahākāvya by Udayaprabha Sūri noticed in Peter-

son 3, Appendix I, p. 18.)

4 In the concluding lines of the Daśavaikālika-niryukti-tīkā it is stated that the author of that work was one Haribhadra Sūri who was a dharmaputra of Yākinī. A similar description of Haribhadra the author of Ṣaddarśana-samuccaya is found in the opening sentences of Gunaratna's commentary on that work (dated about 1409 A.D). The Caturvińśati-prabandha by Rājaśekhara Sūri composed in Samvat 1405 or 1348 A.D. makes a like reference to Haribhadra, the author of Nyāyāvatāra-vrtti. Now the dharmaputra of Yākinī is generally held to be a surname of the first Haribhadra Sūri whose disciples were Hamsa and Paramahamsa, as is evident from Prabhācandra Sūri's Prabhāvaka-carītra dated about 1277 A.D.

In the Gacchotpatti-prakarana, Gāthā-sāhasrī, Vicāra-sāra-prakarana, Vicārāmṛta-saṃgraha, Tapāgacchapatṭāvalī, Kharataragaccha-patṭāvalī, etc., Haribhadra Sūri I. is stated to have flourished in Saṃvat 535 or 478 A.D.

Now the Nyāyāvatāra which is alleged to have been commented on by Haribhadra Sūri 1. was itself composed about 533 A.D. (that is, after 478 A.D.), and Dharmakīrti, whose logical doctrines have been referred to in the Ṣaddarśana-samuccaya, lived about 650 A.D. These facts prove that Haribhadra the author of Nyāyāvatāra-vṛtti and Ṣaddarśana-samuccaya lived after 650 A.D.

strong grounds for supposing that the Ṣaddarśana-samuccaya was not the work of the first Haribhadra Sūri, as it refers in the chapter on the Bauddhadarśana to the views of such authors as Dignāga, Dharmakirti, and others who flourished long after the 5th century A.D. The six systems (Ṣaddarśana) treated by him are (1) Bauddha, (2) Naiyāyika, (3) Sāmkhya, (4) Jaina, (5) Vaiśeṣika and (6) Jaiminiya.

111. Haribhadra Sūri is often described ² as having protected the word of the Arhats like a mother by his 1,400 works. He is said to have used the word *viraha* (separation or sorrow) as his mark in the last verse of each of his wo ks. He was by birth a Brāhmaṇa and was chaplain to king Jitāri whose capital was

Dr. Jacobi in his letter, dated the 21st October 1907, writes to me that "Haribhadra used the word viraha in the Samaraiccakahā, which is alluded to by Siddharsi who wrote in 905 A.D."

Regarding the dates of the Saldar ana-samuccaya, etc., he observes:—These are "unanimously ascribed to the first Hamblindra," "whose date I believe, with Prof. Leumann, to have been wrongly referred to the Samvat era instead of the Valablin or Gupta era, which commenced in 319 A.D."

According to Dr. Jacobi, therefore, the Saldar ana-sammuccaya etc., were written by the first Hambhadra Sūri, who died in 535 Gupta Samvat or 854 A.D.

Dr. Jacobi's theory removes many of our difficulties, yet it is far from being conclusive, as the Jaina authors very seldom used the 'upta era. Moreover, it is inexplicable why Vācaspati Misra and Uduyanācārya did not refer to such an excellent compendium of Indian pinlosophy as the Saddarsana-samuccaya if it existed as early as the 9th or 1 th century A.D. I am therefore inclined to believe that Haribhadra Sūri II was the author of the Saldarsana-samuccaya, Nyāyūvatāra-vrtti, etc., while the Samaraiccakahā and other treat-ses might be the works of the first Haribhadra Sūri.

But I must confess that the modern Jaina Panditas such as Munis Dharmavijaya and Indravijaya firmly believe that the author of all these works was the first Haribhadra Sūri who, according to them, flourished in 535 Vikrama Samvat, or 478 A.D.

प्रत्यचं करपनापोड्मक्षानं तव वृध्यताम्। विक्याचित्रतो चितित्रानं बन्मानसंज्ञितम्॥

(Ṣaddarśana-samuccaya, chapter on Bauddha-darśana, p. 38, edited by Dr. Suali).

This verse refers without doubt to the definition of Pratyakea and Anumana given by Dharmakirti who lived about 650 A.D.

2 Klatt in his "Paţţāvalī of the Kharataragaccha" in the Ind. Ant., Vol. XI, Sept. 1882, p. 247; also Poterson 3, p. 35. Also:

खौनि शोषरिभदं तं येनार्वद्वीर्भषतरा । चत्रदंशपकरणशस्यायोखन मास्वत् ॥ १८ ॥

Amerasvāmicarita by Muniratna Sūri noticed in Peterson 3, p. 91.

Chittore near the Citrakūṭa hill. He was instructed in the Jaina doctrine by Jinabhaṭa. Two of his pupils, named Hamsa and Paramahamsa, are said to have left him as missionaries of the Jaina faith, and to have been slain in the Bhoṭa country (Tibet) by the fanatical Buddhists whom they sought to convert. The sorrow caused by the death of these two pupils is said to have been symbolised in the word viraha.

112. It is generally supposed that Haribhadra Sūri, whose pupils were killed in Tibet, was the first author of that name. But there will be no inconsistency if we suppose him to be the second Haribhadra Sūri, for the religious intercourse between India and Tibet was more frequent in the 12th century A.D. than in the 5th century, when Tibet had scarcely emerged into the ken of history.

RATNAPRABHA SÜRI (1181 A.D.).

113. Ratnaprabha Sūri, who belonged to the Svetāmbara sect, was a logician of repute, being the author of a light commentary (laghu-ṭikā) on the Pramāṇa-naya-tattvālokālankāra called Syād-vāda-ratnāvatārikā in which are quoted the views of the Buddhist logicians Arcata (q. v.) and Dharmottara (q. v.)

114. While in Broach at the Aśvavabodhatirtha in Samvat 1238 or 1181 A.D., he wrote another work called Upadeśamālāvrtti ⁸ to please Bhadreśvara Sūri and in payment of the debt he owed to Vijayasena Sūri, the brother of Bhadreśvara. There he gives his spiritual descent in the Vrhadgaccha as follows: (1) Municandra Sūri; (2) Deva Sūri; (3) Bhadreśvara Sūri and (4) Ratnaprabha Sūri.⁴

. प्रमाणे च प्रमेवे च नासानां नुबिधिववे । बिचिकु वचनचातुर्व्यचापस्थयमाद्धे ॥ प्रमेयरमकोटीकाः पूर्णोरमाकरो मदान् तवावतारमावेष स्वेरकाः स्तार्थता॥

8 (Syādvāda-ratnāvatārikā, Muni Dharmavijaya's MSS., p. 99). A part of the Syādvāda-ratnāvatārikā has been printed and published in the Benares Jaina Yasovijaya series.

त्रीर्मप्रभक्करिभिः ग्राभक्कते त्रीहैवक्करिप्रभोः। विक्रीः येयमकारि सम्बद्धते द्रतिर्विवेषार्थिनाम् ॥ विक्रमाद्वसुकोकार्क (१९२८) वर्षे माचे समर्थिता। रकादमस्याणि सार्वे प्रथमनं तथा॥

(Upadeśamālā-vṛtti, noticed in Peterson 5, p. 124).

 $^{^{1}\ \}textit{Vide}\ \text{Introduction}$ to Saddaríanasamuccaya published in the Chowkhamba series, Benares.

[•] For other particulars of Ratnaprabha Sūri, vide Peterson 4, p. cii. Compare also Weber II, p. 922, note 7.

MALLIŞENA SÜRI (1292 A.D.).

115. He belonged to the Nagendra Gaccha of the S'vetāmbara sect, and was the author of the Syādvādamañjarī, a commentary on Hemacandra's Vītarāga-stuti or Dvātrimsikā. The Syadvāda-mañjarī contains an exposition of the Pramāṇa, Saptabhaṅṣīnaya, etc., and criticises Akṣapāda's theories of Pramaṇa, Chala, Jāti, Nigrahasthāna, etc. The doctrines of the Samkhya, Aulūkya, Jaiminīya, Bhaṭṭapāda, Vedānta, Yogācāra, Madhyamika, Cārvaka, etc., have also been his favourite subjects of attack. At the close of his work Malliseṇa describes himself as a pupil of Udayaprabha Sūri and as having composed the work in S'aka 1214 or A.D. 1292.

Rājasekhara Sūri (1348 A.D.).

116. Rājašekhara Sūri, or Malladhāri S'rī Rājašekhara Sūri, belonged to the S'vetāmbara sect and was the author of the Ratnāvatārīkā-pañjikā,² a sub-commentary on the Pramāṇanaya-tattvālokalankara, as also of two other works called Syādvāda kalikā and Caturvimšatiprabandha.³ He is also the author of a Pañjikā (commentary) on the Nyaya-kandalī of the Hindu philosopher S'rī-dhara. He studied the Nyāya-kandalī under teacher Jinaprabha,⁴ and is said to have lived in Samvat 1405 or 1348 A.D.⁵

JÑĀNA CANDRA (1350 A.D.).

117. He belonged to the Svetāmbara sect and was the author of a gloss on the Ratnāvatārikā called the Ratnāvatārīkā-ṭippana, which discusses many abstruse points of logic and criticises the

[।] त्रोमक्षिषेखद्धरिभिरकारि तत्पदगगनदिनमणिभिः । इतिरियं समुर्राविभितग्रकाच्द दोपमदिस ग्रनौ ॥ १ ॥

(Syādvādamañjarī, p. 220, printed in the Benares Chowkhamba Sanskrit Series, and edited by Dāmodara Lal Gosvāmi.)

- ² A part of the Ratnāvatārikā-pañjikā has been printed and published in the Benares Jama Yasovijaya series.
- 3 This work has been published by Hira Lal Hamsarāja at Jāmanagara in Kathiwar.

श्रोमिक्यनप्रभविभोरिधगत्य न्यायकद्लीं किश्वित् । तस्यां विद्यतिलवमचं करवे स्वपरोपकाराय ॥

(Nyšyakandalı of Sridhara with the Paŭjika of Rajasekhara noticed in Peterson 3, p. 273; cf. also Peterson 3, pp. 28-29.)

⁵ Vide Weber II, p. 1207.

views of Dignāga 1 and others. He composed this work 2 under orders from his preceptor Rājašekhara Sūri, who flourished in 1348 A.D. Jñāna Candra's date may approximately be fixed at about 1350 A.D.

GUNARATNA (1409 A.D.).

118. Guņaratna belonged to the Tapāgaccha of the S'vetāmbara sect, and was the distinguished author of a commentary on the Ṣaḍdarśana-samuccaya ⁸ called Saḍdarśana-samuccaya-vṛtti or Tarka-rahasya-dīpikā in which the Nyaya (logic) along with other systems has been lucidly explained. He also wrote the Kriyā-ratna-samuccaya.

119. He is mentioned by Ratna-sekhara Sūri in the S'rāddhapratikramaņa-sūtra-vṛtti composed in Samvat 1496 or A.D. 1439. In that work Gunaratna is mentioned as a pupil

> वेनान्यापोष्ट्रविषयाः प्रोक्ताः सामान्यगोषराः । मन्द्राय बुडययेव बसुन्येषामसम्बदात् ॥ षर्य बार्ष्या वेनाचार्य्य दिग्नागेन षन्यापोष्ट्रविषयाः ... प्रोक्ताः ॥

> > Jñānacandra's Ratnāvatārikā-tippana, chap. I, p. 7, published in Yasovijaya-granthamālā of Benares.

श्वाकरावतारिका वरिष्यं तत् ज्ञानेन्द्ररस्पतरथीः स्वमितः प्रदृत्ते । तिस्यको रचितवान् मस्यधारिपृष्य-श्रीराजसेषरगुरोष निर्देशमास्य

Quoted from the MSS. of Ratnakarāvatārikā-tippanaka, lent to me by Muni Dharmavijaya. A part of this work has been printed and published in the Benares Jama Yasovijaya series.

- 3 Şaddarsana-samuccaya with Vrtti, edited by Dr. Suali, is being published by the Asiatic Society of Bengal. There is another commentary on Saddarsanasamuccaya called Laghuvrtti by Manibhadra. It has been published in the Chowkhamba series.
- * The Srāddha-prati-kramaņa-sūtra-vṛtti by Ratnaśekhara Sūri, has been noticed in Peterson 3, pp. 226-227, whence the following lines are quoted:—

विकातनपैत्याच्या जगित जगवनस्वर्याःभूवम्। नौदैवद्यन्दरगुरूनमाच्य तद्युनमादिदिताः॥ १। पच च वेषां शिव्याचीव्याद्या न्नानसायरा गुरवः। १ कुछमञ्जना दिनीवाः नीगवरन्नावृतीवाद्य ॥ १॥ of Devasundara, who attained the exalted position of Sūri at Aṇahillapattana in Samvat 1420 or A.D. 1363.¹ Guṇaratna must, therefore, have lived between A.D. 1363 and A.D. 1439. Devasundara Sūri, teacher of Guṇaratna, was a contemporary of Muni-sundara Sūri, the famous author of the Gurvāvall² composed in Samvat 1466 or A.D. 1409. Guṇaratna himself says that his Kriyāratna-samuccaya³ was composed in Samvat 1466 or A.D. 1409.

120. Gunaratna, in his elaborate commentary (Vrtti) on the Saddarsana-samuccaya, has mentioned Sauddhodani, Dharmottarācārya, Arcata, Dharmakirti, Prajnākara, Kamalasila, Dignaga, and other Buddhist authors, as well as Tarkabhasa, Hetubindu, Arcata-tarkatikā, Pramāna-vārtika, Tattvasamgraha, Nyāyabindu, Nyāyapraveśaka, and other Buddhist works on logic, etc., in the chapter on the Bauddha system. Mention has also been made, in the chapter on the Nyaya, of such Hindu logicians as Akṣapāda, Vātsyāyana, Udyotakara, Vācaspati, Udayana, Srikantha, Abhavatilakopādhyava, Javanta. and of such works as Nyāya-sūtra, Nyāyabhāsya, Nyāya-Tatparyatika, Tatparyaparisuddhi, Nyayalankara, vārtika. Nyāyālankāravrtti, etc. The Nyāya-sāra of Bhā-sarvajña and the eighteen commentaries on it such as Nyavabhusana, Nyavakalika, Nyavakusumanjali, etc., have also been mentioned.

बढ्दशेनहत्तिविद्यारवस्तुवयविचारनिचयस्कः । स्वां शीसुनुक्वां प्रसादतोऽस्ट बड्ड्यविद्यसिवे । सीरवाधेचरमप्टिंतिमिमामस्त स्तितःहै 1 8 १

- 1 Vide Dr. Klatt on the Pattivali of the Kharataragaccha in the Ind. Ant., Vol. XI, September 1882, pp. 255-256; cf. also Weber II, p. 884; and Dr. R. G. Bhandarkar's Report, 1883-84, p. 157.
 - रसरसमनुमितवर्षे १४९९ सुनियुन्दरस्रिएण छता पूर्वम् ।
 मधाखोरवधार्या गुर्वाजीयं जयत्रीवा ॥ ८२ ॥

(Gurvāvalī, Jaina-Yaśovijaya granthamālā series, p. 109).

3 काची पड्रसपूर्व १४९९ वत्सरिति त्रीविक्रमार्काइते मुर्वाहेम्बमाहिन्द्रमा च स्टा खान्योपकारं परम् । सन्यं त्रीमुष्ट्रमस्ट्रिरतनोत् प्रशाविचीनोऽप्यसं निर्देत्पक्रतिप्रधानजननेः शोधस्वयं घीधनः ॥ १६॥

> (Kriyāratna-samuccaya, Jaina Yaśovijaya granthamālā series, p. 309).

DHARMA-BHÜŞAŅA (ABOUT 1600 A.D.).

121. A Digambara author who wrote the Nyāya-dīpikā about 300 years ago. He has been mentioned in the Tarkabhāsā ¹

by Yasovijaya Gani.2

122. The Nyāya-dīpikā begins with a salutation begins vital Vardhamāna. It is divided into three chapters (Prakāśa viz.. (1) general characteristics of valid knowledge, pramāna-sāmānya-lakṣaṇa, (2) perception, pratyakṣa, and (3) indirect knowledge, parokṣa, including recollection, smṛti, recognition. pratya-bhijnāna, argumentation, tarka, inference, anumāna, tradition, āgama, and the method of comprehending things from particular

standpoints, naya.

123. The technical terms of logic have been defined and minutely examined and the views of other logicians, specially of the Buddhists, have been severely criticised. There are references to Sugata. Saugata, Bauddha, Tāthāgata, Mīmāmsaka, Yauga, Naiyāyika, Bhāṭṭa, Prābhākara, Dignāga, Samanta Bhadra. Akalaṅka Deva, Sālikā Nātha, Jainendra, Syād vāda-vidyāpati, Māṇikya Nandi Bhaṭṭāraka, Kumāra Nandi Bhaṭṭāraka, Udayana and others. The following works are also mentioned:—Prameya-kamala-mārtaṇḍa, Rājavārtika. Slokavārtika, Slokavārtika-sloka-vārtika, Āptamīmāmsā-vivaraṇa, Nyāyaviniścaya, Pramāṇa-nirṇaya, Pramāṇa-parīkṣā, Parīkṣāmukha, Nyāyabindu, etc.

Yasovijaya Gaņi (1680 A.D.).

124. Yaśovijaya belonged to the S'vetāmbara sect and was the famous author of Nyāya-pradīpa, Tarkabhāṣā, Nyāya rahasya, Nyāyāmṛta-taraṅgiṇī, Nyāya-khaṇḍa-khādya, Ane-kānta Jaina-mata-vyavasthā, Jñānabindu-prakaraṇa, etc. He also wrote a commentary on the Digambara work Aṣṭasāhasrī

Yaśovijaya's Tarkabhāṣā, leaf 10, MSS. lent to me by Munis Dharmavijaya and Indravijaya.

श्रीवर्डमानमर्जनं नमा वासपबुड्ये। विरुष्ये मितस्यव सन्दमन्यायदीपिका ॥ १॥

(Nyāyadīpikā, chap. I).

¹ This work has been printed in Kolhāpura.

² इत्यं वा ज्ञानिनवर्तकलेन तर्कस्य प्राभाष्यं धर्मभूषयोक्तं चत्येव तत्र निष्याज्ञानक्षी सवन्येचे संगन्धते ।

⁴ For other particulars about Yaśovijaya see Peterson 6, p. xiv. For his works see the Jaināgama List published in Bombay.

called Astasāhasrī-vrtti. The Tarkabhāsā begins with a salutation to Jina. It consists of three chapters, viz. (1) Valid knowledge, pramāna, (2) Knowledge from particular standpoints, naya, and (3) Imposition, nihksepa. He occasionally discusses vyāptigraha, or the means of establishing the universal connection between the middle term and the major term.

125. He is descended from Hiravijava, the well-known Suri of Akbar's time (no. 58 of the Tapagaccha pattavali). He ascended heaven in Samvat 1745 or A.D. 1688 at Dabhoi, in modern Baroda State. To perpetuate his memory there has been established at Benares a college called Jaina Yaśovijaya-pāthaśālā under the auspices of which the scred Jaina works are being published in a series called Jaina Yaśovijava-granthamālā.

> । ऐन्द्रप्टन्दनतं नता जिनं तन्त्राधेरेशिनस प्रमाचनयनिक्षेपेसकेभाषां तनाव्यसम् (Tarkabhāsā, chap. I).

BOOK II.

The Buddhist Logic.

CHAPTER I.

THE OLD BUDDHIST REFERENCES TO LOGIC.

BUDDHA GAUTAMA (623 B.C.—543 B.C.).

1. The Buddhists maintain that their religion is eternal. It was taught at different cycles by sages called Buddhas (the Enlightened Ones) or Tathāgatas (those who have realised the truth). In the present cycle, called *Mahā-bhadra-kalpa* (the very blessed cycle), four Buddhas are said to have already appeared, viz., Krakucchanda, Kanaka Muni, Kāṣyapa and Gautama, while the fifth, viz., Maitreya, is yet to be born.

2. Of the past Buddhas the last, viz., Buddha Gautama, otherwise called Sākya Muni. was born at Kapilavastu (modern Nigliva in the Nepal Terai) in 623 B.C., and attained nirvāna at Kuśinagara (modern Kuśinārā near Gorakhpur) in 543 B.C.² He passed almost his whole life in Magadha (modern Behar). He is regarded by modern scholars as the real founder of Buddhism, while his predecessors are considered as purely mythical.

ORIGIN OF THE PALL BUDDHIST LITERATURE (543 B.C.—76 B.C.).

3. Buddha Gautama is said to have delivered his teachings in the Māgadhī or Pāli language. On his death these teachings were rehearsed by the Buddhist monks in three councils 3 held

¹ Vide Hardy's Manual of Buddhism, second edition, pp. 88—91.
2 The exact date of Buddha is unknown. The date given here is

² The exact date of Buddha is unknown. The date given here is according to the Mahāvamsa, the Pāli chronicle of Ceylon. The date of Buddha's nirvāṇa is placed by European scholars between 470—480 B.C. Cf Dr. Fleet's article on "The Date of Buddha's Death" in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, January, 1904.

⁸ For an account of the first and second councils, vide Vinaya Pitaka, Culla Vagga, 11th and 12th Khandhakas, translated by Rhys Davids and

at Rājagrha, Vaisāli and Pātaliputra under the patronage of kings Ajātasatru, Kālāsoka and Asoka about the year 543 B.C., 443 B.C. and 255 B.C.¹ respectively. The texts of the teachings as discussed and settled in these councils form the sacred scripture of the Buddhists. This scripture is called in Pāli Tepiṭaka or Piṭakattaya and in Sanskrit Tripiṭaka or Piṭakatraya which signifies 'Three Baskets.' It consists of the Sermon Basket (Sutta Piṭaka), Discipline Basket (Vinaya Piṭaka) and the Metaphysical Basket (Abhidhamma Piṭaka), each of which embodies a large number of distinct works.

4. The monks assembled in the First Council, that is in the Council of Kāṣṣapa in 543 B.C., were called (1) Theras, and the scripture canonised by them was called Theravāda. Subsequently ten thousand monks of Vaiṣālī having violated certain rules of the Theravāda were, by the decision of the Second Council in 443 B.C., expelled from the community of the Theras. These excluded priests were called (2) Mahāṣānghikas who were the first heretical sect of the Buddhists. They made certain additions and alterations in the Theravāda. Afterwards within two hundred years from the nirvāna of Buddha 14 other heretical sects ² arose, viz., (3) Gokulika, (4) Ekabbohārika, (5) Paññatti, (6) Bāhulika, (7) Cetiya, (8) Sabbatthi, (9) Dhammaguttika, (10) Kassapīya, (11) Saṅkantika, (12) Sutta, (13) Himavata, (14) Rājagirīya, (15) Siddhatthika, (16) Pubbaselīya, (17) Aparaselīya and (18) Vajiriya.

5. Just at the close of the Third Council about 255 B.C., the teachings of Buddha as canonised by the Theras in the form of the *Tepitaka* were carried by Mahinda, son of Emperor Asoka, to the island of Ceylon where they were perpetuated by priests in oral tradition. They are said to have been committed to writing for the first time in Ceylon in the reign of Vattagāmani during 104-76 B.C. Besides the *Tepitaka* there

Oldenberg, S.B.E. series, vol. XX, pp. 370, 386. For an account of the third council as also of the first and second, *vide* Wijesimha's translation of the Mahāvamsa, chapter V, pp. 25—29, as also chapters III and IV.

¹ As to the dates of the 1st and 2nd Councils I follow the Pāli Mahāvainsa. The date of the 3rd Council is in accordance with modern researches. Asoka ascended the throne in 272 B.C. (Vide Vincent A. Smith's Asoka, p. 63), and it was in the 17th year of his reign that the third Council took place (vide Wijesimha's Mahāvamsa, p. 29).

² For a discussion about the variant names and subdivisions of these sects, *vide* Wijesimha's Mahāvainsa, part I, chapter V, p. 15; and Dr. Rhys Davids' "Schools of Buddhist Belief" in the Jou nal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, 1892, pp. 1-37.

³ Vide the Mahavamsa, chapter XII.

⁴ Vide the Mahavamsa, chapter XXXIII. Cf. also Dr. Alwis's Lecture on the Pali Language in the Journal of the Pali Text Society, London. 1883, p. 42.

were numerous other works written in Pāli which have immensely added to the bulk of the Pāli literature.

LOGIC TOUCHED ON IN THE PALL LITERATURE.

- 6. In the Tepitaka—nay in the whole Pāli literature—there is not a single treatise on Logic. This is not at all a matter of surprise, for, according to the Pāli works, our knowledge (called in Pāli: $Vi\tilde{n}\tilde{n}ana$ and in Sanskrit: $Vi\tilde{n}\tilde{n}ana$) has arisen from $Avidy\bar{n}^{\dagger}$ or cosmic blindness, and is therefore a mere illusion. Such being the character of our knowledge, it cannot form the subject-matter of Logic, the sole function of which consists in laying down criteria for determining real or valid knowledge.
- 7. The only topic bearing upon Logic which has been touched on in the Pāli works, is the division of knowledge into six kinds. In the Tepiṭaka² knowledge (Viñnaṇa³) has been classified as (1) ocular (cakkhu-viñnāṇaṁ). (2) auditory (sota-viñnāṇaṁ), (3) olfactory (yhāna-viñnāṇaṁ), (4) gustatory (jivhā-viñnāṇaṁ), (5) tactual (kāya-viñnāṇaṁ) and (6) mental (mano-viñnāṇaṁ). But this classification has not been carried far enough to lay the foundation of a Logic that deserved the name of science.
- 8. In the Tepitaka there are, however, occasional references to a class of men who were called Takki (in Sanskrit: Tarkin or Takkika (in Sanskrit: Tarkin—that is, those versed in reasoning. It is not known whether these men were Buddhists, Jainas or Brāhmaṇas, perhaps they were recruited from all communities. They were not logicians in the proper sense of the term but they appear to me to have been sophists who indulged in quibble and casuistry.

THE Brahma-jāla-sutta (543 B.C.—255 B.C.).

9. In the Brahma-jāla-sutta, which forms a part of the Dīgha Nikāya of the Sutta Piṭaka and was rehearsed in the three Buddhist Councils during 543 B.C.—255 B.C., mention

¹ Avidyā (cosmic blindness) forms the first link in the chain of Paticca samuppāda explain d in the Vinaya Pitaka, Mahāvagga, Pathama Khandhaka, translated by Rhys Davids and Oldenberg, S.B.E series, vol. III, pp. 73—75.

² Vide the Anguttara Nikāya III, 61. 8, edited by Dr. Morris in the Pāli Text Society series of London. Vide also the Dhammasanginī, and compare Pariccheda IV of the Abhidhammatthasangaha which, though not included in the Tepiṭaka, sums up the topics of the Abhidhamma Pitaka.

Viññāna is translated as knowledge or consciousness, such as cakkhu-viññāna signifies ocular knowledge or eye-consciousness.
 "Hofrath Dr. Bühler, in the last work he published, expressed the

is made of those Sramanas and Brāhmanas who were Takki and Vīmamsi and indulged in Takka and Vīmamsā. Buddha speaks of them thus:—

"In this case, brethren, some recluse or Brāhmaṇa is addicted to logic [sophism] and reasoning [casuistry]." He gives utterance to the following conclusion of his own, beaten out by his argumentations and based on his sophistry: "The soul and the world arose without a cause."

This passage refers, in my opinion, to a sophist rather than to a teacher of Logic.

THE Udana (543 B.C.—255 B.C.).

- 10. Again, in the Udāna, which is included in the Khuddaka Nikāya of the Sutta Pitaka and is supposed to have been rehearsed in the three Buddhist Councils during 543 B.C.—255 B.C., we read:—
- "As long as the perfect Buddhas do not appear, the Takkikas [sophists] are not corrected nor are the Sāvakas: owing to their evil views they are not released from misery." This passage leaves no doubt that the Takkikas were sophists.

THE Kathavatthuppakarana (ABOUT 255 B.C.

11. The Kathāvatthuppakaraņa, a work of the Abhidhammapiṭaka, composed by Moggaliputta Tissa at the Third Bud-

opinion that those books, as we have them in the Pāli, are good evidence, certainly for the fifth, probably for the sixth, contury B.C."

-Rhys Davids' Preface to the Dialogues of the Buddha, p. XX.

¹ The Brahma-jāla-sutta 1—32 included in Dialogues of the Buddha translated by Rhys Davids, London, p. 42.

Dr. Rhys Davids translates Takki (Tarki) and Vimansi (Mimānsi) as "addicted to logic and reasoning." But the expression may also be rendered as "addicted to sophism and casuistry."

The original Pali runs thus:-

Idha, bhikkhave, ekacco samano vā brāhmano vā takkī hoti vīmameī. So takka-pariyāhatum vimamsānucaritam sayam-patibhānam evam āha: "Adhicca-samuppanno attā ca loko cāti."

—The Brahma-jāla-sutta 1—32 included in the Dīgha Nikāya, p. 29, edited by T. W. Rhys Davids and J. E. Carpenter, London.

² The original of this passage runs as follows: -

Yāva sammā sambuddhā loke n'uppajjanti, na takkikā sujjhanti na c'āpi sāvakā, duddithī na dukkhā pamuccare'ti.

—Udānam, vi, 10, edited by Paul Steinthal in the Pāli Text Society series, London. dhist Council during the reign of Asoka about 255 B.C., mentions patinnā (in Sanskrit: pratijnā, proposition), upanaya (in Sanskrit, too: upanaya, application of reason), niggaha (in Sanskrit: nigraha, humiliation or defeat), etc., which are the technical terms of Logic. Though Moggaliputta Tissa has not made any actual reference to Logic, his mention of some of its technical terms warrants us to suppose that that science in some shape existed in India in his time about 255 B.C.

THE Milinda-pañha alias THE Bhikṣu-sūtra (ABOUT 100 A.D.).

12. The only Pāli work in which an explicit reference to Logic called Nīti (or Nyāya) occurs is the Milinda-pañha otherwise known as the Bhikṣu-sūtra, which was composed about 100 A.D.8 It was translated into Chinese under the Eastern Tsin dynasty A.D. 317—420.4 In the Chinese collection of the Indian books it is designated as the Nāgasena-Bhikṣu-sūtra. This work contains questions of Milinda (the Greek King Menander of Bactria) and replies of Bhikṣu Nāga Sena on various abstruse matters. In it Milinda who was versed in Logic (Nīti or Nyāya) is thus described:—

¹ Asoka ascended the throne of Magadha in 272 B.C. (vide Vincent A. Smith's Asoka, p. 63). In the seventeenth year of his reign the Third Buddhist Council took place (Wijesimha's Mahāvamsa, p. 29).

² Niggaha-catukkam is the name of a section of the first chapter of the Kathāvatthuppakuruna. Upanaya-catukkam is the name of another section of that work. A passage, in which the terms patiññā and niggaha occur, is quoted below:—

No ca mayam tayā tattha hetāya patiññāya hevam patijānantā hevam niggahetabbo (Kathāvatthuppakaraṇa, Siamese edition, p. 3, kindly lent to me by Anagārika H. Dharmapāla).

In the commentary on the above passage even chala (fraud), which is another technical term of Logic, has been used. Cf.

Evam tona, chalena mygahe äropite idäm tass'eva patiññāya dhammena samena attavāde jayam dassetum anulomanaye puechā sakavādissa attano nissāya patiññām paravādissa laddinya kāsam adatvā....

⁽Kathāvatthuppakarana-atthakathā, published by the Pali Text Society of London, p. 13).

It is evident from the opening passages of the Kathāvatthuppakaraṇaatthakathā that Moggaliputta Tissa discussed in the Kathāvatthuppakaraṇa only those doctrines—Buddhistic and heretic—which had originated after the First and Second Buddhist Councils. From this statement may we not draw the conclusion that the technical terms of Logic which he has used were unknown before the Second Buddhist Council?

³ For discussions about date vide Rhys Davids' Introduction to "the Questions of King Milinda" in the S. B. E. series, vol. xxxv.

4 Vide Bunyin Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, No. 1358.

x." Many were the arts and sciences he knew-holy tradition and secular law: the Sāmkhya, Yoga, Nyāya and Vaisesika systems of philosophy; arithmetic; music; medicine; the four Vedas, the Puranas, and the ltihasas; astronomy, magic, causation and spells; the art of war; poetry; conveyancing-in a word, the whole nineteen.

As a disputant he was hard to equal, harder still to overcome; the acknowledged superior of all the founders of the various schools of thought. And as in wisdom so in strength of body, swiftness, and valour there was found none equal to Milinda in all India. He was rich, too, mighty in wealth and prosperity, and the number of his armed hosts The king, who was fond of wordy disputation, and knew no ond eager for discussion with casuists, sophists, and gentry of that sort, looked at the sun (to ascertain the time), and then said to his ministers."1

- The following dialogue between Milinda and Naga Sena is quoted to show what was thought to be the proper mode of carrying on debate in the days of those notable persons:—
- "The King said: 'Reverend Sir, will you discuss with me again?'

'If your Majesty will discuss as a scholar (Pandita), well; but if you will discuss as a king, no.'

'How is it then that scholars discuss?'

When scholars talk a matter over with one another then is there a winding up, an unravelling; one or other is convicted of error, and he then acknowledges his mistake, distinctions are drawn, and contra distinctions; and yet thereby they are not angered. Thus do scholars, O King, discuss.'

'And how do kings discuss?'

'When a king, Your Majesty, discusses a matter, and he advances a point, if any one differ from him on that point, he is upt to fine him, saying: "Inflict such and such a punishment upon that fellow!" Thus, Your Majesty, do kings discuss.'

'Very well. It is as a scholar, not as a king, that I will discuss. Let Your Reverence talk unrestrainedly, as you would with a brother, or a novice, or a lay disciple, or even with a servant. Be not afraid!'

ORIGIN OF THE MAHAYANA (ABOUT 78 A.D.).

14. At the opening of the Christian era the north-western part of India was invaded by the Turuskas or Scythians. Kaniska, who was one of their chiefs, conquered Kasmira,

Niti may mean "polity," but placed between Yoga and Vaisesika it cannot but signify Nyaya.

² Vide Rhys Davids' Questions of King Milinda in the S. B. E. series,

vol. xxxv, p. 46.

3 In the Tangyur, Mdo, vol. Gi, there is Mahārāja-Kanika-lekha, which is a letter addressed by Maticitra to King Kaniska. Hwen-thsang in the 7th Century A.D. records a prophecy of Buddha that 400 years after his nirvana Kaniska would be born : vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. I, p. 99. The same prophecy is mentioned by Fa-hian about 399 A.D., showing thereby that Kaniska was regarded as historical even at that time. According to Tibetan books such as the

¹ Taken from Rhys Davids' translation of the Milinda-panha called "the Questions of King Milinda' in S. B. E. series, vol. xxxv, pp. 6-7. Nyāya is an equivalent for the original Niti, causation for Hetu, casuists for Lokayata and sophists for Vitanda.

Palhava and Delhi, and is said to have founded the era called Sakābda in 78 A.D. He accepted the Buddhist faith and established a new system of Buddhism called Mahāyāna, the Great Vehicle. The old system of Buddhism as promulgated in the Pali Tepitaka was henceforth nicknamed Hinauana, the Little Vehicle. The Mahāyāna gradually spread to Nepal, Tibet, Mongolia, China, Japan, Corea, etc., while the Hinayana continued in Ceylon and thence spread to Burmah, Siam, etc. In India both the systems prevailed.

ORIGIN OF THE SANSKRIT BUDDIEST LITERATURE (ABOUT 78 A.D.).

- 15. Under the patronage of Kaniska a council 2 was held at Jālandhara under the superintendence of Pārśva (or Pūrnaka) and Vasu Mitra. It consisted of 500 monks who composed in Sanskrit three works explanatory of the Pāli Tepitaka, viz., Sūtra Upadeśa of the Sutta Pitaka, Vinaya Vibhāṣā of the Vinaya Pitaka and Abhidharma Vibhasa of the Abhidhamma Pitaka. These three works written in Sanskrit were the earliest canonical books of the Mahavana School.
- 16. It must not, however, be supposed that there had been no Buddhist books written in Sanskrit before Kaniska held his council. As a fact Kaniska thought it expedient to introduce Sanskrit as the medium of Buddhistic communication seeing that there had already existed many valuable Buddhist books in that language. For instance, the Abhidharma-vibhāṣā, or rather the Abhidharma-mahavibhasa-sastra, which was compiled

1 Vide Takakusu's I-tsing, p. XXV; also Satis Chandra Vidyābhusana's Mahāyāna and Hinayāna in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, January 1900.

Sum-pahi-chos-byun, Kan' 'sa flourished in 33 B.C., that is, 400 years after the nirvana of Buddha which is said to have taken place in 433 B.C. Dr. J. F. Fleet holds that Kaniska founded the Vikrama era in 58 B.C. (vide Traditional Date of Kamska in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, October 1906). Dr. R. G. Bhandarkar places Kaniska at the last quarter of the 3rd contury A.D., as appears from "A peep into the early history of India" in the Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society for 1897-98, p. 396. Vincent A. Smith places Kaniska in 125 A.D., while Sylvain Lévi assigns him an earlier date of 50 A.D. (vide J.R.A.S., January 1905, pp. 52-53). But Mr. Beal, Mr. Lassen, Professor Kern and others adopt the view that the Saka era dates from Kaniska in 78 A.D.

² An account of this council is given by Rai Sarat Chandra Das, C.I.E. in an article named "Some Historical facts connected with the rise and progress of Mahāyāna School of Buddhism, translated from the Sumpahi-chos-byun " in the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta, vol. I, part III, p. 18. Vide also Watters' "On Yuan Chwang," vol I, p. 275; and also Monier Williams' Buddhism, pp. 68-69.

at the council of Kaniska was a mere commentary on Kātyā-yani-putra's Abhidharma-jñāna-prasthāna-śāstra.¹ This last is a Sanskrit work explanatory of the Pāli Abhidhamma Piṭaka. It was composed 300 years after the nirvāṇa of Buddha or 100 years before the time of Kaniska. Though Kaniska was not thus the first founder of the Sanskrit Buddhist literature, it cannot but be acknowledged that it was he, who for the first time proclaimed Sanskrit as the language of the Buddhist Canon. Since his time there have been composed innumerable Buddhist works in Sanskrit of which nine called the Nava Dharmas are specially worshipped by the Mahāyāna Buddhists.

LOGIC MENTIONED IN THE SANSKRIT BUDDHIST LITERATURE.

17. None soft the works composed during or before the time of Kaniska has come down to us in its Sanskrit original, and I have had no opportunity of examining the Chinese or Tibetan version of the same. I cannot, therefore, say whether there is any mention of Logic in those works. But we have before us a very large collection of Sanskrit Buddhist works composed after the time of Kaniska. Many of these works, such as some of the Nava Dharmas, contain references to Logic, and several works are even replete with logical discussions.

THE Lalitavistara (BEFORE 250 A.D.).

18. The Lalitavistara, which is one of the Nava Dharmas, was translated into Chinese in 221-263 A.D.* The Sanskrit original of it must have been prepared in India before that

¹ Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripiṭaka, nos. 1263, 1273 and 1275. Regarding the authorship of Abhidharma mahāvibhāṣā, or sımply Mahāvibhāṣā, vide Takakusu in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, January 1905, p. 159.

The Nava Dharmas or Nine Sacred Works are:—
 (1) Aşta-sāhasrikā Prajñāpāramitā, (2) Ganda-vyūha, (3) Daśa-bhūmi-

⁽¹⁾ Aşta-sanasrıka Prajnaparamita, (2) Ganna-vyuna, (3) Dasa-bitumiara, (4) Samādhi rāja, (5) Lankāvatāra, (6) Saddharma puṇḍarīka, (7) Tathāgata-guhyaka, (8) Lalitavistara and (9) Suvarṇa-prabhāsa.

Vide Hodgson's Illustrations of the Literature and Religion of the Buddhists, p. 19.

³ Dr. Rhys Davids in his Buddhist India, p. 316, observes that the three works composed at the Council of Kani, ka are extant in European libraries.

⁴ The Lalitavistara was translated into Chinese four times. The first and third translations were lost by 730 A.D. The first was prepared under the Han dynasty A.D. 221-263, the second under the Western Tsin dynasty A.D. 265-316, the third under the earlier Sun dynasty A.D. 420-479, and the fourth under the Than dynasty A.D. 683. Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, nos. 159 and 160.

time. In this work Logic, under the name of *Hetu-vidyā*,¹ is mentioned along with the Sāmkhya, Yoga, Vaiśeṣika, etc., in all of which the Bodhisattva (Buddha Gautama) is said to have acquired distinction.

EIGHTEEN SECTS OF THE BUDDHISTS.

19. In article 4 we have found that within 200 years after the $nirv\bar{n}na$ of Buddha there arose in India 17 heretical sects besides the orthodox priesthood called the Theras. In course of time some of these sects disappeared while new ones grew up, the result being that at the time of Kaniska, about 78 A.D., the Buddhists had already been divided into 18 sects 2 grouped into four classes as follows:—

| Tour oranges as rone ws. | |
|--|--|
| I. Ārya Sarvāstivāda (1) Mūla Sarvāstivāda (2) Kāsyapiya (3) Mahisāsaka (4) Dharma-guptīya (5) Bahusrutīya (6) Tāmrasātīya (7) Vibhajyavādin II. Ārya Sammitīya (8) Kurukullaka (9) Āvantīka | Belonging to the <i>Vaibhāṣika</i> School of Philosophy. |
| (10) Vātsiputrīya III. Ārya Mahāsāmghika (11) Pūrva-śaila (12) Apara-śaila (13) Haimavata (14) Lokottaravādin (15) Prajñaptivādin IV. Ārya Sthavira (16) Mahāvihāra (17) Jetavanīya, and (18) Abhayagirivāsin. | Belonging to the Sautrāntika School of Philosophy. |

All the sects mentioned above belonged to the *Hinayāna* though later on they joined the *Mahāyāna* too.

Lalitavistara, edited by Dr. Rājendra Lal Mitra in the Bibliotheca Indica series, Calcutta, Chapter XII, p. 179.

2 Vide the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta, vol. I.

[ा] निर्धण्डो निगमे पुराणे इतिहासे वेदे याकरणे निवक्षे शिकायां इन्दिस यज्ञकरणे व्योतिषि सांक्ष्ये योगे क्रियाकस्ये वैग्रेषिके वैश्विके वर्षविद्यायां वार्षस्यत्ये वाष्य्ये वासुरे स्वगपित्रदते देतुविद्यायां जतुयन्त्रे सर्वत्र वोधिसम्ब स्व विश्विष्यते सा॥

FOUR SCHOOLS OF THE BUDDHIST PHILOSOPHY.

- 20. The philosophical views of the sects mentioned above were gradually formulated into two schools, viz., the (1) Vaibhāsika and (2) Sautrāntika. The Mahāyāna sect of the Buddhists founded by Kaniska established two other schools of philosophy, viz., the (3) Mādhyamika and Yogācāra. So there were altogether four schools of philosophy, two of the Hinayana and two of the Mahayana.1
- Vaibhāsika was a later appellation of the philosophy of the Sarvāstivāda (Pali: Sabbatthivāda) sect who, as their name implies, admitted the reality of the world-internal and external. The fundamental philosophical work of this sect is Abhidharmajñāna-prasthāna-śāstra,8 Kātvāvani-putra's simply Jnana-prasthana-sastra, composed 300 years after the nirvana of Buddha. The next work of this sect is the Abhidharma-mahāvibhāṣā-śāstra or simply Vibhāṣā, compiled at the council of Kaniṣka about 78 A.D. It is from this Vibhāṣā that the name Vaibhāsika was derived. Vibhāsā means "commentary" and the Vaibhāsika philosophy seems to have been so called because it was based on the commentaries rather than on the original texts of the teachings of Buddha. Sanghabhadra's Nyāyānusāra-śāstra,6 otherwise called Kosa-kārakaśāstra, composed about 489 A.D., is a most learned work of the Vaibhāsika philosophy.

1 Vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. I, pp. 121, 139 n; and Takakusu's I-tsing, p. xxii.

² Vide Takakusu's I-tsing, p. xxi. The Arya Sammitiyas, at any rate their subclass called the Vātsiputrīyas, were also followers of the Vaibhāsika philosophy. The Hindu philosopher Vācaspati Misra in his Nyāya vārtika-tātparyatīkā 3-1-1 quotes the opinions of the Vaibhāsikas

who were called Vatsiputras.

4 This work, too, exists in Chinese and Tibetan: vide Bunyiu Nanjio's

Catalogue of the Chinese Tripitaka, nos. 1263, 1264.

b Compare the explanation of Vaibhasika given by the Hindu philosopher Mādhavācarya in his Sarvadarsana-samgraha, chapter on Bauddha-darsana, translated by Cowell and Gough, second edition, p. 24.

Vide also Satis Chandra Vidyābhūsana's "Mādhyamika School" in the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta for 1895, part II, p. 4.

⁶ This work exists in Chinese and Tibetan; vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, no. 1265.

7 Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix II, no. 95. For Sangha-bhadra, vide also Hwen-thsang's Travel in Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. I, pp. 193-194.

part III, p. 18; Takakusu's I-tsing, pp. xxiii, xxiv and xxv; Rhys Davids' article in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, 1891, p. 411, and 1892, pp. 1-37; Rockhill's Buddha, p. 181 f; Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 270-274; and Wijesimha's Mahāvamsa, part I, Chapter V, p. 15.

³ This work exists in Chinese and Tibetan: vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, nos. 1273, 1275.

22. The name Sautrāntika was derived from Sūtrānta. called in Pali Suttanta, meaning "original text." The Sautrantika philosophy seems to have been so called because it was based on the original text of the teachings of Buddha rather than on the commentaries thereon. The text on which the Sautrantika philosophy was based belonged to the sect of Arva Sthaviras, called in Pali Theras, who held the First Council in 543 B.C.. and possibly also to the sect of the Mahasamghikas? who were the first dissenters in 443 B.C. The philosophical principles of this school are said to have been formulated in Kāśmīra 8 during the reign of Kaniska about 78 A.D. by a sage named Dharmottara or Uttara-dharma. But the Chinese pilgrim Hwen-thsang, who visited India early in the 7th century A. D., states that the renowned teacher Kumāralabdha of Taksasilā (Taxila in the Punjab) was the founder of the Sautrantika school and wrote several very valuable treatises on it. He is supposed to have lived about 300 A.D. as he was a contemporary of Nagarjuna (q. v.), Arya Deva (q. v.) and Aśvaghosa. There was another very famous teacher named Srilabdha who wrote Vibhāsā-sāstra (or commentary on a work) of the Sautrantika school. Hwen-thsang saw in Ayodhya the ruins of a Sangharama where Srilabdha resided.

MENTION OF LOGIC IN THE WORKS OF THESE SCHOOLS.

23. As none of the old works belonging to the Vaibhāsika or Sautrantika school has yet become accessible to us I cannot state whether there is any mention of Logic in those works. But there are ample references to Logic in the works of the Mādhyamika and Yogācāra schools, short accounts of which are given below.

Vide Rhys Davids' Buddhist India, p. 168, and Beal's Fahian and

¹ Compare the explanation of the term Sautrantika given by the Hindu philosopher Madhavacarya in the Sarvadar'ana-samgraha, chapter on Bauddha dar'ana, translated by Cowell and Gough, second edition, p. 26. Vide also Satis Chandra Vidyābhūsana's "Mādhyamika School" in the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta for 1895, part II, p. 4.

Sungyun, p. 143.

² Vide Watters "On Yuan Chwang," vol. II, p. 161.

³ Vide the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta, vol. I, part III, pp. 18, 19; and Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 59.

⁴ For the Dhammuttariya sect, vide Wassilief's Buddhism, p. 233; and Mahavamsa, part I, chapter V, p. 15, Wijesimha's foot-note.

b Vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. II, p. 302; and Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 78, where Kumāra-labha stands for Kumāra-labdha.

⁶ Vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. I, pp. 225. 226; and Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 67.

ĀRYA NĀGĀRJUNA (ABOUT 300 A.D.).

The name Mādhyamika was derived from madhyama. meaning the middle. The Madhyamika philosophy was so called because it avoided two extremes, i.e., advocated neither the theory of absolute reality, nor that of total unreality. of the world, but chose a middle path, inculcating that the world had only a conditional existence. The founder of this school was Nāgārjuna or rather Arya Nāgārjuna, who was born at Vidarbha (modern Berar) in Mahākośala,² during the reign of King Sadvāha or Sātavāha³ [of the Andhra dynasty]. He passed many of his days in meditation in a cave-dwelling of the S'rī-parvata, that bordered on the river Krishnā. He was a pupil of S'araha and is said to have converted a powerful king, named Bhoja Deva. to Buddhism.

1 Compare-

चती भावाभावानाद्वयरितलात् सर्वसभावान्यतिस्त्रचा ग्रन्यता सधमा प्रतिपद्मधामी मार्ग रत्युचते॥

——Mādhyamikā Vṛtti published by the Buddhist Text Society of Calcutta, chapter XXIV, p. 185.

Compare the explanation of the term Mūdhyamika given by the Hindu philosopher Mādhavācārya, in the Sarvadarsana-samgraha, chapter on Bauddha darsana, translated by Cowell and Gough, second edition, p. 24; and also Satis Chandra Vidyabhusana's History of the Madhyamika Philosophy of Nagarjuna in the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta, 1897, part IV, pp. 7-20.

* Vide Hwen-thsang's Travel in Beal's Buddhist Records of the

Western World, vol. II, Book VIII, p. 97, and Book X, p. 210; Watters' "On Yuan Chwang," vol. II, pp. 201-202; and Wassiljew quoted by

Schiefner in the Geschichte des Buddhismus, p. 301.

Sadvaha is the same as Sātavāha, which is a general name of the kings of the Andhra dynasty.—Vide Dr. R. G. Bhandarkar's Early

History of the Dekkan, second edition, pp. 25-37.

Nagarjuna wrote an instructive letter to Satavaha[na], whose private name in Chinese was Sh'-yen-töh-cia. This letter is called Arya Nagarjuna Bodhisattva Suhrllekha. It was translated into Chinese in 434 A.D. An English translation of this letter has appeared in the Journal of the Pali Text Society of London, 1883, pp. 71-75.

The Andhra kings ruled the northern portion of the Madras Presi-

dency and the whole of Kalinga, and overthrew the Kanva dynasty in northern India about 31 B.C. They remained powerful up to 436 A.D. They were Buddhists, and it was by them that the magnificent marble stūpa at Amaravatī was erected.—Vide Sewell's Lists of Antiquities in

Madras, vol. II, pp. 141-146.

5 For an account of Sri-parvata or Sri-saila see Hwen-thsang's Life, Introduction, p. xi, by Beal; Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 84; Wilson's Malati-Madhava, act I; and Satis Chandra Vidyabhusana's Notes on Ratnavali, pp. 27-29.

6 Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp.

66, 69-73,

25. Nāgārjuna is said to have lived four hundred years after the nirvāna of Buddha, that is, in 33 B.C. But he does not appear to me to have so early a date as he was one of the early patrons or founders of the university of Nālandā, which had not, perhaps, come into existence in the 1st century B.C., and was insignificant veven at 399 A.D., when the Chinese pilgrim Fa-hian came to visit India. Nāgārjuna is stated by Lama Tārānātha to have been a contemporary of King Nemi Candra, who is supposed to have reigned about 300 A.D. The

देनिक्षान्तिन्त्रस्य। भूतिन्त्रम्निक्षस्यस्। भूतिन्त्रम्निक्षस्यस्। भूतिन्त्रम्निक्षस्यस्।

(Quoted in the Introduction to Segrab-sdoń-bu published in Calcutta).

"Four hundred years after Buddha's departure from the world there will appear a Bhikṣu, named Nāgārjuna, who will do good to the believers in the doctrine."

It should be noted that according to some books of Tibet, Buddha was born in 514 B.C., lived 81 years and attained nirvāna in 433 B.C. Nāgārjuna, who was born 400 years after the nirvāna, must, at this calculation, be placed in 33 B.C.

² Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 66, 39-73

09-73.

³ Fahian describes Nālandā as a mere village Nā-lo: vide Beal's Travels of Fahian and Sungyun, p. 111.

4 According to Lama Tārānāthā, Nāgārjuna was a contemporary of King Nemi Candra, whose genealogy is thus traced:—

Akṣa Candra

Jaya Candra

Nemi Candra

Phaṇi Candra

Bhaṁśa Candra

Sāla Candra

Candra Gupta

Ruled in Magadha.

The six kings, beginning with Akṣa Candra to Sāla Candra, are stated to have been weak and insignificant, while Candra Gupta, the seventh king,

l It is prophesied in the Manju-śri-mula-tantra (called in Tibetan Iljam-dpal-rtsa-rgyud) that:—

latest date that can be assigned to Nāgārjuna is 401 A.D., when his biography was translated into Chinese by Kumārajīva.

26. Nāgārjuna's Mādhyamika-kārikā is the first work of the Mādhyamika philosophy. In it he has occasionally referred to certain technicalities of Logic, such as the fallacy of Sādhyasama's (petitio principii) in chapter IV. He was the author of several other works on the Mādhyamika philosophy, such as the (1) Yukti-ṣaṣṭikā kārikā or sixty memorial verses on argumentation, (2) Vigraha-vyavartanī kārikā, or memorial verses on conquering disputes, and (3) Vigraha-vyavartanī vṛtti or a commentary on the Vigraha-vyavartanī kārikā. In these works he has, as the titles indicate, largely employed the methods of Logic b to establish the abstruse conclusions of the Mādhyamika philosophy.

ARYA DEVA (ABOUT 320 A.D.).

27. Deva or rather Arya Deva was the next writer on the Mādhyamika philosophy. He is otherwise known as Karnaripa,

is described as having been very powerful. This Candra Gupta, who "did not take refuge in Buddha," may be the same who founded the Gupta era in 319 A.D. The reigns of his predecessors were very short. Nemi Candra may be assigned to about 300 A.D.—Cf. Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 80-83.

Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix

I, No. 3.

² The Mūdhyamika-kārikā with the vṛtti of Candra Kīrti has been published by the Buddhist Text Society of Calcutta; the work is being republished in the St. Petersburg Buddhist Text series under the editorship of Professor De La Vallee Poussin. The following verse refers to the fallacy of Sādhyasama:—

विष्णे यः परीचारं क्षते ग्रुत्यतया वहेत्। सर्वं तस्यापरिकतं समं साधेन जायते ॥

(Mādhyamika-kārikā, chapter IV).

8 For an account of some of the works on the Tantra by Nagārjuna, wide Satis Chandra Vidyabhusana's Introduction to the Sragdharāstotra in the "Bibliotheca Indica" series. For the latest researches in the medical works of Nāgārjuna, see Dr. Palmyr Cordier's "Introduction the medical works of Nāgārjuna, see Dr. Palmyr Cordier's "Introduction the L'Etude des Traites Medicaux Sanseritas" printed in Hanoi, 1903; and for his hymns such as analytique, faquaga etc., vide Tangyur, Batodpa, vol. Ka.

4 For an account of these works, vide the article "Indian Logic as preserved in Tibet, No. 3," by Satis Chandra Vidyabhusana in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, new series, vol. III, No. 7, 1907. For the philosophical works of Nagarjuna, see Bunyiu Nanjio's

Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix I, no. 3.

⁵ The Nyāya-dvīra-tarka-śāstra, as noticed in Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Nos. 1223, 1224, is not a work of Nāgārjuna but of Dignāga.

6 Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix

Kāṇa Deva, Nila-netra and Pingala-netra. He was born in Southern India and was an eminent disciple of Nāgārjuna. According to Hwen-thsang, he visited the countries of Mahā-košala, Srughna, Prayāga, Coļa and Vaišāli, in all of which he won great renown by defeating the Tirthikas and preaching the true doctrines of Buddha. According to Lama Tārānātha, Deva resided for a long time in Nālandā, where he was a Paṇḍita. He flourished during the reign of Candra Gupta, whose date is supposed to be about 320 A.D. The latest date that can be assigned to Deva is 401 A.D., when his biography was translated into Chinese by Kumārajīva. He wrote numerous works on the Mādhyamika philosophy, such as the Śataka-śāstra, Bhrama-pramathana-yukti-hetu-siddhi, etc., all of which bear evidences of his knowledge of Logic.

LOGIC OF THE YOGACARA SCHOOL (ABOUT 300-500 A.D.).

28. The word Yogācāra is compounded of yoga meaning 'meditation' and ācāra meaning 'practice.' The Yogācāra or the contemplative system was so called because it emphasised the practice of meditation as means of attaining Bhūmis? or the seventeen stages of Buddhistic Perfection. The chief dogma established in it is ālaya-vijāāna, the basis of conscious states,

I, No. 4; and Watters' "On Yuan Chwang," vol. I, p. 321, vol. II, pp. 225-226.

¹ Vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. I, Book IV, pp. 186-190, Book V, p. 231; vol. II, Book X, pp. 210, 227, Book XII, p. 302, Book VIII, pp. 98-102.

² Vide Lama Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 83-86 and 93.

³ Vide foot-note 4, p. 69.

⁴ Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix

⁵ Vide Satis Chandra Vidyabhusana's "Indian Logic as preserved in Tibet No. 3" in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, new series, vol. III, No. 7, 1907.

⁶ The Yogācāra philosophy is generally known in China, Tibet and Nepal as Yogācārya. For an account of this system, vide Watters' "On Yuan Chwang," vol. I, p. 356; Dr. Schlagintweit's Buddhism quoted in the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta for 1895, part II, Appendix IV.

Compare explanation of the word Yogācāra given by the Hindu Philosopher Mādhavācārya in the Sarvadarana-samgraha, chapter on Bauddha darana, translated by Cowell and (lough, second edition, p. 24. Vide also Satis Chandra Vidyabhusana's "The Mādhyamika School" in the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta, 1895, part 11, p. 4.

⁷ Vide Dharma-samgraha, LXIV and LXV, edited by Max Müller and Wenzel.

⁸ For an explanation of *ilaya-vijñāna*, see Satis Chandra Vidyabhusana's note on p. 2 of the Lankāvatāra Sūtra, Calcutta Buddhist Text Society's edition, and also see p. 45 of the same work.

which is the same as our 'ego' or 'soul.' It is not known who was the founder of the Yogācāra school, but in the Tibetan and Chinese books the Lankāvatāra Sūtra, Mahāsamaya Sūtra, Bodhisattva-caryā-nirdeśa and the Sapta-daśabhūmi-śāstra-yogācārya have been named as the prominent old works of the system.'

THE Lankavatara Sutra (ABOUT 300 A.D.).

29. The Lańkāvatāra Sūtra is a very sacred work as it is one of the Nava Dharmas. The exact date of it is unknown, beyond the fact that it was translated into Chinese in 443 A.D. The approximate date seems to be 300 A.D., for, it existed at or before the time of Ārya Deva who mentions it. This work speaks in a prophetic style of the Naiyāyikas (dialecticians) and Tārkikas (logicians). Thus in chapter II of the work Mahāmati asks Buddha:—

"Say how in the time to come Naiyayikas will flourish?"

Vide an account of the Lankavatara Sutra by Satis Chandra Vidyabhusana in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, 1906.

8 Vide Bunyiu Nanjio's Catologue of the Chinese Tripitaka, nos. 175, 176 and 177.

Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, nos. 1259, 1260 and Appendix I, no. 4.

5 The Sanskrit original runs as follows :-

नैयायकाः कर्षं ब्रुषि भविष्यन्ति सनागताः।

(Lankāvatāra Sūtra, Asiatic Society of Bengal's MSS., chapter II, leaf 11).

The Tibetan version runs thus:-

अ.प्ट्या-र्थाय-परिटिः च-चिश्वर ।। क्रे.च-क्षश्व-प्रीटः हे-से-ये-र ।

(Kangyur, Mdo, vol. V, Asiatic Society of Bengal's xylograph).

¹ Vide Section Mdo of the Tangyur; Lama Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 111 f; Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix I, No. 1; Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. I, p. 226, vol. II, pp. 220, 275; and Watters' "On Yuan Chwang," vol. I, p. 371.

² The Sanskrit original of this work is being published by the Buddhist Text Society of Calcutta under the editorship of Rai Sarat Chandra Das, C.I.E., and Dr. Satis Chandra Vidyabhusana. The work also exists in Chinese and Tibetan. Hwen-thrang mentions the Lahkāvatāra, vid["] Beal's Buddhist Records of the Western World, Book XI, p. 251.

"How is tarka (reasoning or argumentation) corrected, and how is it carried on?"

Again in chapter X of the work we read:—

"Whatever is produced is destructible: this is the conclusion of the *Tārkikas*."²

MAITREYA (ABOUT 400 A.D.).

30. The date of the Mahāsamaya-sūtra ³ is not known. The Bodhisattva-caryā-nirdeśa was translated into Chinese during 414-421 A.D. and the Sapta-daśa-bhūmi-śāstra-yogācārya in 646-647 A.D. The author of these two works was Maitreya ⁴ (called in Chinese 'Mirok'), who lived 900 years after the nirvāṇa of Buddha, that is about 400 A.D.⁵ He is reported by Hwen-thsang to have communicated the materials of three Buddhist treatises to Ārya Asanga while the latter was residing in a monastery in Ayodhyā.⁵ In the Sapta-daśa-bhūmi-śāstra-yogācārya ' Maitreya has discussed certain topics of Logic, a

कथं चि ग्राधावे तर्कः कथं तर्कः प्रवर्त्तवे।

(Lankāvatāra Sūtra, chapter II, leaf 11, A.S.B. MSS.)

हेन्त्र-१६मानी इस-५मात्वुर। १६मानी ३५२१मानी इस-५मात्वुर।

(Kangyur, Mdo, vol. V.)

² क्रतकस्य विनामः स्थात् तार्किकाणामयं नयः।

(Lankāvatāra Sūtra, chapter X, leaf 143, A.S.B. MSS.)

नुसन्दर्भयायर प्रहेषायर प्रगुर ॥ पर्रे वे र्हेषायो ख्वामी ख्या।

(Kangyur, Mdo, vol. V.)

Vide Dr. Schlagintweit's Buddhism quoted in the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta, 1895, part II, Appendix IV, p. 16.
 Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix I,

No. 1.

⁵ Vide "Hindu Logic as preserved in China and Japan," by Dr.

Sugiura, p. 30.

6 Vide Watters' "On Yuan Chwang," Vol. I, pp. 355—56. The three treatises are:—Saptadaśabhūmiśāstra-yogācārya, Sūtrālaṅkāraṭīkā and Madhyānta vibhāga śāstra.

7 It is perhaps this work which is called Yoga by Dr. Sugiura, vide its Chinese version Yuka Ron. Book XV.

short account of which is given below from the researches of

Dr. Sugiura.1

- 31. Maitreva mainly discussed the practical questions of Logic as is evident from the titles of some of the chapters of his work, viz.: (1) Of Kinds of Debate, (2) Of Occasions of Debate. (3) Of the Attributes of the Debator. (4) Of Defeat, etc. But occasionally there was mixed in with the discussions some Pure Logic too. A thesis [pratijna], according to Maitreya, is to be supported by a reason [hetu] and two examples [drstanta]. Validity of the reason and of the examples requires that they be based either (1) on fact [pratyaksa], (2) on another inference [anumāna], or (3) on holy saying [agama]. Analogy or Comparison [upamāna] is omitted. The form of reasoning is illustrated as follows :-
 - 1. Sound is non-eternal.

2. Because it is a product,

3. Like a pot, but not like ether $[\bar{a}k\bar{a}\dot{s}a]$,

4. A product like a pot is non-eternal.

5. Whereas, an eternal thing like ether is not a product.

ĀRYA ASANGA (ABOUT 450 A.D.).

Asanga, 2 called in Chinese Mucak, was born in Gandhara (modern Peshwar). He was at first an adherent of the Mahiśasaka sect and followed the Vaibhāsika philosophy of the Hinayana. Later on he became a disciple of Maitreva and adopted the Yogācāra philosophy of the Mahāuāna. He is said to have lived for some years as a pandita in Nalanda. He lived about 450 A.D.⁵ The latest date that can be assigned to him is 531 A.D.,6 when one of his works, called the Mahayana-samparigraha-śāstra, was translated into Chinese. Hwen-thsang in the 7th century A.D. saw the ruins of Sangharamas in Kausambi and Avodhya, where Asanga resided for some years. He wrote 12 works, most of which still exist in Chinese and Tibetan versions.8

¹ Vide "Hindu Logic as preserved in China and Japan," p. 30.

² Vide Hwen-thsang's Travel in Beal's Buddhist Records of the Western World, Vol. I, pp. 98, 227 and 236.

3 Vide Watters' "On Yuan Chwang," Vol. I, p. 357.

4 Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 122.

⁶ Asanga is approximately placed at 450 A.D. as he was the eldest-brother of Vasubandhu (q.v.) who lived about 480 A.D.

⁶ Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix I,

⁷ See Beal's Buddhist Records, Vol. I, pp. 98, 227, 236.

⁸ Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix I, no. 5.

- 33. Dr. Sugiura 1 has ascertained from Chinese sources that Asanga treated Logic in the tenth volume of Genyo, in which he simply reproduced the conclusions of his master Maitreya, and also in the sixteen volumes of Zaschuh, in which he showed a slight originality. Asanga's form of reasoning, which is somewhat different from Maitreva's, is given below:—
 - Sound is non-eternal,

2 Because it is a product,

Like a pot (but not like ether);

Because a pot is a product it is non-eternal; so is sound, as it is a product:

5. Therefore we know sound is non-eternal.

Here we find that Asanga made some improvement on the form of syllogism adopted in the Logic of his master. basis of Maitreya's inference, so far as it related to the connection between "produced-ness" and "non-eternality," was a mere analogy founded upon a single instance. This connection (between "produced-ness" and "non-eternality" in the case of the pot) might be accidental. Asanga emphasised the essential connection between "produced-ness" and "non-eternality" by saying "Because a pot is a product, it is non-eternal." In so doing he appealed not merely to an instance but to a law.

VASUBANDHU (ABOUT 480 A.D.).

34. Vasubandhu.2 called in Chinese Seish, was born in Gandhara (modern Peshwar), where a tablet to his memory was seen by Hwen-thsang in the 7th century A.D. His father's name was Kausika. He began his career as a Vaibhāsika philosopher of the Sarvāstivāda sect, but was later converted by his eldest brother Asanga to the Yogācāra school of the Mahayana. He passed many years of his life in Sakala, Kauśambi and Ayodhya, in the last of which places he died at the age of eighty years. He was a friend of Manoratha, a master of the Vaibhasika Sastra, who flourished in the middle of the thousand years after the nirvana of Buddha, that is before 500 A.D. He was a contemporary of another Vaibhāsika

Sugiura, p. 31.

The original Sanskrit text of Asanga's Vajracchedikā has been published in the Anecdota Oxoniensia edited by Professor Max Müller.

1 Vide "Hindu Logic as preserved in China and Japan" by Dr.

² Vide Hwen-thsang s Travel in Beal's Buddhist Records of the Western World, Vol. I, pp. 98, 105, 172, 193, 225, 236; and Watters' "On Yuan Chwang," Vol. I, p. 210.

teacher, named Sanghabhadra, who lived about 489 A.D.¹ So we may approximately fix the date of Vasubandhu at about 480 A.D. His biography a was translated from Sanskrit into Chinese during 557-569 A.D. Vasubandhu was the author of a large number of very valuable works including the Tarka-śāstra, which consists of three chapters and is perhaps the first regular Buddhist work on Logic. This work was translated into Chinese in 550 A.D. The Chinese version still exists, while the Sanskrit original has been long lost. The work appears to have been translated into Tibetan too, but my persistent efforts to discover the Tibetan version were unsuccessful.

35. Dr. Sugiura 4 from Chinese sources has ascertained that in the 7th century A.D., while Hwen-thsang was in India, he saw three other books on Logic attributed to Vasubandhu, which are called in Chinese Ronki, Ronshiki and Ronshin, respectively. In the Ronki, quoted by Kwei-ke, Vasubandhu maintained that a thesis can be proved by two propositions only, and that, therefore, the necessary parts in a syllogistic inference are only three 5 (i.e. paksa or minor term, sādhya or major term

चनार्थाप्तेत्रव साध्यस्य सिवेवेरिषदाञ्चतिः। यर्था सात्रसङ्खावेऽह्येवं न्यायविद्ये विदः ॥ १० ॥

(Nyāyāvatēra of Siddhasena Divākara, edited by Satis Chandra Vidyabhusana and published by the Indian Research Society of Calcutte).

¹ Sanghabhadra translated Vibhāṣā-vinaya into Chinese in 489 A.D. Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripiṭaka, Appendix II, No. 95.

Mr. Takakusu, in a very learned article on Paramārtha's Life of Vasubandhu and the date of Vasubandhu published in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, January 1905, says that Saṅghabhadra, contemporary of Vasubandhu, was the translator of the Samantapāsādikā of Buddhaghoşa into Chinese in 488 A.D.

² Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitala, Appendix I, No. 6. The statement that there was an older translation of the life of Vasubandhu by Kumārajīva A.D. 401-409 but that it was lost in 730 A.D., cannot be accepted without further testimony. Takakusu says that "some Catalogues mention by mistake that such a work was then in existence": vide Journal of the Royal Asiate Society of Great Britain and Ireland, January 1905, p. 39.

³ Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaks, Appendix I,

⁴ Vide Dr. Sugiura's "Hindu Logic as preserved in China and Japan,"

The Jaina logician Siddhasena Divākara probably refers to Vasubandhu, when he says that according to some logicians antarvyāpti (internal inseparable connection) consisting of paksa or minor term, sādhya or major term and hetu or middle term is quite enough in establishing a thesis, and that dṛṣṭānta or example is altogether useless. Siddhasena Divākara writes:—

and hetu or middle term). But it is to be regretted that these three logical works are lost, and we cannot know how far the theory of syllogism was developed in them. The work in Chinese from which alone we can know anything of his Logic is his polemic against heresies (Nyojits-ron). In this book he gives the following form of reasoning:—

- 1. Sound is non-eternal,
- 2. Because it is a product of a cause,
- 3. Things produced by a cause are non-eternal like a pot, which is produced by a cause and is non-eternal;
- 4. Sound is an instance of this (kind),
- 5. Therefore sound is non-eternal.

 $^{^{1}}$ Is this the same work as the Tarka-sastra already referred to ?

CHAPTER II.

SYSTEMATIC BUDDHIST WRITERS ON LOGIC (500—1200 A.D.).

LOGIC DISTINGUISHED FROM PHILOSOPHY.

36. In the previous chapter we have seen that from the origin of Buddhism in the 6th century B.C. to its expansion into four philosophical schools in the 4th century A.D., there were no systematic Buddhist works on Logic, but only a few stray references to that science in the works on philosophy and religion. During 400—500 A.D., Maitreya, Asanga and Vasubandhu handled Logic, but their treatment of it was merely incidental, being mixed up with the problems of the Yogācāra and Vaibhāṣika schools of philosophy. Vasubandhu's three works on Fure Logic mentioned by Hwen-thsang are now lost and consequently their merits cannot be judged. With 500 A.D. began a period when Logic was completely differentiated from general philosophy, and a large number of Buddhist writers gave their undivided attention to that branch of learning. Dignāga is the earliest known writer of this period.

37. ĀCĀRYA DIGNĀGA—FATHER OF MEDIÆVAL LOGIC.

[Flourished in Andhra, modern Telingana in the Madras Presidency, about 500 A.D.]

The likeness of Dignāga reproduced in the next page is taken from the Tibetan Tangyur (Mdo, Ce, folio 1) which was put in its present form by the celebrated Lama Bu-ton, who passed the last days of his life at the monastery of Sha-lu, twelve miles south-east of Tashi lhun-po. Bu-ston, who lived early in the fourteenth century A.D.,2 must have copied the likeness from some earlier specimen, which was taken to Tibet during her intercourse with India between 600 A.D. and 1200 A.D.

copied the likeness from some earlier specimen, which was taken to Tibet during her intercourse with India between 600 A.D. and 1200 A.D. A peculiarity of this likeness is its cap. In the early Buddhist Church monks were not allowed to wear any head-dress (vide the Pātimokkha rules of the Vinaya Pitaka). With the introduction of Mahāyāna in the first century A.D. by Kaniska, a great change was effected in the dress of monks, and caps of various shapes were invented. The hat worn here is called Panchen-shwa-dmar 3 or "Pandita's red cap," with a pointed

¹ Vide Book II, Chapter I, under the head "Vasubandhu."

Vide Sarat Chandra Das's Tibetan Dictionary, p. 870.
 Vide Waddell's Lamaism, pp. 194—196.

peak and long lappets. The lappets of the cap were lengthened in proportion to the rank of the wearer.

It is not known when the "Pandita's cap" was first introduced. It is said to have been taken to Tibet in 749 A.D. by Santa Raksita. "Pandita" was a degree which was conferred by the Vikramasila University on its successful candidates. It is not known what title the University on its successful candidates.



मध्रुत्त्व सुन् स्त्रेन्त्र स्त्रेन्त्र स्त्रेन्त्र स्त्रेन्त्र स्त्रेन्त्र स्त्रेन्त्र स्त्रेन्त्र स्त्रेन्त्र

versity of Nālandā conferred on its distinguished students. Perhaps in that university, too, the title "Pandita" was recognised, and "Pandita's cap" was possibly a distinctive badge of the scholars of that famous university where Dignāga distinguished himself in philosophical controversies.

The woollen shawl worn here is indicative of the fact that after Bud-

dhism had spread into cold climes, monks like Brahmanic sages were allowed to put on suitable warm clothes. There is also in the palms of the image a thunderbolt called in Sanskrit Vajra and in Tibetan Dorje, which is a remover of all evils. The halo round the head of the image indicates that Dignāga was a saint.

LIFE OF DIGNAGA (ABOUT 500 A.D.).

Dignāga or rather Ācārya Dignāga is called in Tibetan Phyogs-glan. He was born in a Brahmana family in Simhavaktra near Kāñci, modern Conjeeveram in the Madras Presidency. By Nāgadatta, a Pandita of the Vātsiputrīva sect, he was admitted to the religious system of that sect and attained erudition in the Tripitaka of the Hinauana. Afterwards he became a disciple of Acarva Vasubandhu with whom he studied all the Pitakas of the Mahayana and Hinayana. He miraculously saw the face of Mañjusri, the Buddhist god of learning, from whom he received inspiration in the Law (Dharma). A few years later he was invited to Nalanda (Vide appendix A) where he defeated Brahmana Suduriava and other Tirtha dialecticians and won them to the doctrine of Buddha. Since he had refuted chiefly the Tirtha controversialists he was called the "Bull in discussion" (Sanskrit: Tarkapungava, and Tibetan: Rtsodpahi-khyu-mchog). He travelled through Orissa and Mahārāstra to the south, meeting the Tirtha controversialists in discussions. At Mahārāstra he is said to have resided frequently in the Ācāra's Monastery.2 At Orissa he converted Bhadra Pālita. Treasury-minister of the king of the country, to Buddhism. He was a man of vast learning and wisdom, and practised during his life-time twelve tested virtues. He is said to have died in a solitary wood in Orissa.

39. Dignāga must have lived before 557—569 A.D.³ when two of his works were translated into Chinese. The early limit

¹ This account of Dignāga is taken from Lama Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 130—135. Lama Tārānātha also relates that Dignāga frequently resided in Orissa in a cevern of a mountain called Bhorasilā where he used to give himself up to contemplation. He was specially versed in incantation formulas. It is stated that the stem of a myrobalan tree called Mustiharītakī in the garden of Bhadra Pālita in Orissa entirely withered, but it revived in seven days after Dignāga had uttered incantation for its restoration. For a fuller account of Dignāga vide Satis Chandra Vidyabhusana's "Dignāga and his Pramāna-samuccava" in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol I, No. 9, 1905.

² Vide Watters' On Yuan Chwang, Vol. II, p. 122.
³ Vide Bynyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, App. 1,
No. 10, where Dignāga is called Jina. The Chinese name of Dignāga has been wrongly rendered as Jina by Japanese writers as well as Rev. Beal.

of his date in 480 A.D. when his teacher Vasubandhu lived. Dignāga flourished possibly about 500 A.D. when the Buddhist kings of the Pallava dynasty ruled the eastern coast of Southern India.

40. We have already seen that Dignaga travelled in Nalanda, Orissa, Mahārāstra and Daksina (Madras) entering everywhere into disputes with controversialists. He attacked his opponents as frequently as he was attacked by them. His whole life was passed in giving blows and receiving counterblows. On account of this love of discussion he was, during his life-time, called the "Bull in discussion" (Tarka-pungava). Even his death did not terminate the great intellectual war in which he had been engaged: though he could no longer offer any violence, his opponents continued to fall upon him with force. Mark the volleys on his dead body coming from no mean warriors! Kālidāsa,3 the prince of poets, warns his poem to avoid the "rugged hand" (sthula-hasta) of Dignaga. Udyotakara, the eminent logician, calls Dignāga "a quibbler" (Kutārkika). Vācaspati Miśra describes him as "an erring one" (bhrānta) and speaks of his "blunders" (bhrānti). Mallinātha " compares him with a "rock" (adrikalpa). Kumārila Bhatta and Pārtha-sārathi Miśra turn their arrows against him. The

चदत्तपादः प्रवरी मृनीनां ग्रमाय शास्तं जमतो जगाद । कुतार्किकाज्ञाननिष्टत्तिहेतुः करिष्णते तस्य मया निवन्धः ॥

Udyotakara's Nyāya-vārtika, Introductory stanza, p. 1, in the Bibliotheca Indica series. Compare also Nyāya-vārtika, 1-1-4, pp. 43—44; 1-1-5, p. 52; 1-1-6, pp. 60—61; 1-1-7, p. 63, etc.

¹ On the downfall of the Andhras in 436 A.D., the Pallavas rose to power. They were in their turn driven out of their northern possessions, the kingdom of Vengi, by Kubja Visnuvardhana of the Eastern Chalukya dynasty. During 552—580 A.D., Kāncī, the capital of the Pallava kings, was captured by Vikramāditya I. of the Western Chalukya dynasty. Vide Sewell's Lists of Antiquities, Madras, Vol. II, pp. 141.146.148, 149 and 211, 212.

pp. 141,146,148, 149 and 211, 212.

² Vide Lama Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 134.

³ Vide Meghadūta, Pūrva-megha, verse 14.

b Vide Vācaspati Miśra's Nyāya-vārtika-tātparya-tīkā, edited by Gangadhara Sastri, 1-1-1, pp. 1, 31; 1-1-4, pp. 76—77, 97—98, 102; 1-1-5, p. 102; 1-1-6, p. 135, etc.

⁶ Mallinātha's commentary on verse 14 of the Meghadūta, Pūrva-megha.
7 Vide Pārtha--ārathi's gloss on 59—60, Anumānapariccheda of Kumārila Bhaṭṭa's vārtika on the 5th Sūtra of Jaimini.

Vedantins and Jainas were not inactive in their hostility. Even Dharmakirti 2 the Buddhist sage attempted to oppose him. Dignāga must have been a very strongly built man, both physically and mentally, otherwise he could hardly have lived for a single day under assaults from so many sides. Those of his works which still exist enable us somehow to measure his strength and his weakness.

Dignāca's Pramāna-samuccaya.8

The Pramāna-samuccaya is one of the grandest literary monuments of Dignaga. It is said to have been composed while he was residing on a solitary hill near Vengi in Andhra 4 (modern Telingāna) in the Madras Presidency. Seeing

¹ Vide the works of Prabhācandra and Vidyānanda referred to in the J.B.B.R.A.S., Vol. XVIII, p. 229. The Digambara Jaina logician Dharmabhiisana, in controverting the Vaisesika doctrine of Samanua. generality, quotes in support of his own conclusion the following verse of Dignaga :-

न याति न च तपासे न प्यादिस नांप्रवत । जराति पूर्व बाधारमही व्यस्तस्मतिः॥ द्ति दिग्नागद्वितद्वष्यग्यप्रसर्प्रसङ्गत

(Quoted in Dharmabhūsana's Nyāvadipikā, Chap. 111).

The same verse has been quoted in a little altered form by the Hindu philosopher Mādhavācārya as follows :-

न याति न च तनासीद्शि पञ्चात्रभांश्वत्। कदाति पूर्व नाधारमदो व्ययनसकतिः॥

(Sarvadar'ana samgraha, chapter on Bauddhadar'ana).

² Vide the head "Dharmakirti" which follows.

3 The account of the composition of the Pramana-samuccaya given here is taken from Lama Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 132, 133; and the Tihetan Pag-sam-jon-zang edited by Rai Sarat Chandra Das, Bahadur, C.I.E., pp. 62, 75. 100 and LXVII.

4 Vide Hwen-thsang's Travel in Beal's Buddhist Records of the

Western World, Vol. II, pp. 218, 219 and 220 where the Chinese term for Dignaga is wrongly rendered as Jina. Hwen-thsang gives the following account of the composition of the Pramana-samuccaya:-" When Dignaga began to compose a useful compendium [presumably the Pramana-samuccaya] for overcoming the difficulties of the Hetuvidya-sastra, the mountains and valleys shook and reverberated; the vapour and clouds changed their appearance, and the spirit of the mountain appeared before him, asking him to spread abroad the sastra (Hetuvidya). Then the Bodhisattva (Dignaga) caused a bright light to shine and illumine the dark places. Surprised at this wonder, the king of the country (Andhra) came near him and asked whether he was entering into nirvana. When the king spoke of the infinite bliss of nirvāna Dignāga resolved to enter into it. Mañthat the Sāstras on Dialectics written earlier by him remained scattered about, he resolved to collect them. Accordingly, putting together fragments from particular works, he engaged himself in compiling in verse a compendium called the Pramāṇasamuccaya. While he was writing the opening lines the earth

Dignāga and lávarakṛṣṇa. trembled and all the places were filled with light and a great tumult was audible. A Brāhmana named Īśvara-

krsna i surprised at this wonder came to Ācārya Dignāga, and finding that he had gone out to collect alms, wiped out the words he had written. Dignāga came and rewrote the words and Isvara-krsna wiped them out again. Dignaga wrote them a third time and added: "Let no one wipe this out even in joke or sport, for none should wipe out what is of great importance; if the sense of the expression is not right, and one wishes to dispute on that account, let him appear before me in person." When after Dignaga had gone out to collect alms, the Brāhmana again came to wipe out the writings he saw what was added and paused. The Acarva returning from his rounds for meal met the Brahmana: they began controversy, either staking his own doctrine. When he had vanquished the Tirtha (Brāhmana) several times and challenged him to accept the Buddhist doctrine, the Tirtha scattered ashes pronouncing incantations on them, and burnt all the goods of the Acarva that happened to lie before him; and when the Ācārya was kept back by fire the Tirtha ran away. Thereupon Dignaga reflected that since he could not work the salvation of this single individual, he would not be able to work that of others. So thinking he was on the point of giving up his purpose of compiling the Pramana-samuccaya when the Bodhisattva Arya Manjusri miraculously appeared before him in person and said:—

"Son, refrain, refrain: the intellect is infected by arguing with mean persons. Please know that when you have demonstrated it this Sästra cannot be injured by the host of Tirthas. I undertake to be your spiritual tutor till you have attained the

juśrī, the god of learning, knowing his purpose was moved with pity. He came to Dignāga and said: "Alas! how have you given up your great purpose, and only fixed your mind on your own personal profit, with narrow aims, giving up the purpose of saving all." Saying this he directed him to explain the Yogācāryabhūmi-śāstra and Hetuvidyā-śāstra. Dignāga receiving these directions, respectfully assented and saluted the saint. Then he gave himself to profound study and explained the Hetuvidyā-śāstra and the Yoga discipline.

i Isvarakrsna here referred to was very probably the author of the Sāmkhya kārikā.

stage of perfection In later times this śāstra will become the sole eye of all the śāstras." ¹

So saying Manjuśri disapppeared and Dignaga resumed his

work and completed the Pramana-samuccaya.

The Pramāna-samuccava² is a Sanskrit work written in anustubh metre. The Sanskrit original of it is lost but a Tibetan translation still exists. The translation was prepared by an Indian sage named Hema Varma (in Tibetan: Gsergyi-go-cha) and a Tibetan interpreter named Dad-pahi-seg-rab in the monastery of Ses-pahi-dge-gnas. It occupies folios 1—13 the Tangyur, section Mdo, volume Ce. In Tibetan it is called Tshad-mahi-mdo-kun-las-btus-pa (=Pramāṇa-sūtrasamuccaya) or briefly Tshad-ma-kun-las-btus-pa (=Pramānasamuccaya) signifying a compilation of aphorisms on Pramāṇa, It begins thus:—"Bowing down before valid knowledge. Sugata—the teacher and protector—who is Pramāna incarnate, and benefactor of the world, I, for the sake of expounding Pramāna (valid knowledge), put together here various scattered matters, compiled from my own works." 4 In the closing lines

્લું અ: चुेद्र अ: चुेद्र क्षे चेंद्र अर्द्ष द्वा अस्त्र च्या क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क च्चिंद्र चुेंद्र त्वर द्वा द्वें क्षा दिद्दे त्या सुः स्वेन अः क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र सुरुष्य द्वार क्षेत्र क्षेत्

क्वैःसदेःतुसःसःसःवेदःगुःवरःतुःत्वोःवदेःववेसःसुःदःदगुरःची। वित्रगुःसदेःतुसःसुःवद्दसःगुदाचीःसवानविवानुःदेःदिनुदन्तीः

Pag-sam-jon-zang, edited by Rai Sarat Chandra Das, Bahadur, C.I.E., p. 101.

² Probably the same as "The Sastra on the grouped inferences," vide Takakusu's I-tsing, p. 167.

3 The volume Ce of the Tangyur, section Mdo, was put at my disposal by the India Office, London, through Mr. Thomas.

क्रास्त्रः भ्रास्त्रं व्यास्तर्भे त्यास्त्रः स्त्रस्यः यहेत्। स्र्रासः स्त्रः स्वित्वासः स्र्रेतः याः स्वतः यद्यः । स्र्राः स्वातः स्वतः यद्यः यद्यः । स्रातः स्वतः स्वतः यद्यः यद्यः । स्रातः स्वतः स्वतः यद्यः यद्यः ।

(Tangyur. Mdo, Ce, folio 1).

it is stated that "Dignāga, the subduer of controversialists in all regions and the possessor of elephantine strength, compiled this from his own works." |

43. It is divided into six chapters which are named respectively: (1) Perception (Sanskrit: Pratyakṣa, Tibetan: Mnonsum); (2) Inference for one's own self (Sanskrit: Svārthānumāna, Tibetan: Ran-don-gyi-rje-dpag); (3) Inference for the sake of others (Sanskrit: Parārthānumāna, Tibetan: Gshan-gyi-don-gyi-rje-dpag): (4) Three characteristics of the Middle Term (Sanskrit: Tri-rūpa-hetu, Tibetan: Tshul-sum-gtan-tshigs) and Rejection of Comparison (Sanskrit: Upamāna-khandana, Tibetan. Dpe-dan-dpe-ltar-snan-pa); (5) Rejection of Credible Word or Verbal Testimony (Sanskrit: Sabdānumānanirāsa, Tibetan: Sgrarje-dpag-min); and (6) Parts of a syllogism (Sanskrit: Nyāyā-vayava, Tibetan: Rigg-pali-yan-lag).

Perception.

Perception.

Perception.

Channels of the senses.

But he describes Perception as that which is freed from illusory experiences and is unconnected with name, genus, etc.²

Suppose a man in the twilight mistakes a rope for a snake: his experience of the snake is merely illusory

े युँनाश इसश गुंद नुै प्यश गुै क्तिय य इसस। देँनाश गुै 'सूट ये दे 'सूर्य स्वर्ध ।। व्याप स्वर्ध ।। (Tangyur, Mdo, Ce, folio 13).

² In chapter I of the Pramāṇa-samuccaya, Dignāga describes Perception as follows:—

अट्ब-शुक्राह्न्वायान्द्रम्थायः । क्षेट-नृहास्त्रम्थाः क्षेत्रम्थाः मृत्यायः ।

The Sanskrit equivalents for those two lines are as follows:-

प्रत्यचं कस्पनापीढं नामजात्याद्यसंयुत्तम्॥

(Pramāṇa-samuccaya, chapter I).

The first of these lines has actually been quoted, and Dignaga's whole theory of Perception severely criticised, by the Hindu logician Udyotakara in his Nyaya-vartika, 1-1-4.

and is not, according to Dignaga, an act of Perception. Dignaga contends that Perception is also not connected with name, genus, etc. Suppose I see a cow. This cow, which I see is a Its infinite peculiarities can only be realised peculiar one. by me who have seen it. If I proceed to indicate this cow to other persons by saying that I saw a cow which is named Dittha or which is red, etc., I can only convey to those persons the idea of a cow of a certain class, that is, a cow possessing the common characteristics of a class of cows, but can never express to them the individual cow which I saw. Hence it follows that (a result of) Perception cannot be properly expressed by name, genus, etc. But very different is the case with inference. Knowledge derived through inference is general, and can be well expressed by name genus, etc., whereas that derived through Perception is particular, and is incapable of being properly communicated to others by name, genus, etc.

45. In the chapter on Perception Dignāga has criticised the Hindu logician Vātsyāyana, who concluded that the mind

Dignāga criticises Vātsyāyana. (manas) was a sense-organ, because it was accepted as such in several systems of philosophy, and the view was not op-

posed in the Nyāya-sūtra according to the maxim "if I do not oppose a theory of my opponent" it is to be understood I approve of it." Dignāga criticises this maxim of Vātsyāyana saying: "if silence proved assent it was useless for the Nyāya-sūtre to mention other sense-organs."

मनस् द्रिन्द्रयभावाञ्च वाश्यं लचणान्तर्रामितः तन्त्र।न्तरसमाचाराचैतत् प्रत्येतव्यमिति परमतमप्रतिश्वमनुमतमिति दि तन्त्रयुक्तिः।

(Nyāyabhāsya, 1-1-4).

2 Dignāga writes :-

यणमायाः सेर् धेर वें यः हे द। रयः से मालक मीः स्वार्टेक सेर्।।

(Pramāna-samuccaya, chapter I).

The Sanskrit originals of the lines are as follows:-

चनिषेधादुपात्तं चेत् चन्येन्द्रियदतं दृथा॥

(Pramāṇa-samuccaya, chapter I).

These two lines have been quoted and criticised by the Hindu logician Vācaspati Miśra in his Nyāya-vārtīka-tātparya-tīkā, 1-1-4.

Vātsyāvana writes:-

In chapter II of the Pramāna-samuccaya, Dignāga mentions the views of some logicians who Inference. from smoke, which is the middle term, infer fire which is inseparably connected with it, and also of others, who from smoke infer the connection between it and the hill which is the minor term. He argues against the first mentioned logicians saying that if they infer fire from smoke they gain no new knowledge from this inference, for it is already known that smoke is inseparably connected with fire. His argument against the other logicians is that they are not able to infer the connection, for connection implies two things, whereas here only one thing, viz., the hill, is visible, but the other, viz., fire, is not visible. What then do we really infer from smoke? Dignaga says it is not fire nor the connection between it and the hill, but it is the fiery hill that is inferred.

What Dignaga meant to say is: --

The Nyāva-sūtra distinctly mentions the eye, ear, nose, tongue and touch as sense-organs, but says nothing as to whether the mind (manas) is a sense-organ or not. The presumption from this silence is that the mind is not a sense-organ according to the Nyāya-sūtra.

But Vātsyāyana, the famous Hindu commentator on the Nyāyasūtra interprets the silence in a quite different way, concluding therefrom that the mind (manas) is a sense-organ according to the Nyāya-sūtra.

Dignaga contends "if silence was a proof of assent why did the Nyayasutra not remain silent regarding the other five sense-organs too?"

¹ Dignāga writes :--

Comparison and Verbal Testimony rejected.

The sake of others consists in making explicit a matter which was inferred by one's own self. In chapter IV, he rejects Comparison as a separate source of knowledge. He says that when we recognise a thing through Perception of a similar thing, we really perform an act of Perception. Hence Comparison or Recognition of Similarity is not a separate source of knowledge, but is included in Perception. In chapter V, he rejects "Credible Word" or "Verbal Testimony" as a separate source of knowledge. He asks: "what is the significance of a

Credible Word? Does it mean that the person who spoke the word is credible or the fact he averred is credible?" "If the person," continues Dignāga, "is credible, it is a mere infer-

ने स्वाया के तुना या श्रेष । यह निक्ष के ने के नी अपनी ब्रास्य प्रमुक्त । यह निक्ष के सम्बद्ध ।

(Pramāṇa-samuccaya, chapter II).

The Sanskrit originals of these lines are as follows:-

केचिद् धर्मानारं मेथं चित्रस्यायभिचारतः।
संबर्भ केचिदिन्द्रन्ति सिद्ध लाडकं धर्मिणोः॥
चित्रं धर्मे प्रसिदं चेत् किमन्दत् तेन भीयते।
स्वय धर्मिणि तस्तेव किमये नानुमेयता॥
संबन्धेऽपि द्वयं नाखि षष्ठी सूयते तद्दति।
स्वान्धोऽन्द्रहोतलाञ्चनारी चित्रमंगतः॥

(Pramāṇa-samuccaya, chapter II).

The Hindu logician Vācaspati Miśra has quoted and criticised these lines in the Nyāya-vārtika-tātparya-tīkā, 1-1-5.

1 Dignaga writes :-

मान्द्रमी देवमी हैशन्यमाने। रूपमीशासर्वे देवमान्द्रमान्द्

(Pramāṇa-samuccaya, chapter III).

² Vide a very interesting discussion on it in the Nyāya-vārtika, 1-1-6, where the Hindu logician Udyotakara defends the Nyāya-sūtra and the Nyāya-bhāṣya from the attacks of Dignāga.

ence. On the other hand if the fact is credible, it is a case of Perception." Hence Dignaga concludes that Credible Word or Verbal Testimony is not a separate source of knowledge, but is included in Perception and Inference.

DIGNĀGA'S Nyāya-praveśa.

48. The Nyāya-pravesa 2 or rather "Nyāya-praveso-nāma pramāṇa prakaraṇa" is another excellent work on Logic by Dignāga. The Sanskrit original is lost. There exists a Tibetan translation of it which extends over folios 183—188 of the Tangyur, section Mdo, volume Ce. The translation was prepared by the great Kāṣmīrian Paṇḍita Sarvajña-ṣrī Rakṣita and the Sākya monk Grags-pa-rgyal-mtshan-dpal-bzan, in the great Sa-ṣkya monastery of Western Tibet. The work in Tibetan is called Tshad-ma-rigs-par-hjug-paḥi-sgo signifying the "Door of Entrance to Logic," It opens thus:—

"Demonstration and refutation together with their fallacies are useful in arguing with others; and Perception and Inference together with their fallacies are useful for self-understanding;

seeing these I compile this S'astra."3

Parts of a Syllogism. 4

49. Some of the subjects discussed in the work are noticed below:—

1 Vide Udyotakara's rejoinder in the Nyāya-vārtika 1-1-7.

(Nyāya-praveśa).

+ In Tibetan: Rigg-palii-yan-lag (ইনামান্মর্মানা) and in Sanskrit: Nyāyāvayava (আত্তাৰ্যক)।

² I consulted the Nyāya-prave a from the volume Ce of the Tibetan Tangyur which was placed at my disposal by the India Office, London. I have also brought a copy of the Nyāya-prave a from the monastery of Labrang in Sikkim which I visited in May 1907. This is probably the same as "Nyāya-dvāra-sāstra": Vide Takakuss I-tsing, p. 186. and Bunviu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Nos. 1223 and 1224. Cf. Dr. Sugiura's "Hindu Logic as preserved in China and Japan," pp. 36, 60, where Sankara Svāmin's Nyāya-prāve a-tarka-sāstra is noticed.

देशःयानधृतःवर्धशःवर्षुतःवर्षुतः। वरःश्वाद्यात्रस्यःयःम्। स्रद्भःसुसःन्यस्यःयःम्। स्रद्भःसुसःन्यस्यःयःम्। स्रद्भःसुसःन्यस्यःयःम्। स्रद्भःसुसःन्यस्यःयःम्। स्रद्भःस्यस्यस्यः

Reasoning, according to the Nyāya-praveśa, is carried on by means of a minor term, a major term, a middle term and two examples. The minor term is also called the subject (in Sanskrit: pakṣa or dharmin, and in Tibetan phyogs or choṣ-can). The major term is otherwise called the predicate (in Sanskrit: sādhya or dharma, in Tibetan: bṣgrub-par-bya or choṣ). The middle term is also called the reason or mark (in Sanskrit: hetu, linga or sādhana, in Tibetan: gtan-tshigs or bṣgrub-par-byed). The example (called in Sanskrit: dṛṣṭānta, in Tibetan: dpe-bṛjod) is of two kinds, viz., (1) homogeneous (in Sanskrit: sādharmya, in Tibetan: choṣ-mthun-pa) and (2) hetrogeneous (in Sanskrit: vaidharmya, in Tibetan: choṣ-mi-mthun-pa).

Form of a Syllogism. 50. The form of reasoning is as follows:—

(1) This hill is fiery.

(2) Because it has smoke,

(3) All that has smoke is fiery like a kitchen and whatever is not fiery has no smoke like a lake.

Here 'hill' is the minor term, 'fiery' the major term, 'smoke' the middle term, 'kitchen' a homogeneous example and 'lake' a hetrogeneous example.

Thesis. 51. A minor term and a major term linked together constitute a proposition, e.q.

The hill (minor term) is fiery (major term).

A proposition which is offered for proof is a Thesis.

52. There are certain types of thesis which cannot stand the The Fallacies of Thesis. 1 test of proof and are therefore fallacious.

The following theses are fallacious:-

- (1) A thesis incompatible with perception, such as: "sound is inaudible."
- (2) A thesis incompatible with inference, such as: "A pot is eternal."

(Really "A pot is non-eternal because it is a product.")

(3) A thesis incompatible with the public opinion, such as: "Man's head is pure, because it is the limb of an animate being." (Or money is an abominable thing. I or some men like me may say "money is an abominable thing," but the world does not say so).

[া] In Tibetan: phyoge-ltar-snan (টুন্হাই, ইন্দ্রাট); in Sanskrit: pakşābhāsa (पंचाभाच)।

(4) A thesis incompatible with one's own belief or doctrine, such as: A Vaiseşika philosopher saying "sound is eternal."

(5) A thesis incompatible with one's own statement such as:

"My mother is barren."

(6) A thesis with an unfamiliar minor term, such as: The Buddhist speaking to the Sāmkhya, "Sound is perishable." (Sound is a subject well known to the Mīmāmsaka, but not to the Sāmkhya).

(7) A thesis with an unfamiliar major term, such as: The Sāmkhya speaking to the Buddhist, "The soul is animate."

(8) A thesis with both the terms unfamiliar, such as: The Vaisesika speaking to the Buddhist, "The soul has feelings as pleasurable, etc."

(The Buddhist neither deals with the soul nor with its feelings).

(9) A thesis universally accepted, such as: "Fire is warm." (This thesis cannot be offered for proof as it is accepted by all.

Three Characteristics of the Middle Term (Hetu) must possess three characteristics, viz.:—

(1) The whole of the minor term (paksa) must be connected with the middle term, c.y.

Sound is non-eternal, Because it is a product,

Like a pot but unlike ether.

In this reasoning "product" which is the middle term includes the whole of "sound" which is the minor term.

(2) All things denoted by the middle term must be homogeneous with things denoted by the major term, e.g.

All things produced are non-eternal as a pot.

(3) None of the things heterogeneous from the major term must be a thing denoted by the middle term, e.g.

No non-non-eternal (that is, no eternal) thing is a product, as ether.

- 54. If we suppose the minor term or subject to be 'S,' the middle term or reason to be 'R,' and the major term or predicate to be 'P,' then the above-mentioned three characteristics of the middle term may be symbolically set forth as follows:—
 - (1) All S is R.
 - (2) All R is P.
 - (3) No R is non-P.

¹ Called in Tibetan : Gtan-tshigs-ni-tshul-gsum (স্চ্রইস্মারী রূম

Now, the negative aspect of the middle term, viz., no R is non-P only confirms the truth conveyed by one of the positive aspects, viz., all R is P. Hence we may put aside the negative aspect, and exhibit the positive aspects as follows:—

- (1) All S is R.
- (2) All R is P.

Again, in the above instance 'R' and 'P' may be taken in their whole extent or partially. So the two positive aspects mentioned above may be fully exhibited as follows:-

- (a) All S is all R.
 - (b) All S is some R.
- (a) All R is all P.
 - (b) All R is some P.

Combining aspect (1) and aspect (2) together we find that a syllogism may be of any one of the following forms:-

- (1) All S is all P (conclusion): Because All S is all R. All R is all P.
- (2) All S is some P (conclusion): Because All S is all R, All R is some P.
- (3) All S is some P (conclusion): Because All S is some R, All R is all P.
- (4) All S is some P (conclusion): Because All S is some R, All R is some P.

Hence we find that Dignaga admits only two conclusions, viz. All S is all P, and

All S is some P.

Relative extension of the Middle Term and the

55.

Major Term.

The second and third of the characteristics mentioned above indicate the relative extension of the middle term and major term. They show that the middle term is universally or inseparably connected with the major

This universal or inseparable connection between them is called in Sanskrit Vyāpti and in Tibetan Khyab which was, as far as I find, first discovered by Dignaga.

Supposing that the middle term or reason is R, and the major term or predicate is P, the connection between the two terms may be symbolically set forth as follows:-

- (1) All R is all P, and
- (2) All R is some P.

56. Owing to the violation of one or more of the three characteristics, there occur Fallacies of the Middle Term which may be of fourteen kinds as follows:—

A. The unproved (Sanskrit: Asiddha, Tibetan: Ma-grub) which occurs:

(1) When the lack of truth of the middle term is recognised by both the parties, e.g.

Sound is non-eternal, Because it is visible.

(Neither of the parties admits that sound is visible).

(2) When the lack of truth of the middle term is recognised by one party only, e.g.

Sound is evolved, Because it is a product.

(The Mimāmsakas do not admit that sound is a product).

(3) When the truth of the middle term is questioned, e.g.

The hill is fiery,

Because there is vapour.

(Vapour may or may not be an effect of fire and may or may not be connected with it otherwise).

(4) When it is questioned whether the minor term is predicable of the middle term, e.g.

Ether is a substance, Because it has qualities.

(It is questioned whether ether has qualities).

- B. The uncertain (Sanskrit: Aniścita, Tibetan: Ma-neg-pa) which occurs:
- (5) When the middle term is too general, abiding equally in the major term as well as in the opposite of it, e.g.

Sound is eternal,

Because it is knowable.

(The 'knowable' is too general because it abides in the eternal as well as the non-eternal. This is a fallacy of being too general, called in Sanskrit: $S\bar{a}dh\bar{a}rana$ and in Tibetan: Thun-mon).

(6) When the middle term is not general enough, abiding neither in the major term nor in its opposite, e.g.

¹ In Tibetan: (ftan-tshigg-ltar-snan (기가 중지시간 기계 기계 in

Sound is eternal, Because it is audible.

(This is a fallacy of being not general enough, called in Sanskrit: Asādhāraṇa, and in Tibetan: Thun-mon-ma-yin).

(7) When the middle term abides in some of the things homogeneous with, and in all things heterogeneous from, the major term, e.g.

Sound is not a product of effort, Because it is non-eternal.

(The non-eternal abides in some of the things which are not products of effort, such as lightning, and abides in all things which are not non-products of effort).

(8) When the middle term abides in some of the things heterogeneous from, and in all things homogeneous with, the major term, e.g.

Sound is a product of effort, Because it is non-eternal.

(The non-eternal abides in some of the things which are not products of effort, as lightning, and abides in all things which are products of effort).

(9) When the middle term abides, in some of the things homogeneous with and in some heterogeneous from, the major term, e.g.

Sound is eternal, Because it is incorporeal.

(Some incorporeal things are eternal as ether, but others are not as intelligence).

(10) When there is a non-erroneous contradiction, that is, when a thesis and its contradictory are both supported by what appear to be valid reasons, e.g.

The Vaisesika speaking to the Mimāmsaka:

"Sound is non-eternal, Because it is a product."

The Mimāmsaka speaking to the Vaiśeṣika:

"Sound is eternal, Because it is always audible."

(Both of the reasonings are correct, but as they lead to contradictory conclusions they are classed as uncertain).

C. The contradictory (Sanskrit: Viruddha, Tibetan: <u>Hgalwa</u>) which occurs:

(11) When the middle term is contradictory to the major term, e.g.

Sound is eternal,

Because it is a product.

(Product is inconsistent with eternal).

'(12) When the middle term is contradictory to the implied major term, e.q.

> The eyes, etc., are serviceable to some being. Because they are made of particles, Like a bed, seat, etc.1

(Here the major term "serviceable to some being" is ambiguous, for, the apparent meaning of 'some being' is 'the body,' but the implied meaning of it is 'the soul.' Though things 'made of particles' are serviceable to the body, they are not. according to the Sāmkhya, serviceable to the soul which is attributeless. Hence there is contradiction between the middle term and the implied major term).

(13) When the middle term is inconsistent with the minor term, e.g.

Sāmānya (generality) is neither substance, quality, nor

Because it depends upon one substance and possesses quality and action.

(Sāmānya or generality does not depend upon one substance, etc.)

(14) When the middle term is inconsistent with the implied minor term, e.g.

Objects are stimuli of action;

Because they are apprehended by the senses.
("Objects" is ambiguous meaning (1) things and (2) pur-The middle term is inconsistent with the minor term in the second meaning).

Dignaga's theory of examples. Examples converted to universal proposition.

57. An example before the time of Dignāga served as a mere familiar case which was cited to help the understanding of the listner, e.g.

The hill is fiery, Because it has smoke. Like a kitchen (example).

Asanga (q.v.) made the example more serviceable to reasoning, but Dignaga converted it into a universal proposition, that

¹ This example may lead us to presume that the author of Nyāya-praveśa knew Iśvara Kṛṣṇa's Sāmkhya-kārikā which is the oldest of the works on Samkhya philosophy that have come down to us.

is a proposition 1 expressive of the universal or inseparable connection between the middle term and the major term, e.g.

The hill is fiery;

Because it has smoke;

All that has smoke is fiery as a kitchen (homogeneous example).

The above example is homogeneous. A heterogeneous example is thus given:—

Whatever is not fiery has no smoke as a lake.

58. Examples have already been stated to be of two kinds, viz., 1. Homogeneous and 2. Heterogeneous example.²

Examples have already been stated to be of two kinds, viz., 1. Homogeneous and 2. Heterogeneous example.²

Fallacies of the homogeneous. Each of these kinds becomes fallacious under certain circumstances.

Fallacies of the homogeneous example are the following:—

(1) An example not homogeneous with the middle term, e.g.

Sound is eternal,

Because it is incorporeal,

That which is incorporeal is eternal as the atoms.

(The atoms cannot serve as an example because they are not incorporeal. This is called a fallacy of the Excluded Middle Term).

(2) An example not homogeneous with the major term, e.g.

Sound is eternal,

Because it is incorporeal,

That which is incorporeal is eternal as intelligence.

(Intelligence cannot serve as an example because it is not eternal. This is called a fallacy of the Excluded Major Term).

(3) An example homogeneous with neither the middle term nor the major term, e.g.

I The universal proposition, that is, the proposition expressive of the universal relation between the middle term and the major term, serves as the major premise in a syllogism of the celebrated Greek logician Aristotle. It was long unknown in India. Dignāga's discovery of the universal proposition marks a new era in the history of Indian Logic and shows a great development of the principle of induction first apprehended by Asanga in India.

² Called in Tibetan: Chos-nthun-dpe-ltar-snan-wa (ক্র্'স্মুর্'ন্ন

우도 장도기) and in Sanskrit: Sādharmya-dṛṣtāntābhāsa (वायम्बर्ध रहानाभाष)।

Sound is eternal,

Because it is incorporeal,

That which is incorporeal is eternal, as a pot.

(The pot cannot serve as an example because it is neither incorporeal nor eternal. This is called a fallacy of the Excluded Middle and Major Terms).

(4) A homogeneous example showing a lack of universal connection between the middle term and the major term, e.g.

This person is passionate,

Because he is a speaker,

Whoever is a speaker is passionate, as a certain man in Magadha.

(Though a certain man in Magadha may be both speaker and passionate, there is nevertheless no universal connection between being a speaker and being passionate. This is a fallacy of Absence of Connection called in Sanskrit: Ananvaya, in Tibetan: P.jes-su-pgro-wa-med).

(5) A homogeneous example showing an inverse connection between the middle term and the major term, e.g.

Sound is non-eternal,

Because it is a product of effort,

Whatever is non-eternal is a product of effort, as a pot.

(The pot cannot serve as an example because though it is both non-eternal and a product of effort, the connection between the major term and the middle term has been inverted, *i.e.*, all products of effort are non-eternal; but all non-eternals are not products of effort. This is a fallacy of Inverse Connection called in Sanskrit: ViparItānvaya, in Tibetan: <u>Rjes-su-hgro-wa-phyin-ci-log-pa</u>).

Fallacy of the heterogeneous geneous example. 1 59. Fallacies of the heterogeneous example are the following:—

(6) An example not heterogeneous from the opposite of the middle term, e.g.

Sound is eternal,

Because it is incorporeal,

Whatever is non-eternal is not incorporeal, as intelligence.

(Intelligence is non-eternal, yet incorporeal. This is a fallacy of Included Middle Term in a heterogeneous example).

(7) An example not heterogeneous from the opposite of the major term, e.g.

Sound is eternal,

Because it is incorporeal,

Whatever is non-eternal is not incorporeal, as atoms.

(The atoms are not incorporeal yet they are eternal. This is a fallacy of Included Major Term in a heterogeneous example).

(8) An example heterogeneous from neither the opposite of the middle term nor the opposite of the major term, e.g.

Sound is eternal,

Because it is incorporeal,

Whatever is non-eternal is not incorporeal, as a pot.

(A pot is neither eternal nor incorporeal. This is called a fallacy of Included Middle and Major Terms in a heterogeneous example).

(9) A heterogeneous example showing an absence of disconnection between the middle term and the major term, e.g.

This person is passionate,

Because he is a speaker,

Whoever is non-passionate is not a speaker, as a piece of stone.

(This is called a fallacy of Absence of Disconnection of a heterogeneous example).

(10) A heterogeneous example showing an absence of inverse disconnection between the middle term and the major term, e.g.

Sound is non-eternal,

Because it is a product,

Whatever is non-product is not non-eternal, as ether.

The example should be inverted as:

Whatever is non-non-eternal, i.e., eternal, is not a product, as ether. This is called a fallacy of Inverted Negation of a heterogeneous example.

60. All the three kinds of fallacies—of the Thesis, Middle Term and Example—are fallacies of reasoning. Refutation (called in Sanskrit: Dūṣaṇa and in Tibetan: Sun-hbyin) consists in finding out in the reasoning of the opponent any one of the fallacies aforementioned. Fallacy of Refutation (called in

Sanskrit: Dūṣaṇābhāsa and inaTibetan: Sun-hbyin-ltar-ṣnan-wa) consists in alleging a fallacy where there is no fallacy at all.

61. Perception and Inference are the two kinds of valid knowledge for one's own self. Perception and their Fallacies. Inference and their Fallacies. It is free from illusory experiences and is not connected with name, genus, etc. Inference called in Sanskrit: Anumāna and in Tibetan: Pies-su-lpag is the knowledge of objects derived through a mark (Tibetan: Rtags) or middle term which has three characteristics. There are Fallacies of Perception as well as of Inference (called respectively Pratyakṣābhāsa and Anumānābhāsa in Sanskrit, and Muonsum-ltar-nan and Rjes-lpag-ltar-nan in Tibetan).

DIGNĀGA'S Hetu-cakra-hamaru.

62. The Hetu-cakra-hamaru is another small treatise on Logic by Dignāga. The Sanskrit original is lost, but a Tibetan translation is preserved in the Tangyur, section Mdo, folios 193-194. The Tibetan translation was prepared by the sage Bodhisattva of Za-hor and the Bhikṣu Dharmāṣoka. The work in Tibetan is called Gtan-tshigs-kyi-hkhor-lo-gtan-la-dwab-pa, signifying "the Wheel of Reasons put in order." It begins thus:—

"Bowing down to the Omniscient One (Buddha), who has destroyed the net of errors. I explain the system of three characteristics of the Reason (or Middle Term)." 2

In this work Dignaga has analysed all nine possible relations between the middle and the major terms and has found that there

I I brought a copy of the Tibetan version of the Hetu-cakra-hamaru from the monastery of Labrang in Sikkim which I visited in June 1907. This work is probably the same as the Hetu-dvāra-śāstra: vide Taka-kusu's I-tsing, p. 187.

चित्रं त्यार्यं त्यार्यं त्यार्यं व्याप्तं व्याप्तं व्याप्तं व्याप्तं व्याप्तं व्याप्तं व्याप्तं व्याप्तं व्यापतं व्य

are among them two relations which conform to the three characteristics of the middle term already laid down, and the remaining seven relations are at variance with those characteristics. Accordingly he has concluded that only two relations are valid as will be evident from the annexed diagram.

OTHER WORKS OF DIGNĀGA.

Pramāņa-samuccaya-vṛtti.

- 65. The Pramāṇa-samuccaya-vṛtti is a commentary on the Pramāṇa-samuccaya by Dignāga himself. The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translaton which extends over folios 13—96 of the Tangyur, section Mdo, volume Ce. The Tibetan translation was prepared, at the command of king Rigs-ldan-rgyal-po, by the famous Indian sage Vasudhara Rakṣita, who was as it were the crest-gem of logicians, and the Tibetan interpreter Sha-ma-dge-bṣñen-sin-rgyal. In Tibetan it is called Tshad-ma-kun-laṣ-btuṣ-paḥi-hgrel-wa. It is divided into six chapters corresponding to those of the Pramāṇa-samuccaya itself. At the end of the work it is stated that 'eled on by the command of Mañjunātha (the god of learning), Dignāga the great dialectician of sharp intellect wrote this śāstra which is as deep as the ocean.'
- 66. There is another translation of the Pramāṇa-samuccayavṛtti in Tibetan extending over folios 96—180 of the Tangyur, section Mdo, volume Ce. It was prepared by the Indian sage Hema Varma (called in Tibetan Gser-gyi-go-cha) and the Tibetan interpreter Dad-pa-śeṣ-rab in the monastery of Si-wahi-dge-gnaṣ.

Pramāņa-śāstra-praveśa.

67. Pramāṇa-śāstra-praveśa ² is another work by Dignāga It was translated into Chinese by the Chinese interpreter Thasam-tsan. The Chinese version was translated into Tibetan by the Chinese scholar Dge-śeṣ-sin-gyan and the Tibetan monk Ston-gshon in the Saṣkya monastery of Western Tibet. The Sanskrit original of the work appears to be lost, but the Tibetan version still exists. It consists of folios 188—193 of the Tangyur, section Mdo, volume Ce. In Tibetan the work is called Tshad-maḥi-bṣtan-bcoṣ-rig-pa-la-hjug-pa signifying "An Entrance to the Science of Logic."

¹ I have consulted the Tibetan xylograph of this work in the possession of the India Office, London.

² I have consulted the Tibetan xylograph of this work in the possession of the India Office, London.

| t | 2 | 3 |
|--|--|--|
| Sound is sternal, Because it is knowable, Little ther and like a pot. Here the 'knowable' (which is the reason or middle term) sholes in all flings homogeneous with, and all things heterogeneous from the "sternal" (which is the majer the order). The reason or middle term is too general. Truth is uncertainty. | Sound is non-estrant. Beauses it is produced, Likes a pot and his either, Rere the 'produced', (Which is the reason or middle (crn) abides in all things homegenous geneous from, the 'non-cental' (which is the unagor term). The reasoning is valid. Well! | Sound is a product of effort, Pacsume it is non-reternal, Likes a pot, his lightning and like other. Likes the 'sone eternal' (which is the reason or meldle term) abides in all things homogeneous with, and some things betweepeneous from, th product of affort (which is the major term). Truth is uncertain. |
| | | |
| Sound is eternal, Because it is produced, Like other and like a pot. Here the 'produced' (thick is the reason or middle tern) addes in nothing homogeneous with, but in all things heterogeneous from, the The reason or middle term is contradictory to the major term. | Sound is consternal, Because it a sudible, Like a pot and tile either. Here the "audible" (which is the reason or unided term) abides in nothing homogeneous with, and in nothing heterogeneous with a nothing heterogeneous with the no | Sound is sternal, Because it a a product of effort, Like ather, like a pot and like lightning. Rere the 'product of effort' (which is the reason or middle term' piddee in nothing bomogeneous from the Laur in some things heterogeneous from the reason or middle term is contradictory to the major term. |
| 7 | 8 | 9 |
| Seuad is a non-product of effort. Bosusse it is non-terral, Like lightning, illso sther, and like a pot. Here the 'non-terral' (which is the reason or middle term) abides in some things homographic the 'non-product of effort' (which is the major term). Truth is unnersian. | Sound in non-sternal. Because it as product of affort. Like a post, like lightning and like other. Here the 'product of effort' (which is the reason or middle term) abides in some times home-from, the 'non-etermal' (which is the major term). The reasoning is valid. Well! | Sound is starnal. Fecause it is corporeal. Like ether, like atom of dust, like action and hise a pot. Here with a corporeat! (which is the reason or the corporeat of the corpor |
| | 64. Analysis of the Wheel. | <u>'</u> |
| <u> </u> | | |
| Sound is eternal (8 is P). Sound is eternal (8 is P). Sound is it is knowable (8 is R). (0) The knowable are all oternals, as other (R is all P), that is, all eternals are knowable as the sound of | (a) No non-streamls are non-produced, as either that is, non-produced are no non-sternals as other (R is no non-P). Symbolicially: But R S H — Horight) R is no non-P — right) reasoning is nound. R is no non-P — right) | Sound is a product of effort (S in P.). Because it is nuce-stream (S in R). (c) The non-steram and and products-of-effort, (c) The non-steram and products-of-effort are non-steram), as a post (R is all-P.). (b) Some non-product-of-effort is non-steram and it non-steram and product-of-effort is non-steram and product-of-effort is non-steram and product-of-effort is not non-Physical and product-of-effort is not non-product-of-effort is not non-physical and product-of-effort is not non-physical and product-of-effort is not non-physical and product-of-effort is not non-physical and physical and ph |
| (e) The produced are not sternal, as etter (It is on P), that is, the sternals are not produced, as at the control of the cont | Sound is non-sternal (6 ip P). Because it is authlet [3 is R). (a) The audibles are no non-storcale as a pot (R is no P), the at, the non-sternal are no nodities, as no P), the at, the non-sternal control of the sternal sternal (P). (b) No non-non-sternal (that is, no storcal), is audible, as ether; that is, no admits is non-non-sternal, as ether (R is no non-P). Symbolically: Because B is R—right R is no P— wrong reasoning is unsound. R is no non-P—right | Sound is sternal (8 is P). (a) The products of effort are noternals, (R is no P), what s, the etternals are no research. (b) The products of effort are noternals, (R is no P), what s, the etternals are no preducts of the sternal search of the sternals, as a pot (R is some non-P), that is, none non-ternals, are pot (R is some non-P), that is, none non-ternals are products of effort are some non-eternals are products of efforts, as expenses non-sternals are not products of effort, as lightning, Symbolically: S is P is R is R - right R is no P - wrong R is no some - wrong R is no some - wrong Treasning is unsound. |
| Sound is a non-product of effort (S is F), Bocause it is non-sternal (S is R), (a) The non-sternal is resone our-products of (a) The non-sternal is resone our-products of (b) The non-sternal is resone our non-sternal (b) The non-sternal is resone our products of offort, as sibre [R] is not one or products of offort are not come one products of effort are not non-sternals, as (c) The non-sternals are ull non-products of effort as a pot (R is all non-P). Symbolically: Brisman is R—right R is none F Brisman is R—right B | | Sound us evenual (8 is P). Because it is corporeal (5 is R). (a) The corporeal (5 is R). (a) The corporeal (5 is R). (b) The corporeal experiments are corpore- (b) The corporeal experiments are corpore- (c) The corporeal experiments are corpore- (d) The corporeal experiments are corpore- (d) The corporeal experiments are come non-externals, as a (d) The corporeal experiments are come non-experiments are come an experiment experiments. (e) The corporeal experiments are come non-experiments are come (1 in experiments). (f) The corporeal experiments are come non-experiments. (g) The corporeal experiments. (g) The corporeal experiments. (h) The corpore |

Ālambana-parīksā.

68. The Alambana-parīksā is another work by Dignāga. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation which consists of one folio only (folio 180) of the Tangvur, section Mdo, volume Ce. The work in Tibetan is called Dmigs-pa-brtag-pa signifying "An Examination of the Objects of Thought." It begins with an invocation to Buddha and all Bodhisattvas.

Ālambana-parīksā-vrtti.

69. The Alambana-parīksā-vrtti is a commentary on the Ālambaņa-parīkṣā by Dignāga himself. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan version which is embodied in the Tangyur, section Mdo, volume Ce, folios 180—182. The work in Tibetan is called Dmigs-pabrtag-pahi-hgrel.

Trikāla-parīksā.

70. The Trikāla-parīksā is a work by Dignāga. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan version in the Tangyur, section Mdo, volume Ce, folios 182—183. This version was prepared by the great Pandita Santakara Gupta and the interpreter-monk Tshul-hkhrims-rgvalmtshan. The work in Tibetan is called Dus-gsum-brtag-pa signifying "An Examination of Three Times."

S'ANKARA SVĀMIN (ABOUT 550 A.D.).

Sankara Svāmin, as it appears from Chinese records, was a pupil of Dignāga. He seems to have been a native of Southern India. Logic is said to have been handed down by Dignāga through Sankara Svāmin and ten other masters to Silabhadra, who was the head of the Nalanda University, and the favourite teacher of the Chinese pilgrim Hwen-thsang in

Office, London.

I I have consulted the Tibetan xylograph of this work as contained in the India Office, London. This is probably the same as "Alambana-pratya ya-dhyāna sāstra": vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, No. 1173, and Takakusu's I-tsing, p. 188.

2 I have consulted the xylograph of this work as contained in the India

³ I have consulted the Tibetan xylograph of this work as contained in the India Office, London. This work is probably the same that is called by Takakusu "The Sastra on the Meditation of the Three Worlds": vide Takakusu's I-tsing, p. 187. The "worlds" is evidently a mistake for " times."

⁴ Vide Dr. Sugiura's Hindu Logic as preserved in China and Japan, pp. 36, 37.

635 A.D. According to the Chinese Tripitaka Sankara Svāmin was the author of a work called Nyāya-praveśu Tarka-śāstra, which was translated into Chinese by Hwen-thsang in 647 A.D. This work seems to be different? from the "Nyāya-praveśa" or more fully the "Nyāya-praveśo nāma pramāṇa-prakaraṇa" which, as we have seen, is ascribed by the Tibetans to Dignāga.

DHARMAPĀLA (ABOUT 600—635 A.D.).

- 72. Dharmapāla, sa logician, was a native of Kāñcīpura in Drāvida (modern Conjeeveram in Madras). He was the eldest son of a great minister of the country. From his childhood he exhibited much eleverness, and as he was a young man the king and queen of the country condescended to entertain him at a feast. In the evening of that day his heart was oppressed with sorrow, and assuming the robes of a Buddhist recluse he left home. and applied himself with unflagging earnestness to learning. He was admitted into the University at Nālandā (vide Appendix A) in which he acquired great distinction. Subsequently he became the head of the University. He must have retired from Nālandā before 635 A.D., when Hwen-thsang visited it, and found that Sīlabhadra had succeeded him in the headship of the University. Dharmapāla conjointly with Bhartrhari composed a Bedā vṛtti on Pānini's grammar.
- 73. He was a follower of the Yogācāra philosophy and was the author of several works such as (1) Ālambaṇa-pratyaya-dhyāna-śāstra-vyākhyā; (2) Vidvāmātra-siddhi-śāstra-vyākhyā; and (3) Sata-śāstra-vaipulya-vyākhyā which was translated into Chinese in 650 A.D. Hwen-thsang, who visited India in 629 A.D., found in Kauśāmbi the ruins of a monastery where Dharma-pāla had refuted the arguments of the heretics.

ĀCĀRYA S'ILABHADRA (635 A.D.).

74. S'ilabhadra belonged to the family of the king of Samatata (Bengal), and was of the Brāhmana caste. He was a pupil

¹ Vide Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, no. 1216, and Appendix I, No. 13.

² The Tibetans do not know Sankara Svāmin at all. The Chinese pilgrim I-tsing, who visited India during 671—695, speaks of Dignāga and Dharmakīrti, but does not mention Sankara Svāmin. Even Hwenthsang in his Travel does not mention him.

³ Vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. 1, p. 237; vol. 11, pp. 110—223, 229 and 230. Vide also Takakusu's I-tsing, p. lvii, and Bunyiu Nanjio's Catalogue of the Chinese Tripitaka, Appendix I, No. 16.

[•] Vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. 11, p. 110; and Takakusu's I-tsing, p. 181.

of Dharmapāla at the Nālandā University (vide Appendix A) of which subsequently he became the head. The Chinese pilgrim Hwen-thsang was his pupil in 635 A.D. Silabhadra was a great logician and master of śāstras.

ĀCĀRYA DHARMAKĪRTI (ABOUT 635—650 A.D.).

The excellent Dharmakirti, 2 called in Tibetan Chosgrags, according to the accounts of all earlier sages, was born in the south in the kingdom of Cūdāmani.3 Since, however, there is now no country by that name, and since on the other hand all the orthodox and heterodox alike name Trimalaya as the birth-place of Dharmakirti, it is to be accepted that in olden times Trimalaya was called the kingdom of Cūdāmani. His father was a Tirtha of the Brāhmana caste, Parivrājaka Korunanda by name. Endowed from childhood up with a very keen intellect he attained to great skill in the fine arts, in the Vedas and Vedāngas, in the art of healing, in grammar, and in all the theories of the Tirthas. When only sixteen or eighteen years old, he was already deeply versed in the philosophy of the Tirthas. Occasionally he attended lectures of the Buddhists. and realised that the teachings of Buddha were without faults. There grew up in him a strong inclination towards Buddhism. He donned the dress of a Buddhist Upāsaka (devotee). When the Brahmanas inquired the reason of this he praised the excellence of Buddhism for which he was out-casted. Thereupon he came to Madhyadeśa * (Magadha), was received into the Sangha (priesthood) by Icarya Dharmapala, attained to great learning in the three Pitakas, and knew in all 500 sūtras and dhāranīs by heart.

76. DharmakIrti desiring to become acquainted with the

चिमवहिन्धयामध्यं यत् प्राम् विनव्यनाद्धि । प्रत्योव प्रयामाच सध्यदेशः प्रकोतितः ॥

(Manusamhitā 2: 21).

In this connection vide a very learned article named "Note on the Middle Country of Ancient India" by Rhys Davids in the Journal of the Royal Asiatic Society, January 1904.

¹ Vide Takakusu's I-tsing, p. xlv.

² This account is taken from Lama Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 175—185.

³ Cūdāmani is probably the same as Coda or Chola country in the Eastern Deccan. As a fact Dharmakīrti was born in the Deccan: *Vide* article 82 under Pramāṇa-vārtika kārikā.

⁴ In Tibetan literature Madhya-deśa signifies Magadha (Behar). But Manu defines Madhya deśa as the country lying between the Himalayas on the north, the Vindhya mountains on the south, Prayāga in the east, and the river Sarasvatī on the west:

secret doctrine of the Tirtha system, donned a slave-attire and went southward. On inquiring who was versed in the Tirtha system, he was informed that the Brāhmaṇa Kumārila was an incomparable master of the same. The assertion that Kumārila was an uncle of Dharmakirti is unsupported by Indian authority. Kumārila had received a large fortune from his king, owned many rice-fields, five hundred male slaves and five hundred female slaves and many hundred men. When Dharmakirti after entering their service performed the work of fifty slaves indoors and outdoors, Kumārila and his wife were satisfied. They allowed him to hear the secret doctrines. Obtaining knowledge of the secret teaching from Kumārila, he left his house. With the wages which he received from Kumārila for his special services he gave a great feast to the Brāhmaṇas in the night of his departure.

77. Thereupon he challenged the followers of the system of Kaṇāda named Kaṇāda Gupta and other followers of the Tīrtha system and entered upon debates with them. The debates lasted for three months, during which he withstood all his opponents and converted many of them to Buddhism. Upon this Kumārila was enraged and appeared with 500 Brāhmaṇas for debate. He proposed the condition that whoever was defeated should be killed. Dharmakīrti who did not desire the death of Kumārila induced the latter to enter upon the condition that whoever was defeated should accept the doctrine of the winner. Putting *Dharma* (doctrine) up as the prize they began the debate, and finally Dharmakīrti was victorious. Kumārila and his 500 followers became followers of Buddha.

78. Dharmakirti further withstood the Nirgranthas (Jainas), Rāhuvratin and others, who lived within the range of the Vindhya mountains. Returning to Dravali (Drāvida?) he challenged by criers those who were ready for debate. The majority of the Tirthas fled; and some actually confessed that they were not equal to the fight. He re-established all the religious schools that had fallen into decay in that country, and lived in the loneliness of the forest given up to meditation.

79. Dharamkitri towards the end of his life erected a vihāra in the land of Kalinga, and after having converted many people to the Law (*Dharma*) passed away. Those of his pupils, who by their lives had become like Brahma, carried him to the cemetery for cremation. Then there fell a heavy rain of flowers, and for seven days the whole country was filled with fragrance and music.

80. This Ācārya (DharmakIrti) and the Tibetan king Srontsan-gam po are said to have been contemporaries, which statement might be accepted as authoritative.

81. From this account it is evident that Dharmakirti was a pupil of Dharmapāla. As the latter lived in 635 A.D., Dharmakirti must also have lived about that time. This date agrees well with the statement that Dharmakirti was a contemporary of the Tibetan king Sron-tsan-gam-po who lived during 627-698 A.D. It seems that in 635 A.D., Dharmakirti was very young as Hwen-thsang does not mention him. On the other hand I-tsing, who travelled over India during 671-695 A.D., declares eloquently how "Dharmakirti made further improvement in Logic " after Dignaga. The Brahmanic logician Udyotakara is attacked by Dharmakirti. The Mimāmsaka Sureśvarācārva, author of the Brhadāranvaka-vārtika, and the Digambara Jaina Vidyānanda, author of the Asta-sāhasrikā,5 have on the contrary criticised the definition of perception (Pratyaksa) as given by Dharmakirti, who is some times designated by the shorter name Kirti. Vācaspati Miśra too quotes Dharmakīrti to criticise him.

Pramāna-vārtika-kārikā.

82. Dharmakīrti is the author of numerous works on Logic. The Pramāṇa-vārtika-kārikā is one of them. A verse? of this work was quoted by the Hindu philosopher Mādhavācārya in

² Takakusu's I-tsing, p. lviii.

^{4 Cf.} शिखेन लिनाभागदिति यहक्रीकीर्त्तना । प्रत्यशायि प्रतिक्षेथं दीयेतासी न संग्रयः॥

(Sure'vara's Brhadāranyaka-vārtika, chap. vi.)

6 Cf. यथार धर्माकीर्ताः--

तसाज्ञार्थं न च जाने च्यूलाभाससदावानः। रकत प्रतिविद्यादक्षम्य न समानः॥

(Vācaspati's Bhāmatī on Vedāntasūtra 2-2-28).

7 The verse runs thus :--

भेद्य भामितियानैः हक्षेतेन्दाविवाद्ये॥

(Pramāṇa-vārtika-kārikā quoted in Mādhavācārya's Sarvadarsanasamgraha, chapter on Bauddha darsana).

¹ Vide Wassilief, p. 54; and Csoma de Koros's Tibetan Grammar, p. 183.

³ Vide K. B. Pathak's "Bhartyhari and Kumārila," Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, 1892, vol. xviii, p. 229.

⁵ Vide Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, vol. xix, 1895—97, p. 56.

the 14th century A.D. The following story is told regarding the composition of this work:—

It is said that Dharmakīrti studied many dialectic śāstras, but his spirit was not satisfied. Once at the house of one Iśvara Sena,² a pupil of Dignāga, he heard the Pramāṇasamuccaya. Having heard it for the first time he at once became as proficient as Iśvara Sena who had minutely studied the work. When he heard it the second time, he became like Dignāga, the author of the work, and when he heard it the third time, he recognised several errors in the work. When he mentioned them to Iśvara Sena, the latter so far from being displeased, told him that he was at liberty to condemn all the mistakes of the work and to prepare a critical commentary on it. With the permission thus received he composed a metrical commentary on the Pramāṇa-samuccaya called the Pramāṇa-vārtika-kārikā.

83. The Sanskrit original of the Pramāṇa-vārtika appears to be lost, but there exists a Tibetan translation of it in the Tangyur, section Mdo, volume Ce, folios 194—2.8. This translation was prepared by the Indian sage Subhūti-śrī-śānti and the Tibetan interpreter Dge-wahi-blo-gros. The work in Tibetan is called Tshad-ma-mam-hgrel-gyi-tshig signifying "Memorial Verses explanatory of Pramāṇa or Sources of Knowledge." The work is divided into four chapters as follows:—(1) Inference for one's own self (in Tibetan: Rau-gi-don-rjes-su-dpag-pa, in Sanskrit: Svārthānumāṇa); (2) Establishment of Pramāṇa (in Tibetan: Tshad-ma-grub-pa, in Sanskrit: Pramāṇa-siddhi); (3) Perception (in Tibetan: Muon-sum, in Sanskrit: Pratyakṣa); and (4) Words for the sake of others (in Tibetan: Gshan-gyi-don-gyi-tshig, in Sanskrit: Parārtha-vākṣa). The work concludes by stating that "it was written by the great sage Srī Dharmakīrti

The Tibetan version of the verse runs as follows:-

क्स-वेश्वात्त्रियानशः त्रानाकेश।। स्रोतास-वेशात्रियानशः त्रानाकेश।।

(Pramāṇa-vārtīka-kārikā embodied in the Tangyur, Mdo, Ce, folio 239. Vide Louis de la Vallee Poussin's Le Bouddhisme d'après les sources brahmaniques, p. 34).

1 Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 176.
2 It seems that Isvara Sena, in whose house Dharmakīrti heard the Pramāṇa-samuccaya, was not a direct pupil of Dignāga, for, while Dignāga lived about 500 A.D., Dharmakīrti lived about 6:5 A.D.

I have consulted the copy of this work embodied in the Tangyur of the India Office. London.

who was unrivalled and whose fame filled the entire earth." It is further stated that he was born in the Decean (in Tibetan: Yul-lho-phyog).

Pramāņa-vārtika-vṛtti.

84. There was a sub-commentary on the Pramāṇa-vārtika-kārikā called Pramāṇa-vārtika-vrtti by Dharmakirti himself. The Sanskrit original of this work is lost. There exists, however, a Tibetan translation 2 of it in the Tangyur, Mdo, Cc, folios 420—535. In Tibetan the work is named Tshad-ma-rnam-hgrelgyi-hgrel-wa. In the concluding lines of the work Dharmakirti is described as "a great teacher and dialectician, whose fame filled all quarters of the earth and who was, as it were, a lion, pressing down the head of elephant-like debaters." 3

Pramāņa-viniścaya.

85. Pramāņa vinišcaya queted by Mādhavācārya is another work on Logic by Dharmakīrti. The Sanskrit original

ै हुद्राय ने मानाश यस सरे हिंदा स पुरा या प्राप्त स्वार हिंदा स कि स्वार हिंदा स कि स्वर स्वर स्वर स्वर स्वर स (Pramāṇa-vārtika kārikā).

- 2 I have consulted the Tibetan xylograph of this work embedied in the Tangyur of the India Office, London.
- यः स्वासः यः केषः योष्ट्रां स्वीतः स

(Pramāņa-vārtika-vṛtti).

4 The following verses of Pramāṇa-vini-caya were quoted in the Sarvadar-sana-saṃgraha, chapter on Bauddha dar-sana, by the Hindu philosopher Mādhavācārya in the 14th century A.D.:—

नान्योऽनुभावा बुद्धास्ति तस्य नानुभनोऽपरः। पाद्यपादकवैषुर्यात् खयं धैव प्रकाशते॥ (क) स्वोपस्थानयमाद् सभेदो नोस्तर्यशे॥ (स) स्विभागोऽपि बुद्धाःका विपर्यासितद्शंनेः। पाद्यपादकसंवित्तिभेदवानिव सस्यते॥ (ग)

(Pramāṇa-viniścaya, chap. I).

of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation of it in the Tangyur, Mdo, Ce, folios 259-347. translation was prepared by the Kāśmirian Pandita Parahita Bhadra and the Tibetan interpreter Blo-ldan-seg-rab in the The work in Tibetan is called matchless city of Kāśmira. Tshad-ma-man-par-nes-pa signifying "Determination of Pramana or Sources of Knowledge." The work is divided into three chapters as follows:—(1) System of Perception (in Tibetan: Mnon-sum-gtan-la-dwab-pa, in Sanskrit: Pratyaksavyavasthā); (2) Inference for one's own self (in Tibetan: Rangi-don-gyi-rjes-su-dpag-pa, in Sanskrit: Svārthānumāna); and (3) Inference for the sake of others (in Tibetan: Gshan-gvidon-gyi-rjes-su-dpag-pa, in Sanskrit: Pararthanumana). In the concluding lines Dharmakirti is described as a great sage of unrivalled fame born in Southern India.

Prof. Louis de la Vallee Poussin in his "Le Bouddhisme d'après les sources brahmaniques," pp. 32 and 34, identifies the above verses with their Tibetan versions as follows:—

व्रमसः उत्तर्राय कर्षाय विद्रित्तास प्रमुद्धाः (म)

(Pramāṇa-viniécaya, chap. I, embodied in the Tibetan Tangyur, Mdo, Ce, folios 272, 274 and 273 respectively).

I have consulted the Tibetan xylograph of this work embodied in the Tangyur of the India Office, London.

Nyāya-bindu.

- 86. Nyāya-bindu is another excellent work on Logic by Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work was discovered among the palm leaf manuscripts preserved in the Jaina temple of Sāntinātha, Cambay, and has been published in the Bibliotheca Indica series of Calcutta by Professor Peterson. There exists a Tibetan translation i of the work in the Tangyur, Mdo, Ce, folios 347—355. The work in Tibetan is called Rigg-paḥi-thigg-pa signifying "A Drop of Logic." It is divided into three chapters as follows: (1) Perception (in Tibetan: Mnon-sum, in Sanskrit: Pratyakṣa); (2) Inference for one's own self (in Tibetan: Bdag-gi-don-gyi-rjeg-su-dpag-pa, in Sanskrit: Svārthānumāna); and (3) Inference for the sake of others (in Tibetan: Gshan-gyi-don-rjeg-su-dpag-pa, in Sanskrit: Parārthānumāna). Some of the subjects discussed in the work are noted below:—
- 87. In chapter I, it is stated that all objects of man are accomplished by perfect or valid know-Perception. ledge. Valid knowledge is of two kinds: (i) Perception (in Sanskrit: Pratyaksa) and (2) Inference (in Sanskrit: Anumāna). Perception which is knowledge derived through the senses, etc., is described as that which is free from illusory experiences (kalpanā) and devoid of confusion (abhrānta). Illusory experiences are the experiences of false images which appear real as if they were capable of being addressed and touched, e.g., the shadow of a tree may appear as the tree itself or a rope may appear as a snake. Confusion is engendered by such causes as darkness, quick motion, journey by boat, shaking, etc., for instance, to a man journeying by boat, trees on both banks appear to move. Perception is of four kinds: (1) perception by the five senses; (2) perception by the mind; (3) self-consciousness; and (4) knowledge of a contemplative An object of perception is like itself (sva-laksana) while an object of inference is like any one of its class (samanya-laksana), for instance, a cow which I see is a peculiar one possessing an infinite number of qualities which distinguish it from all cows, whereas a cow which I infer is a general one possessing certain qualities in common with other cows; that is. perception is individual knowledge while inference is general knowledge. According to the proximity or remoteness of an object, perception of it varies. This is the peculiar characteristic of an object of perception, and this characteristic proves the object to be absolutely real (paramartha-sat), as it

¹ I have consulted the Tibetan xylograph of the Nyāya-bindu embodied in the Tangyur of the India Office, London, as also the excellent edition of F. J. Sher-batski.

shows that it possesses some practical efficiency, and this characteristic also shows that perception is a source of valid knowledge for it exactly corresponds to the object perceived.

88. In chapter II, Inference for one's own self (Svārthānumāna) is defined as the knowledge of the inferrible derived through the reason or middle term with its three forms or characteristics. In the instance 'this hill has fire, because it has smoke,' the knowledge of the hill as having fire is derived through smoke which is the reason or middle term. The three forms or characteristics of the reason or middle term are the following:—

(1) The middle term must be connected with the minor

term, e.g.

The hill has fire, Because it has smoke, Like a kitchen but unlike a lake.

In this reasoning there must be 'smoke' on the 'hill.'

- (2) The middle term must abide only in cases which are homogeneous with the major term, e.g., in the above reasoning 'smoke' abides in a kitchen which is homogeneous with things that contain fire.
- (3) The middle term must never abide in cases which are heterogeneous from the major term, e.g., in the above reasoning 'smoke' does not abide in a lake which is heterogeneous from things that contain fire.

Three kinds of the middle term is of three kinds according to the relation which it bears to the major term, thus:—

- (1) Identity (in Tibetan: Ran-bshin. in Sanskrit: Svabhāva), e.g.

 This is a tree,
 - Because it is simsapā.
 - (2) Effect (in Tibetan: <u>H</u>bra<u>s</u>-bu, in Sanskrit: Kārya), e.g. Here there is fire, because there is smoke.
- (3) Non-perception (in Tibetan: Mi-dmigs-pa, in Sanskrit Anupalabdhi), which is of 11 kinds as follows:—
 - i. Non-perception of identity (Svabhāvānupalabdhi), e.g.
 Here is no smoke, because it is not perceived (though
 smoke is of a nature as to be perceived if existent).
 - ii. Non-perception of effect (Kāryānupalabdhi), e.g.
 Here there are no causes of smoke of unobstructed
 capacity, because there is no smoke here.

iii. Non-perception of the pervader or container (Vyāpa-kānupalabdhi), e.g.

Here there is no Simsapā, because there is no tree at all.

iv. Perception contrary to identity (Svabhāva-viruddhopa-labdhi), $e\ g$.

There is no cold sensation here because there is fire.

v. Perception of the opposite effect (Viruddha-kāryopa-labdhi), e.g.

Here there is no cold sensation because there is smoke.

vi. Perception of contrary connection (Viruddha-vyāpto-palabdhi), e.g.

Even the destruction of the past entity is not certain, because it is dependent on other causes.

vii. Perception contrary to the effect (Kārya-viruddhopa-labdhi), e.g.

Here there are no causes of cold of unobstructed capacity, because there is fire.

viii. Perception contrary to the container (vyāpakavirud-dhopalabdhi), e.g.

Here there is no icy sensation, because there is fire.

- ix. Non-perception of the cause (Kāraṇānupalabdhi), e.g. There is no smoke, because there is no fire.
- x. Perception contrary to the cause (Kāraṇa-viruddho-palabdhi), e.g.

Hair on his body does not stand erect, because he sits near a fire.

xi. Perception of effect contrary to its cause (Kāraṇa-virud-dha-kāryopalabdhi), e.g.

This place does not contain any person on whose body hair stands erect, because there is smoke here.

90. In chapter III Inference for the sake of others (Parārthānumāna) is defined as the declaration of the three-formed middle term in words, that is, when the reason is set forth in words with a view to producing a conviction in others, it is said to be an inference for the sake of others.

Inference is a kind of knowledge; and words are here called inference by the attributing of effect to cause, for, though they are not themselves knowledge, they produce it. Inference for the sake of others is of two kinds: (1) direct or homogeneous (in Sanskrit: Sādharmyavat); and (2) indirect or heterogeneous (in Sanskrit: Vaidharmyavat), as follows:—

(a) Sound is non-eternal, Because it is a product.

All products are non-eternal as a pot (direct).

(b) Sound is non-eternal,

Because it is a product,

No non-non-eternal i.e., eternal (thing) is a product as ether (indirect).

91. The minor term (Pakṣa) is that to which the relation of the major term is to be proved, as—This hill has fire, because it has smoke. In this reasoning 'hill' is the minor term which is to be proved as having 'fire' which is the major term. A minor term and its corresponding major term combined together, constitute a proposition which, when offered for proof, is called a thesis.

Fallacies of thesis or 92. There are four fallacies of the Paksābhāsa. (Pakṣābhāsa).

A thesis is fallacious if it is incompatible with—

- (1) Perception, e.g. Sound is inaudible;
 - (2) Inference, e.g. Sound is eternal;
- (3) Conception, e.g. The moon is not luna (Sasi a-candra); or (4) One's own statement, e.g. Inference is not a source of knowledge.
- 93. It has already been stated that the middle term must possess three characteristics. Fallacies of the middle term.

 Fallacies of the middle term (Hetvābhāsa) occur even if one of the characteristics is unproved, uncertain or contradictory, thus—
 - A. Unproved (asiddha).
 - (1) Sound is eternal, because it is visible.
 (Visibility of sound is admitted by neither party).
- (2) Trees are conscious, because they die if their barks are taken off.

(This peculiar kind of death of trees is not admitted by the opponent).

- (3) The hill has fire, because it has vapour. (Vapour as an effect of fire is questioned).
- (4) The soul is all-pervading, because it is perceived everywhere.
- (It is a matter of doubt whether the soul is perceived everywhere).

- B. Uncertain (anaikāntika).
- (5) Sound is non-eternal. Because it is knowable.

(The knowable is too general, because it includes the eternal as well as the non-eternal).

(6) A certain man is omniscient, Because he is a speaker.

(The reason is not general enough, for speakers are not necessarily either omniscient or non-omniscient).

- C. Contradictory (viruddha).
- (7) Sound is eternal, Because it is a product.

(Here 'product' is not homogeneous with 'eternal,' that is, the middle term is opposed to the major term).

(8) Sound is eternal,Because it is a product.(Here 'product' is not heterogeneous from 'non-eternal').

94. The opposition of the middle term to the major term is a kind of contradiction which is admitted by both Dignāga and Dharmakīrti. Opposition of the middle term to the implied major term (in the event of the major term being ambiguous) is noted by Dignāga in his Nyāya-praveśa as another kind of contradiction (Viruddha). Dharmakīrti in his Nyāyabindu rejects this view saying that this second contradiction is included in the first kind. Dignāga has in his Nyāya-praveśa treated another kind of fallacy called "non-

² तन च दत्रीयोऽपि दृष्टविधातहादु विषदः।... स दृष्ट कस्त्राञ्चोत्तः चनयोरेव चन्त्रभोवात्। (Nyāya-bindu, Peterson's edition, Bibliotheca Indica series, chapter 111, p. 113).

ख्यं च विदस चाचार्या दिङ्गागेन एकः। स कस्राट् वार्तिककारिय सता व्या नाकः। (Nyāyabındu-tīkā, Peterson's edition, Bibliotheca Indica senes, chapter III, p. 78).

erroneous contradiction" (Viruddhāvyabhicāri), which it rejected by Dharmakīrti in his Nyāyabindu, on the ground that it does not arise in the case of inference, but is based on the scriptures of the two parties engaged in disputation.

95. In opposition to Dignāga, Dharmakīrti maintains that 'example' is not a part of a syllogism,' as it is included in the middle term, e.g.

The hill is fiery, Because it is smoky, Like a kitchen.

In this reasoning the term 'smoky' includes a 'kitchen' as well as other similar things, hence it is almost unnecessary to cite the example 'kitchen.'

Compare K. B. Pathak's "On the authorship of the Nyāyabindu" in the Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, vol. XIX, p. 51.

1 Vide Nyāya-prave´a, Fallacies of the Middle Torm, No. 10. This fallacy of 'non-orroneous contradiction' is called in Sanskrit:

बिभचारी and in Tibetan: ८मायायायायाँ प्राप्तायाया (Nyāya-praveía).

विद्वार्याभचार्यपि संगयचेतुरताः। स इत कसाद्वीताः चनुमानविषये चयसावात्। (Nyāyabında, p. 115).

ननु चाचार्येष विरदायभिचार्याप संग्रयहेतुबक्तः। क तर्हि चाचार्य-दिङ्नामेन चर्य हेतुदोष जक्तः द्रत्याह। ... तस्मादाममात्रयमनुमानमात्रित्य विवदा-चभिचार्यक्तः। (Nyāyabindu-tīkā, p. 84).

Compare also B.B.R.A.S., vol. XIX, p. 49.

² निक्यो चेतुवन्नः। तावतैव वर्षप्रतातिरिति न प्रथम् दृष्टान्तो नाम साधना-वथवः कश्चित्। तेनास्य स्वचणं प्रथम्[न] उत्यतं मनार्थलात्।

(Nyāyabindu, Peterson's edition, Bibliotheca Indica series, pp. 115—116). Peterson has omitted $\overline{\bullet}$ wrongly as will appear from the Tibetan version which runs as follows:—

माइन कें नाश गीः सर्वन केंद्रा माध्यस क्षेत्रा या दे देश मी शादित हैं नास या सा द्रयो क्षेत्र मुद्रा या ये प्यत्र प्यता के वित्ता संक्षित क्षेत्र मी का क्षेत्र हैं ।। देश न देवे अर्थन केंद्र वित्ता संक्षित क्षेत्र भी माद्र स्वाप्त केंद्र ।। १९९४ ।।

(Nyāyabindu, Sherbatski's edition, St. Petersburg, p. 193).

Nevertheless, says DharmakIrti, the example has this much value that it points out in a particular way what has been expressed in a general form by the middle term: thus, the general expression "all smoky things are fiery" is made more impressive by the particular example 'kitchen' which is smoky as well as fiery.

- 96. Example is of two kinds: (1) homogeneous and (2) Fallacies of the homogeneous example. Fallacies of the homogeneous example occur as follows:—
 - (1) Sound is eternal,

 Because it is incorporeal,

 Like action.

(Action cannot serve as an example, because it is not eternal, that is, because it is excluded from the major term).

(2) Sound is eternal,

Because it is incorporeal,
Like atoms.

(Atoms cannot serve as an example, because they are not incorporeal, that is, because they are excluded from the middle term).

(3) Sound is eternal,
Because it is incorporeal,
Like a pot.

(Pot cannot serve as an example, because it is neither eternal nor incorporeal, that is, because it is excluded from both major and middle terms).

(4) This man is passionate, Because he is a speaker, Like a person in the street.

(The person in the street cannot serve as an example, as it is questionable whether he is passionate, that is, it involves doubt as to the validity of the major term).

(5) This man is mortal, Because he is passionate, Like a person in the street.

(This example involves doubt as to the validity of the middle term, that is, it is questionable whether the person in the street is passionate).

^{.....}जन्नम् चभेदेन,.... पुनर्विशेषेष दश्नीयावन्ती । (Nyāyabindu, p. 116).

(6) This man is non-omniscient, Because he is passionate, Like a person in the street.

(This example involves doubt as to the validity of both the major and middle terms, that is, it is questionable whether the person in the street is passionate and non-omniscient).

(7) This man is passionate, Because he is a speaker, Like a certain person.

(This example is unconnected (ananvaya), for there is no inseparable connection between being 'passionate' and being a 'speaker').

(8) Sound is non-eternal, Because it is a product, Like a pot.

(This example involves the fallacy of 'connection unshown,' apradarsitānvaya: the connection should be shown as follows: All products are non-eternal like a pot).

(9) Sound is a product,
 Because it is non-eternal,
 All non-eternal things are products like a pot.

(The example involves the fallacy of inverted connection, viparītānvaya; the real connection should be shown as follows: All products are non-eternal like a pot).

- 97. Similarly there are nine fallacies of the heterogeneous example.
- 98. Refutation ($D\bar{u}$ saṇa) consists in pointing out in the reasoning of an opponent any one of the fallacies mentioned above. The fallacies or semblances of refutation are the futilities called in Sanskrit $J\bar{a}ti$.
- 99. In the concluding lines of the Nyāyabindu it is stated that "Dharmakīrti vanquished the entire Tīrthikas as Sākyamuni had subdued the large army of Māra; and as the sun dispels darkness, the Nyāyabindu has exterminated the Ātmaka theory (that is, the Tīrthika doctrine)—wonderful!²

¹ For Jāti vide Nyāya-sūtra, Book I, aphorism 58.

[ै] भृगुःष्वनायशयर्दुरःगुःश्चेनश्चराःसुस्य ॥ भृगुःष्वनायशयर्दुरःगुःश्चेनश्चराःसुस्य ॥

Hetu-bindu-vivaraņa.

100. The Hetu-bindu-vivarana is another excellent work on Logic by DharmakIrti. The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ce, folios 355—375. The work in Tibetan is called Gtantshigs-kyi-thigs-pa signifying "A Drop of Reason." The work is divided into three chapters as follows:—

(1) Relation of identity between the middle term and the major term (in Tibetan: Ran-bshin-gyi-gtan-tshigs, in Sanskrit: Svabhāva-hetu); (2) Relation of effect and cause between the middle term and the major term (in Tibetan: Hbras-buhi-gtan-tshigs, in Sanskrit: Kārya-hetu); and (3) Relation of negation between the middle term and the heterogeneous major term (in Tibetan: Mi-dmigs-pahi-gtan-tshigs, in Sanskrit: Anupalabdhi-hetu).

Tarka-nyāya or Vāda-nyāya.

101. The Tarka-nyāya or Vāda-nyāya is another treatise on Logic by Dharmakirti. The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ce. folios 384—416. The work in Tibetan is called Rtsod-pahi-rigs-pasignifying the "Method of Discussion." The Tibetan translation was prepared by the great Indian sage Jāāna-śri-bhadra and the Tibetan interpreter-monk Dge-wahi-blo-gros. Subsequently the translation was retouched by the great Paṇḍita Dipankara (of Vikramanīpura in Bengal, born in 980 A.D.) and the interpreter-monk Dar-ma-grags.

Santānāntara-siddhi.

102. The Santānāntara-siddhi is a philosophical treatise by Dharmakīrti. The Sanskrit original of the work is lost, but there exists a Tibetan version b in the Tangyur, Mdo, Ce, folios

वर्यान्त्रीन्त्रः त्रेत्रः सुद्रः सुद्रः क्षेत्रः ।। क्रे.ससः स्नान्त्रः द्रम्यस्य वित्रासः स्पर्धः ।।

(Nyāyabindu).

- ¹ I have consulted the copy embodied in the Tangyur of the India Office, London.
- ² I have consulted the work embodied in the Tangyur of the India Office, London.
- § I have consulted the Tibetan version embodied in the Tangyur of the India Office, London.

416—420. The work in Tibetan is called Rgyud-gshan-grub-pa signifying "Proof of the Continuity of Succession."

Sambandha-parīkṣā.

103. The Sambandha-parīkṣā is another philosophical treatise by Dharmakirti. The Sanskrit original of the work is lost, but there exists a Tibetan translation i in the Tangyur, Mdo, Ce, folios 375—377. The work in Tibetan is called Horel-wa-prag-pa signifying "Examination of Connection." The Tibetan translation was prepared by the Indian teacher Jūāna-garbha and the interpreter Vande-nam-mkhas.

Sambandha-parikşā-vṛtti.

104. The Sambandha-parīkṣā-vṛtti² is a commentary on the Sambandha-parīkṣā by Dharmakīrti himself. The Sanskrit original of the work is lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ce, folios 377—384. The work in Tibetan is called Hbrel-wa-bṛtag-paḥi-hgrel-wa.

DEVENDRABODIII (ABOUT 650 A.D.).

105. Devendrabodhi, called in Tibetan Lha-dwań-blo, was a contemporary of Dharmakirti, and so lived about 650 A.D. He wrote the following work on Logic:—

106. The Pramāṇa-vārtīka-pañjikā, called in Tibetan, Tshad-ma-ṛnam-hgrel-gyi-dkah-hgrel, signifying "An Explanation of Difficulties in the Pramāṇa-vārtīka of Dharmakīrti." The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Che, folios 1—380. The translation was prepared by the Indian sage Subhūti-śrī and the Tibetan interpreter-monk Dge-wahi-hlo-gros.

107. This story b is told regarding the composition of the

Pramāna-vārtika-panjikā:—

Dharmakirti chose Devendrabodhi to write a commentary on his Pramāṇa-vārtika. After Devendrabodhi had finished the

¹ I have consulted the copy embodied in the Tangyur of the India Office, London.

² I have consulted the copy of this work embodied in the Tangyur of the India Office, London.

³ Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 186—187.

^{*} I have consulted the work in the monastery of Labrang in Sikkim in 1907.

Vide Tārānatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp.186-187.

commentary for the time and shown it to Dharmakirti, the latter erased it with water. After he had compiled it a second time, Dharmakirti burnt it in fire. He then compiled it a third time and gave it to Dharmakirti with the observation: "Since the majority of men are incompetent and time is fleeting, I have written this commentary for the people of lighter understanding." This time Dharmakirti allowed the work to exist.

S'AKYABODHI (ABOUT 675 A.D.).

- 108. Sākyabodhi is stated to have been a pupil of Devendrabodhi. He seems to have lived about 675 A.D. He was the author of the following work:—
- 109. The Pramāṇa-vārtika (-pañjikā)-tīkā, called in Tibetan: Tshad-ma-rnam-hgrel-gyi-hgrel-hśad, which is an annotation on the Pramāṇa-vārtika-pañjikā of Devendrabodhi. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation which covers volumes Je and Ne of the Tangyur, Mdo. The translation was prepared by the interpreter Dge-wahi-hlo gros.

VINITA DEVA (ABOUT 700 A.D.).

110. Vinīta Deva,³ called in Tibetan Dul-lha, lived in Nālanda during the time of king Lalita Candra, son of Govi Candra, and Dharmakīrti died during the time of Govi Candra. Vimala Candra, the father of Govi Candra, was married to the sister of Bhartrhari, who sprang from the ancient royal family of Malwa. Supposing this Bhartrhari to be identical with the famous grammarian of that name who died in 651—652 A.D.,⁴ we may place his contemporary Govi Candra in the middle of the 7th century A.D. This is exactly the time when Dharmakīrti died. Hence we may conclude that Lalita Candra, son of Govi Candra, flourished towards the end of the 7th century A.D. Vinīta Deva, contemporary of Lalita Candra, must also have lived about this time, a view which harmonises with the date of Dharmakīrti on whose works Vinīta Deva wrote commentaries.

Vinita Deva, who was the famous author of the Samayabhedoparacana-cakra, wrote the following works on Logic:—

Vide Täränätha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 187.
I have consulted this work in the monastery of Labrang in Sikkim in 1907.

³ Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 195—198, 272; Pag-sam-jon-zang edited by Sarat Chandra Das, pp. xlviii, 108.

Vide Takakusu's I-tsing, p. lvii.

111. Nyāya-bindu-tīkā, called in Tibetan: Rigṣ-paḥi-thigṣ-pa-rgya-cher-hgrel-wa, which is a detailed commentary on the Nyāyabindu of Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work is lost, but a Tibetan translation of it exists in the Tangyur, Mdo, She, folios 1—43. The translation was prepared by the Indian sage Jina Mitra and the interpreter of Shu-chen named Vande-ye-ses-gde.

112. Hetu-bindu-tīkā, called in Tibetan: Gtan-tshigs-kyithigs-pa-rgya-cher-hgr l-wa, which is a detailed commentary on the Hetu-bindu of Dharmakirti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation 2 in the Tangyur, Mdo, She, folios 116—205. The translation was prepared by the Indian teacher Praiñā Varma and the inter-

preter-monk of Shu-chen named Dpal-brtsegs-raksita.

113. Vāda-nyāya-vyākhyā, called in Tibetan: Rtsod-pahirigs-pahi-hgrel-wa, which is a commentary on the Vāda-nyāya (otherwise called Tarka-nyāya) of Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, folios 39—65. The work opens thus: "Who is self-perfected in sweet logical discussion, supreme in patience, affection, charity and self-restraint, and who is the most excellent of logicians—to him (Buddha) bowing down I compose a commentary on the text of Vāda-nyāya."

114. Sambandha-parīkṣā-tīkā, called in Tibetan Hbrel-pabrtag-paḥi rgya-cher-bṣad-pa, which is a copious commentary on the Sambandhaparīkṣā of Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, folios 1—24. The translation was prepared by the Indian sage Jñāna-garbha and the Tibetan interpreter

Vande-nam-mkhas. The work opens thus:-

"Who is entirely unconnected with the world, and is yet designated as the supreme teacher of it—to him bowing down

fully I explain the Sambandha-pariksā."

115. Ālambaṇa-parīkṣā-ṭīkā, called in Tibetan Dmigs-pabṛtag-paḥi-hgrel-bṣad, is an annotation on the Ālambaṇaparīkṣā of Dignāga. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the

² I examined this work by permission of the Government of India when it was brought down to Calcutta by the British Mission to Tibet,

904.

¹ This work was brought down to Calcutta by the British Mission to Tibet during 1904. I examined it by permission of the Government of India. It is now deposited in the British Museum, London.

⁸ I have consulted the India Office copy.

<sup>I have consulted the India Office copy.
I have consulted the India Office copy.</sup>

Tangyur, Mdo, Ze, folios 186—200. The translation was prepared by the Indian sage Sākya-simha and the interpreter Vandedpal-brtsegs of Shu-chen. The work opens thus:—

"Meditating on the merciful Omniscient One, and saluting

him by my head, I compose the Alambana-parīksā-tikā."

It ends thus:-

- "Here is finished the Ālambaṇa parīkṣā-ṭīkā, which is a clean work of the teacher Vinīta Deva who weighed all sorts of ālambaṇa (objects of thought), and is a lion of speakers confounding the brains of the Tirthika-elephants."
- 116. Santānāntara-siddhi tīkā, called in Tibetan: Egyudgshan-grub-paḥi-bgrel-bád, being a commentary on the Santānāntara-siddhi of Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Tshe, folios 1—21. The translation was prepared by the Indian sage Viśuddha-simha and the interpreter of Shu-chen named Dpal-rtsegs-rakṣita.

CANDRA GOMIN (ABOUT 700 A.D.).

117. Candra Gomin, called in Tibetan: Zla-wa-dge-bsñen, was born in a Ksatriya family in the east at Vārendra (modern Rajshahye in Bengal). He was endowed with a very keen intellect and acquired distinction in literature, grammar, logic, as tronomy, music, fine arts and the science of medicine. Under Ācārya Sthiramati he learnt the Sūtra and Abhidharma Pitakas of the Buddhist scripture, and was converted to Buddhism by the Vidyādhara Ācārya Aśoka.8 He had an ardent faith in the Buddhist god Avalokiteśvara and the goddess Tārā. He was offered in marriage a daughter of the king of Nalendra. Being told that she was named Tārā, which was the name of his tutelary deity, he thinking it improper to accept her hands shrank from her with fear. Upon this the king of Varendra became angry and put Candra Gomin into a chest which was thrown into the Ganges. The chest was carried down until it stopped at an island at the place where the Ganges flows into the ocean. Candra Gomin with deep reverence offered a prayer to goddess Tārā by whose blessing he got out of the chest. He

4 For Candra Gomin's "Arya-Tārā-antarbali-vidhi" vide Satischandra

Vidyabhusana's Sragdharā-stotra, Introduction, pp. xx, xxi.

¹ I have consulted the India Office xylograph of the Tibetan version.

² Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp.

145—146, 148—158; and Pag-sam-jon-zang edited in the original Tibetan by Sarat Chandra Das, Calcutta, pp. 95 96.

³ Ācārya Aśoka was the author of a logical treatise called Sāmānyadūṣana-dikprakāśikā, a short treatise on the refutation of generality, lately recovered from Nepal.

resided in the island which was in course of time named Candradvīpa or the island of Candra. He as a Buddhist devotee (upāsaka) established there stone-images of Avalokiteśvara and Tārā. At first only fishermen settled in the island, but afterwards other people came to live there. Gradually the island became a town.

118. Candra Gomin thereupon went to Ceylon and on his way back found in Southern India in the house of Vararuci, Nāga-Sesa's (Patanjali's) Bhāsva on Pānini's grammar. Finding that it contained "many words but few thoughts," he himself composed a commentary on Pānini, which was named Candra-vyākarana.² Afterwards he came to Nālandā—the store-house of knowledge—and met there Candra-kirti, the famous commentator on the Mādhyamika Philosophy of Arya Nāgārjuna. Candra Gomin himself was a follower of the Yogācāra system expounded by Arva Asanga. While Candra Kīrti and Candra Gomin entered upon philosophical discussions people used to observe b: "Alas! the text of Arva Nāgārjuna is medicine to some but poison to others, whereas the text of invincible Ārya Asanga is very ambrosia to all men." It is further stated that into a well at Nalanda Candra Gomin threw the original manuscript of his grammar, thinking that it was not better than the one which Candra Kirti had written. At that time Tārā and Avalokitesvara appeared before him saving: "Though Candra Kirti is overwhelmed with pride as a sage, your work is more useful than all others and will do immense good to the world." They raised the manuscript from the well, which was

I Candra dvīpa is situated in the district of Barisal in South-eastern Bengal at a place where the Padmā, which is a main outlet of the Ganges, falls into the ocean. Vārendra in which Candra Gomin was born is identical with the Rajshahye division in North-eastern Bengal through which the Padmā flows.

² For Candra-vyākaraṇa vide Satis Chandra Vidyabhusana's "Sanskrit works on Literature. Grammar, Rhetoric and Lexicography, as preserved in Tibet" in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, new series, Vol. iii, No. 2, 1907. The Candra-vyākaraṇa in the original Sanskrit has been printed in Germany.

भुँ में गुद्रायायायुर् हुना (Pag-sam-jon-zang, p. 96).

thence reputed as "Candra's well" (in Sanskrit: Candra-kūpa and in Tibetan: Tsandrahi-khron-pa), the water of which was wont to be drunk by people in the belief that thereby their intellect would become sharp. Candra Kirti was, however, a great admirer of Candra Gomin. When the latter arrived at Nalanda the monks refused to give him a reception, saving that it was not proper for priests to welcome a mere devotee (upāsaka). Hearing this Candra Kirti brought three chariots, two of which were occupied by himself and Candra Gomin respectively, while in the third was placed an image of Manjusri, the Buddhist god of learning. The chariots passed through the town in a great procession attended by the whole body of priests who came really to recite hymns to Mañinsri, but apparently to accord a fitting welcome to Candra Gomin.

- 119. Candra Gomin lived at a time when Sila, son of Harşa, reigned. During this time king Simha of the Licchavi dynasty reigned in Varendra. The famous poet Ravi Gupta was a contemporary of Bharsa, son of Simha. Sri Harsa seems to be the same as king Harsa Vardhana who was a contemporary of Hwen-thsang and reigned in 647 A.D. His son Sila seems, on a rough calculation, to have reigned in 700 A.D., when his contemporary Candra Gomin must also have lived. Jaina Hema Candra Sūri who lived during 1088-1172 A.D., refers to Candra Gomin while Javaditva. the famous author of the Kāśikā vrtti, who died in 661-662 A.D., 3 does not mention him. This may be explained on the supposition that Candra Gomin lived after Javaditya, but preceded Hema Candra.
- 120. Candra Gomin was the author of the following work on Logic: Nyāyāloka-siddhi, called in Tibetan: Rigs-pa-grub-pahisgron-ma, signifying "a lamp of logical reasoning." The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation 4 in the Tangvur, Mdo. Ze, folios 200-201. The translation was prepared by Pandita Sri Sita-prabha and the interpreter-monk Vairocana.

RAVI GUPTA (ABOUT 725 A.D.).

121. Ravi Gupta, 6 called in Tibetan: Ni-ma-sbag, was born in Kāśmīra. He was a great poet, dialectician and Tantric

¹ Vide Pag sam-jon-zang, pp. 95-96.
2 Vide Professor F. Kielhorn's "Indra Gomin and other grammarians" in the Indian Antiquary, Vol. xv, June 1886, pp. 181, 184.

³ Vide Takakusu's I-tsing, p. lvii. 4 I have used the India Office copy.

b Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 146, 147, 243; and Pag-sam-jon-zang, part i, pp. 90, 101, 118, xxxvii.

teacher, who established 12 great religious schools in his native country and Magadha. He was a contemporary of king Bharṣa of Vārendra, and flourished a little later than Candra Gomin, who had lived during the time of Bharṣa's father Simha. Ravi Gupta must have lived in the first quarter of the eighth century A.D., for his disciple the famous Tāntric monk Sarvajña Mitra lived in the middle of that century. Ravi Gupta was the author 2 of the following work on Logic:—

122. Pramāņa-vārtika-vṛtti, called in Tibetan: Tshad-marnam-hgrel-gyi-hgrel-pa, which is an annotation on the Pramāṇa-vārtika of Dharmakirti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in

the Tangyur, Mdo, Tshe, folios 132-252.

JINENDRABODHI (ABOUT 725 A.D.).

123. In the Tangyur, Mdo, Re, there is the Tibetan version of a work called Viśalāmala vatī-nāma-pramāṇa-samuccaya-tīkā. This version was prepared by the Tibetan interpreter Rdo-rje-rgyal-mtshan with the assistance of Dpal-ldan-blo-grog.

121. The author of the original work was Jinendrabodhi, called in Tibetan Rgyal-dwań-blo-gros, who was a vererable countryman of the Bodhisattva (Dignā za?). He is perhaps the same person who wrote the well-known Nyāsa on the grammar of Pānini in the eighth century A.D.

S'ānta Rakşita (749 A.D.).

125. Sānta Rakṣita, called in Tibetan: Shi-wa-htsho, was born in the royal family of Za-hor [in Bengal?]. The exact date of his birth is unknown, but it is stated that he was born at the time of Go Pāla who reigned up to 705 A.D. (vide Appendix B) and died at the time of Dharma Pāla who became king in 765 A.D. He followed the Svatantra Mādhyamika school, and was a Professor at Nālandā (vide Appendix A). He visited Tibet at the invitation of King Khri-srou-deu-tsan who was born in 728 A.D., and died in 861 A.D. The king, with the assistance of Sānta Rakṣita, built in 749 A.D. the monastery of Sam-ye 5 in

¹ Vide Satis Chandra Vidyabhusana's Sragdharā Stotra, Introduction, p. xxx, printed in the Bibliotheca Indica series of Calcutta.

² For Ravi Gupta's Ārya-koṣa see Rockhill's Buddha, p. 228; and for his works on Tantra, see Satis Chandra Vidyabhusana's Sragdharā Stotra, Introduction, pp. v-vii.

⁸ I have consulted the copy of the India Office, London.

⁴ Vide Pag-sam-jon-zang edited by Sarat Chandra Das, C.I.E., Calcutta. p. 112.

b Vide Csoma de Koros's Tibetan Grammar, p. 183; Sarat Chandra Das in the Journal of the Asintic Society of Bengal, 1881, Part I, p. 226; and Waddell's Lamaism, p. 28.

Tibet, modelled after the Odantapura Vihāra of Magadha. Samye was the first Buddhist monastery in Tibet and Sāna Rakṣita was its first abbot. He worked in Tibet for 13 years, that is, until 762 A.D. He was known there under the name of Ācārya Bodhisattva, and was the author of the following works on Logic:—

126. Vāda-nyāya-vṛtti-vipañcitārtha, called in Tibetan: Rtsod-paḥi-rigs-paḥi-hbrel-pa-don-ṛnam-par-hbyed-pa, an elaborate commentary on the Vāda-nyāya of Dharmakirti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, folios 65—186, and in the Tangyur, Mdo, Tshe, folios 21—131. The translation was prepared by the Indian sage Kumārastī-bhadra and the Tibetan interpreter-monks venerable Ses-rab and Hbro-sen-dkar (who was a native of the province of Hbro or Dö) in the holy monastery of Bsam-yas (Sam-ye). The work opens thus:—

"Who constantly dispersing darkness by the ray of the heap of various pure precious qualities, exerted himself for the sake of obtaining the fruits of desire of various sentient beings and rejoiced to do good to the entire world—to that Mañju-śrī bowing down in reverence, I compose this concise and stainless Vāda-

nyāya-vṛtti-vipañcitārtha.'

127. Tattva-samgraha-kārikā, called in Tibetan: De-kho-nanīd-badus-paḥi-tshig-leḥur-byas-pa, a work containing memorial
verses on a summary of the Tattvas. The Sanskrit original of
this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, He, folios 1—146. The translation
was prepared by the Indian Paṇdita Guṇākara-śrī-bhadra (belonging to the religious circle first instituted by the great king
Lalitāditya in the incomparable city of Kāśmīra) and the great
Tibetan interpreter the Sākya monk Lha-bla-ma-shi-wa-hod in
the province of Guge (S.-W. Tibet). The work reviews various
systems of philosophy such as the Sāmkhya, Jaina, etc.3

1 1 have consulted the xylograph of this work contained in the India Office, London.

the Asiatic Society of Bengal, new series, Vol. iii, No. 8.

3 The Tattvasamgraha herein noticed is quite different from the Tattvasamāsa, a Brāhmanic work on the Sāmkhya philosophy, a manuscript of which is contained in the library of the Asiatic Society of

Bengal.

² I have consulted the work in the monastery of Labrang, Sikkim, which I visited in June 1907. For a detailed account of this work vide my "Sāmkhya Philosophy in the Land of the Lamas" in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, new series, Vol. iii, No. 8.

Dr George Bühler, during his explorations of the Brhat-jñāna-koşa in the temple of Persva-nātha at Jesalmir, found in 1873 a Pothi, consisting of 189 ancient palm-leaves showing the characters of the 12th or 13th century, and bearing on the outside corner the title Kamala-fila-tarka

128. The subject-matter of the work begins thus:—
"From *Pradhāna* (the primordial matter or nature) possessed of entire powers all sorts of effects are produced."

(vide Dr. G. Buhler's correspondence with Rai Sarat Chandra Das, Bahadur, C.I.E., published in the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta, Vol. i, part ii, p. x). The roal name of the work, according to Dr. Buhler, is Tarka-sangraha. Now, this Tarkasangraha is nothing but Tattvasangraha of Santa Raksita with the commentary, by Kamala Stla. The introductory part (Mangala) of the Tarka-sangraha, as noticed by Dr. Bühler, runs as follows:—

प्रकृतीश्मेभयातादि [कियया। रहितं चलम्।
कर्मा तत्फलसम्बन्ध यवस्थादिसमाश्रयम्॥
गुण्डविक्रयाजातिसमयायाद्यपाधिमः ।
प्रस्त्रयमारोपिताकारश्रव्यप्रत्ययगोचरम्॥
स्मष्टलचणसंयुक्त प्रमादितयनिश्चितम्।
स्मष्टेश्चपि नांग्रेन मिश्रोभृतापरात्मकस् ॥
स्मंक्राम्मिमनाद्यनं प्रतिविम्नादिमंनिभम् ।
स्मंक्रपश्च सन्दोहनिभृक्तमगतं परैः॥
स्वतन्त्रश्वतिनःसङ्गो जगहितविधित्मया।
स्वन्त्रश्वतिनःसङ्गो स्वगहित्यस्यः॥
स्वन्त्रस्यस्यः जगहित्यस्यः।

The introductory part in the Tattvasamgraha is identical with the above as is evident from the Tibetan version extracted below:—

म्नान्द्रः विश्वास्तरे द्वीत् प्रभावतः ।।

स्वास्त्रः चित्रः प्रमासः स्वास्त्रः च।।

स्वासः प्रद्याद्वासः स्वासः स्वासः स्वासः ।।

स्वासः प्रद्याद्वासः स्वासः स्वासः स्वासः ।।

स्वासः प्रद्याद्वासः स्वासः स्वासः स्वासः ।।

स्वासः प्रदः स्वासः स्वासः स्वासः ।।

स्वासः प्रदः स्वासः स्वासः स्वासः स्वासः ।।

स्वासः प्रदः स्वासः स्वासः स्वासः स्वासः ।।

स्वासः प्रदः स्वासः स्वतः स्वासः स्

The work is divided into 31 chapters, viz.: (1) examination of nature (in Sanskrit: Svabhāva-parīksā, in Tibetan: Ran-b-hinbrtag-pa); (2) examination of the sense-organs (in Sanskrit: Indriya-parīksā, in Tibetan: Dwan-phyug-brtag-pa); (3) examination of both (in Sanskrit: Ubhaya-parīksā, in Tibetan: Gñiska-hrtag-pa); (4) examination of the theory that the world is self-existent (in Sanskrit: Jagat-svabhāva-vāda-parīksā, Tibetan: Hgro-wa-ran-bshin-du-smra wa-brtag-pa): (5) examination of Brahma, the presiding deity of sound (in Sanskrit: Sabda-Brahma-pariksā, in Tibetan: Sgrahi-tshans pa-brtag-pa); (6) examination of the soul (in Sanskrit: Purusa-pariksā, in Tibetan: Skyes-bu-brtag-pa); (7) examination of the Nyava and Vaisesika doctrines of the soul (in Sanskrit: Nyāya-vaisesika-parikalpita-purusa-pariksā, in Tibetan: Rigs-pa-can-dan-byebrag-pas-kun-tu-brtags-pahi-skyes-bu-brtag-pa); (8) examination of the Mimāmsaka doctrine of the soul (in Sanskrit: Mimāmsaka-kalpita-ātma-parīksā, in Tibetan: Spyod-pa-pasrtags-pahi-hdag-hrtag-pa); (9) examination of octrine of the soul (in Sanskrit: Kapila-parikalpita-ātma-pariksā, in Tibetan: Ser-skya-pas-kun-tu-brtags-pahi-bdag-brtagpa); (10) examination of the Digambara Jaina doctrine of the soul (in Sanskrit: Digambara-parikalpita-ātma-pariksā, in Tibetan: Nam-ınkhahi-gos-can-gyis-kun-tu-brtags-pahi-bdagbrtag-pa); (11) examination of the Upanisad-doctrine of the soul (in Sanskrit: Upanisad-kalpita-ātma-parīksā, in Tibetan:

म्बिर्माने म्बिर्मारम्य स्त्राम्य स

U-pa-ni-sa-di-kas-brtage-pahi-hdag-brtag-pa); (12) examination of the Vatsiputra doctrine of the soul (in Sanskrit: Vatsiputrakalpita-ātma-parīksā, in Tibetan: Gnas-mahi-bus-bdag-brtagpa): (13) examination of the permanence of entities (in Sanskrit: Sthira-padartha-pariksa, in Tibetan: Brtan-pahi-dnospo-brtag-pa); (14) examination of the relation between Karma and its effect (in Sanskrit: Karma-phala-sambandhapariksā, in Tibetan: Las-dan-hbras-buhi-hbrel-pa-brtag-pa); (15) examination of the meaning of the word 'substance' (in Sanskrit: Dravya-padārtha-parīksā, in Tibetan: Rdsas-kyi-tshig gi-don-brtag-pa); (16) examination of the meaning of the word quality; (in Sanskrit: Guna-sabdartha-pariksa. in Tibetan: Yon-tan-gyi-tshig-gi-don-brtag-pa); (17) examination of the meaning of the word Karma (in Sanskrit: Karma-śabdartha -Tibetan: Las-kyi-tshig gi-don-brtag-pa); pariksā in examination of the meaning of the word generality or genus (in Sanskrit: Sāmānya-sabdārtha-parīkṣā, in Tibetan: Spyihitshig-gi-don-brtag-pa); (19) examination of the meaning of the words 'generality,' and 'particularity' (in Sanskrit: Sāmānya-visesa-sabdārtha-parīkṣā, in Tibetan: Spyi-dan-bye-brag-gitshig-gi-don-brtag-pa); (20) examination of the meaning of the

> नश्चित्रः स्ट्रियः स्ट्री। वित्रः स्ट्रियः स्ट्रियः स्ट्रीयः स्ट्री। स्ट्रियः स्ट्रियः स्ट्रियः स्ट्रीयः स्ट्री। स्ट्रियः स्ट्रियः स्ट्रीयः स्ट्रीयः स्ट्री। स्ट्रियः स्ट्रियः स्ट्रीयः स्ट्रीयः स्ट्री। स्ट्रियः स्ट्रियः स्ट्रीयः स्ट्री। स्ट्रियः स्ट्रियः स्ट्री।

Dr. Buhler further observes that the first section of the Tarkasamgraha contains देशर-परीचा (examination of God), कपिजकिष्यताता-परीचा (examination of Kapila's doctrine of the soul), चौपनिषदकिष्यताता-परीचा (examination of the soul according to the Upanisads), चित्रभाव-परीचा (examination of permanent entity), etc. The last colophon appears to him to be खत: प्रामाणवाद (examination of the doctrine of self-evidence). These are the very subjects treated in the Tattvasamgraha. So the two works are identical.

word 'co-existent cause' (in Sanskrit: Samavāya-śabdārthaparīksā in Tibetan: Hdu-wahi-tshig-don-brtag-pa); (21) examination of the meaning of the word 'sound' (in Sanskrit: Sabdārtha-parīksā in Tibetan: Sgra-vi-don-brtag-pa): (22) examination of the definition of perception (in Sanskrit: Pratyaks 1-laksana-pariksā, in Tibetan: Mnon-sum gyi-mtshannid-brtag-pa); 23) examination of inference (in Sanskrit: Anumānaparīksā, in Tibetan: Ries-su-dpag-pa-brtag-pa): (24) examination of other kinds of valid knowledge (in Sanskrit: Pramānāntara-parīksā, in Tibetan: Tshad-ma-shan brtag-pa); (25) examination of the doctrine of evolution (in Sanskrit: Vivartavāda-pariksā, in Tibetan: Hgyur-war-smra-wa-brtagpa); (26) examination of the three times (in Sanskrit: Kālatrava-parīksā, in Tibetan: Dus-gsum-brtag-pa); (27) examination of continuity of the world (in Sanskrit: Samsāra-santatipariksā, in Tibetan: Hjig-rten-rgyud-pahi-brtag-pa); (28) examination of external objects (in Sanskrit: Vāhyārtha-parīksā, in Tibetan: Phyi-rol-gyi-don-brtag-pa); (29) examination of S'ruti or Scripture (in Sanskrit: S'ruti-pariksā, in Tibetan: Thos-pa-brtag-pa); (30) examination of self-evidence (in Sanskrit: Svatah-prāmānya-parīksā, in Tibetan: Ran-las-tshad-madrtag-pa); and (31) examination of the soul which sees things beyond the range of senses (in Sanskrit: Anyendriyātītārthaarsana purusa-pariksā, in Tibetan: Gshan-gyi-dwau-po-lashdas-pahi-don-mthon-wa can-gyi-skyes-bu-brtag-pa).

KAMALA S'ILA (ABOUT 750 A.D.).

- 129. Kamala Sīla, also called Kamala Srīla, was a follower of Sānta Rakṣita. He was for some time a Professor of Tantras in Nālandā whence he was (vide Appendix A) invited to Tibet by king Khri-sroń-deu-tsan (728—736 A.D.). While in Tibet he vindicated the religious views of Guru Padma-sambhava and Sānta Rakṣita by defeating and expelling a Chinese monk named Mahāyāna Hoshang. He was of wide fame and the author of the following works:—
- 130. Nyāya-bindu pūrva-pakṣe-samkṣipta, called in Tibetan Rigṣ-paḥi-thigṣ-paḥi-phyogṣ-ṣṇa-ma-mdor-bṛduṣ-pa, a summary of criticisms on the Nyāyabindu of Dnarmakīrti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, She, Folios 106—115. The translation was prepared by the Indian sage

¹ Vide Pag-sam-jon-zang, part 1, p. 112, edited by Sarat Chandra Das, and also the Journal of the Buddhist Text Society of Calcutta, vol. i, part 1, p. 10, and Waddell's Lamaism, p. 31.

² I have consulted the copy brought down by the British Mission to Tibet in 1904.

Visuddha Simha and the interpreter monk of Shu-chen named

Dpal-rtsegs-raksita.

131. Tattva-samgraha-pañjikā, called in Tibetan De-kho-na-ñid-badus-pahi-dkah-hgrel, a commentary on the Tattva-samgraha of Sānta Rakṣita. The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translation of part I of this work in the Tangyur, Mdo, He, Folios 146—400, and part II of it in the Tangyur, Mdo, Ye, Folios 1—385. The translation was prepared by the Indian sage Devendra Bhadra and the interpreter monk Grags-hbyor-ses-rab.

KALYĀŅA RAKŞITA (ABOUT 829 A.D.).

- 132. Kalyāṇa Rakṣita,² called in Tibetan Dge-bsrun, was a great dialectician and teacher of Dharmottarācārya. He flourished during the reign of Mahārāja Dharma Pāla who died in 829 A.D. (Vide Appendix B). He was the author of the undermentioned works ³:—
- 133. Vāhyārtha-siddhi-kārikā, called in Tibetan phyi-rolgyi-don-grub-pa-ces-bya-wahi-tshig-lehur, which signifies memorial verses on the reality of external things. The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze. Folios 202—210. The translation was prepared by the Vaibhāṣika teacher Jina Mitra of Kāśmīra and the Tibetan interpreter-monk Dpal-brtsegs-rakṣita.

134. Śruti-parīkṣā, called in Tibetan Thos-pa-brtag-pahitshig-lehur-byag-pa, which signifies 'memorial verses on the examination of Sruti or verbal testimony.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan trans-

lation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 210-211.

135. Anyāpoha-vicāra-kārikā, called in Tibetan Gshan-la-bṛtag-paḥi-tshig-leḥur-byaṣ-pa, which signifies 'memorial verses on the determination of a thing by the exclusion of its opposites.' The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 211—213.

136. **Tśvara bhażga-kārikā**, called in Tibetan Dwań-phyughjig-pahi-tshig-lehur-byag-pa, which signifies 'memorial verses

1 I have consulted this work in the monastery of Labrang, Sikkim, which I visited in June 1907.

3 I have consulted Kalyana Raksita's works in volume Ze of the

Tangyur lent to me by the India Office, London.

² Vide Taranatha's Ceschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 216—219: and Pag sam-jon-zang, p. 114. The particle 'bsruh' signifies 'protected' and is an equivalent for Sanskrit 'Raksita.' But Schiefner has taken it as an equivalent for "Gupta.' This does not seem to be correct, for the Tibetan equivalent for Gupta is "sbas."

on the refutation of God.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 214-215.

DHARMOTTARĀCĀRYA (ABOUT 847 A.D.).

- Dharmottara I (Ācārva Dharmottara or Dharmottarācārya) called in Tibetan Chos-mehog, was a pupil of Kalyāna Raksita and of Dharmākara Datta of Kāśmīra. He appears to have flourished in Kāśmīra while Vanapāla was reigning in Bengal about 847 A.D. (vide Appendix B), and is mentioned by the Jaina philosophers Mallavadin the author of Dha mottara-tippanaka about 962 A.D. and Ratnaprabha Sūri the famous author of Svādvāda-ratnāvatārikā dated 1181 A.D. Dharmottara was the author of the following works:—
- Nyāya-bindu-tīkā, called in Tibetan Rigs-pahi-thigspahi-rgya-cher-hgre'-wa, a detailed commentary on the Nvavabindu of Dharmakirti. The Sanskrit original of this work was preserved in the Jaina temple of Santinatha, Cambay, and has been published by Professor Peterson in the Bibliotheca Indica series of Calcutta. There exists a Tibetan translation 4 in the Tangvur, Mdo. She, Folios 43-106. The translation was prepared by the Indian sage Jñāna-garbha and an interpreter-monk of Shu-chen named Dharmaloka, and afterwards recast by the Indian sage Sumati-kirti and the Tibetan interpreter-monk Bloldan-ses-rab. Nyāvabindu-tīkā begins thus:—"Sugata, the conqueror of lust, etc., has overcome this world, the source of series of evils beginning with birth: may his words dispelling the darkness of our mind attain glory." 6

1 Vide Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 225;

and Pag-sam-jon-zang, p. 114.

The Jaina logician Mallavad n (q. 7.) wrote a gloss called Dharmottara-tippanaka on Dharmottarācārya's Nyāyabindutīkā. The year 884 in which Mallavadin flourished corresponds to 827 A.D. or 962 A.D. according as we take it to refer to Vikraina-samvat or Saku-samvat. On one supposition Mallavadin was a contemporary of Dharmottara and on the other he flourished a century later.

³ चन भर्मोत्तरानसारी प्राप्त। प्रयोजनमादिवाचीन साचादाख्यायते रति न चमे। (Syādvāda-ratnāvatārikā, p. 10, Jaina yasovijaya series of Benares).

⁴ I have consulted the copy brought down by the British Mission to Tibet during 1904. The Tibetan version has also been edited by F. J. Sherbatski and printed in Russia.

⁵ जयन्ति जातिव्यसम्प्रदश्च प्रस्तृतिन्तेरोर्जगतो विनेतुः । रामाद्यरावेः सम्बन्धः वाची मनसमस्यानवमादधानाः ॥ (Nyāyabindutīkā, Chap. I).

Pramāna-pariksā, called in Tibetan Tshad-ma-brtagpa, signifying 'an examination of Pramana or the sources of valid knowledge.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Fo.ios 215-237, as well as Folios 238-253. translation was prepared by monk Blo-ldan-ses-rab.

Apoha-nāma-prakaraņa, called in Tibetan Gshan-selwa, signifying 'a treatise on the determination of a thing by the exclusion of its opposites.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation 2 in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 254-266. The translation was prepared by the Kasmirian Pandita Bhagyaraja and the interpreter-monk Blo-ldan-ses-rab, in the incomparable city of Kāśmira.

141. Pāra-loka-siddhi, called in Tibetan Hjig-rten-pha-rolgrub-pa, signifying 'proof of the world beyond.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation 3 in the Tangyur, Mdo, Ze. Folios 266-270. The translation was prepared by the great Pandita Bhagyaraja and the interpreter-monk Tshab ñi-ma grags during the lifetime of Sri Harsa Deva (king of Kāśmira, 1089-1101 A.D.) in the great incomparable city of Kāśmīra.

The work begins thus:—

"Some say that the world beyond is possessed of the characteristics of a complete separation from the link of consciousness which began from before birth and continued after death, etc "

- Ksana bhanga-siddhi, called in Tibetan Skal-cig-mahjig-pa-grub-pa, signifying proof of the momentariness of things.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 270-282. The translation was prepared by the Indian sage Bhāgyarāja and the interpreter-monk Blo-ldan-sesrab.
- Pramāna-viniścaya-tīkā, called in Tibetan Tshad-marnam-nes-kyi-tīkā, which is a commentary on the Pramāna-viniścava of Dharmakirti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Dse, folio 346 f, and We, Folios 1-188. translation was prepared by the Kāśmirian Pandita Parahita Bhadra and the Tibetan interpreter Blo-ldan-ses-rab in the model city of Kāśmīra. In the concluding lines of the work

¹ I have consulted the India Office copy.

² I have consulted the India Office copy.

³ I have consulted the India Office copy.

⁴ I have consulted the India Office copy. 5 I have consulted the India Office copy

Dharmottara, the author of it, is described as "the excellent subduer of bad disputants (quibblers)."

MUKTĀ-KUMBHA (AFTER 847 A.D.).

- 144. Muktā-kumbha,² called in Tibetan Mu-tig-bum-pa, was the author of a work called Kṣṇa-bhaṅga-siddhi-vyākhyā, which is a commentary on Dharmottarācārya's Kṣṇa-bhanga-siddhi. Muktā-kumbha must have flourished after 847 A.D., when Dharmottara lived.
- 145. The Kṣaṇa bhaṅga-siddhi-vyākhyā is called in Tibetan Skal-eig-ma-hjig-grub-paḥi-ṛnam-hgrel. The Sanskrit original of the work appears to be lost, but a Tibetan translation is embodied in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 282—301. This version was prepared by the Indian sage Vināyaka and the interpreter-monk Grags-hbyor-ses-rab.

ARCATA (AFTER 847 A.D.).

146. Guṇa-ratna Sūri,* the famous Jaina author of the Ṣaddarśana-samuccaya-vṛtti, who lived in 1409 A D., mentions the Tarkaṭīkā of Arcaṭa.⁵ Arcaṭa is also mentioned by the Jaina philosopher Ratnaprabha Sūri,⁶ the well-known author of Syādvādaratnāvatarikā, dated 1181 A D. In the Jaina Nyā-yāvatāra-vivṛti ⁷ it appears that Arcaṭa criticised Dharmottarācārya who lived about 847 A.D. Roughly speaking he flourished in the 9th century A.D.

Areata was the author of the following work on Logic:-

147. Hetu bindu-vivarana, called in Tibetan Gtan-tshigs-thigs-paḥi-hgrel-wa, being a commentary on the Hetu-bindu of Dharmakirti. The Sanskrit original of this work appears to be

। श्रें न'र्नेन केंश अर्केन हेंना नी प्रतादिस्र अर्केन । (Tangyur, Mdo,

We, Folios 188).

² The name Muktākumbha is restored from Tibetan.

- 5 I have consulted the work belonging to the India Office, London.
 4 Vide Satis Chandra Vidyabhusana's Jaina Logic under "Gunarat
- 4 Vide Satis Chandra Vidyabhusana's Jaina Logic under "Gunaratna Sūri."
- $^{5}\ Vide$ Dr. Suali's edition of the Saddar'ana-samuccaya-vrtti, chapter on Bauddha darana.
- ⁶ অর্থতন্ত্র গুলহাত্ব। হত সিভাবনা স্থানি: স্থাজনবন্দ্রা আয়ো...। (Syādvāda-ratnāvatārikā, chap. i, p. 17, published in Jaina Yaśovijaya granthamālā of Benares).

7 Vide Satis Chandra Vidyabhusana's edition of the Nyāyāvatāra with vivrti which is being published by the Indian Research Society of

Calcutta.

lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, She, Folios 205-375. It is divided into four chapters treating respectively of (1) Identity (in Tibetan: Ran-bshin, and in Sanskrit Svabhāva); (2) Effect (in Tibetan: hbras-bu, and in Sanskrit: Kārya); (3) Non-perception (in Tibetan: Mi-dmigs-pa, and in Sanskrit: Anupalabdhi); and (4) Explanation of Six Characteristics (in Tibetan: Mtshan-nid-drug-bsa-l-pa, and in Sanskrit: Ṣad-lakṣaṇa-vyākhyā). In the beginning of the work it is stated that Arcaṭa was a Brāhmaṇa, and from the concluding part it appears that he lived in Kāśmīra. The Tibetan version ends thus:—

"In the city of Kāśmīra, the pith of Jambudvīpa, the commentary (on the work) of Dharmakīrti, who was the best of sages, was translated. From this translation of Pramāṇa the pith of holy doctrines, let the unlearned derive wisdom." 2

Dānasīla (about 899 A.D.).

- 148. Dānasīla, also called Dānasīla, was born in Kāsmīra about 899 A.D., when Mahī Pāla was reigning in Bengal. He was a contemporary of Parahita Bhadra, Jina Mitra, Salvajña Deva and Tilopa. He visited Tibet and co-operated in the propaganda of the translations of Sanskrit books into Tibetan. He was the author of the following work on Logic:—
- 149. Pustaka-pāṭhopāya, called in Tibetan Glegs-bam-bklag-paḥi-thabs, signifying the method of reading books. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folio 270. The translation was prepared by the author himself.

(Tangyur, Mdo, She, folio 375).

¹ The volume She, containing this work, was brought down by the British Mission to Tibet in 1904. I borrowed it from the Government of India.

⁸ Vide Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 225—226; and Pag-sam-jon-zang, p. xlv1.

I have consulted the India Office copy.

JINA MITRA (ABOUT 899 A.D.).

- 150. Jina Mitra was a native of Kāśmīra who, together with Sarvajña Deva, Dāna-śila and others, visited Tibet and helped the Tibetans in the work of translating Sanskrit books into Tibetan. Jina Mitra lived about 899 A.D., when his contemporary kings Khri-ral (or Ral-pa-can) of Tibet and Mahī Pala of Bengal, died. He wrote the undermentioned work on Logic:—
- 151. Nyāya-bindu-piṇdārtha, called in Tibetan Rigs-pahithigs-pahi-don-bedus-pa, which contains the purport of Dharmakirti's Nyāyabındu. The Sanskrit original of this work is lost, but there exists a Tibetan translation 3 in the Tangyur, Mdo, She, Folios 115—116. The translation was prepared by the Indian teacher Surendrabodhi, and the interpreter of Shuchen, named Vande-ye-seg-sede.

PRAJÑĀKARA GUPTA (ABOUT 940 A.D.).

- 152. Prajñākara Gupta, called in Tibetan Ses-rab-hbyungnas-sbas, lived at the time of Maha Pāla, who died in 940 AD. He was a lay devotee and quite different from Prajñākara Mati, who was a monk and keeper of the southern gate of the university of Vikrama-silā during the reign of Canaka in 983 A.D. (Vide Appendix C). Pranjñākara Gupta was the author of the following works:—
- 153. Pramāṇa-vārtikālaṅkāra, called in Tibetan Tshad-marnam-hgrel-gyi-rgyan, which is a commentary on the Pramāṇa-vārtika of Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation be which is divided into two parts. The first part extends over Folios 1—352 of volume Te, and the second part Folios 1—328 of volume She of the Tangyur, section Mdo. The translation was prepared by the great Kāśmīrian Paṇḍita Bhāgya-rāja and the Tibetan interpreter Blo-ldan-seṣ-rab. Subsequently, it was looked through by Sumati and the interpreter Blo-ldan-seṣ-rab. The translation has the advantage of having been assisted by numerous sages of the great monastery of Vikramasilā in Middle India,

¹ Vide Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 226; and Pag-sam-jon-zang, pp. xcvi, 115.

² Vide Csoma de Koros's Tibetan Grammar, p. 183.

³ I have consulted the India Office copy.

Vide Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 230, 235; and Pag-sam-jon-zang, p. 116.

⁵ I have consulted this work in the monastery of Labrang in Sikkim, which I visited in June, 1907.

under the supervision of the great wise Paṇḍita S'rī S'unayaśrī Mitra and also of the wise Paṇḍita Kumāraśrī of the model

city of Kāśmira.

154. Sahāvalambha-niścaya, called in Tibetan Lhan-cigdmigs-pa-nes-pa, signifying "the ascertainment of objects and their knowledge arising together." The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 301-308. The translation was prepared by the Nepalese Paṇḍita Santi Bhadra and the Tibetan interpreter-monk Sākya-hoḍ of the village of Sen-dkar in the province of Hbro (Do).

ACARYA JETARI (940-980 A.D.).

155. Jetāri ² or Ācārya Jetāri, called in Tibetan Dgra-las-rgyal-wa, was born of a Brāhmaṇa family. His father, Garbha-pāda, lived in Vārendra at the court of Rājā Sanātana, who was a vassal to the Pala kings of Magadha. Being expelled by his kinsmen, Jetāri became a Buddhist devotee and worshipped Mañjuśrī, by whose grace he became a perfect master of sciences. He received from king Maha Pāla the royal diploma of Paṇḍita of the university of Vikramaśilā.

156. The famous Dīpankara or Srījñāna Atisa is said, when very young, to have learnt five minor sciences from Jetāri. Maha Pāla reigned up to 940 A.D. (vide Appendix B), and Dīpankara was born in 980 A.D. Their contemporary Jetāri.

must have lived between those dates.

He was the author of the following works 4 on Logic :-

157. Hetu-tattva-upadeśa, called in Tibetan Gtan-tshigs-kyi-de-kho-na-ñid-bstan-pa, signifying "instruction on the real nature of the middle term in a syllogism." The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 344—354. The translation was prepared by the Indian sage Pandita Kumārakalasa and the Tibetan interpreter-monk Sākya-hod.

158. Dharma-dharmi-viniścaya, called in Tibetan Chos-danchos-can-gtan-la-dwab-pa, signifying "determination of the minor and major terms." The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the

Tangyur, Mdo, Ze, Folios 354-359.

4 The Volume Ze, of the Tangyur, Mdo, containing Jetāri's works, was

lent to me by the India Office, London.

I I have consulted the India Office copy.

² Vide Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 230—233; and Pag-sam-jon-zang, p. 116.

³ Vide the "Journal" of the Buddhist Text Society of Calcutta, vol. i, part i, p. 8.

159. Bālāvatāra-tarka, called in Tibetan Bis wa-hjug-paḥirtog-ge, signifying "children's introduction to Logic." The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 359—372. The translation was prepared by the Indian sage Nāga Rakṣita and the Tibetan interpreter of the province of Sum-pa (in Amdo) named Dpal-uchog-dan-poḥi-rdo-rje. The work begins thus:—

"Who by the lustre of his sermon has completely dispersed and cleared the veil of the gloom of ignorance, who is a single lamp to three worlds—may that Bhagavān long remain victorious." It consists of three chapters named respectively: (1) Perception; (2) Inference for one's own self; and (3) Inference for the sake of others.

JINA (ABOUT 983 A.D.).

1°0. Jina, called in Tibetan Egyal-wa-can, was the author of the following work:—

Pramaņa-vārtīkālankāra-tīkā, called in Tibetan Tshad-marnam-hgrel gyi rgyan-gyi-hgrel-bśad, a voluminous work, the Tibetan version of which occupies volumes De and Ne of the Tangyur, section Mdo. This version was prepared by Pandita Dīpankara of Vikramaśilā (who arrived in Tibet in 1040 A.D.) and the Tibetan interpreter, Byan-chub-śes-rab of Shan-shun.

161. Jina, the author of the original work, is probably the same as Jina Bhadra of Konkana.² who was a contemporary of Vāgīśvarakīrti, about 983 A.D. (Vide Appendix C).

JÑĀNA-ŚRĪ (ABOUT 983 A.D.).

1°2. Jñāna-śrī or rather Jñāna-śrī Mitra ⁸ (probably the same as Jñāna-śrī Bhadra, who worked in Kāśmīra), was born in Gauda. He was at first admitted into the Srāvaka school of

चारानीश्वः नाश्चरः रचः देशः स्टानीश्वः नाहिनः स्त्रा।। श्वः नाश्वः नाश्चरः त्रः देशः सरः नेत्वाः सः स्टानीश्वः ।। सः नाश्चरः नाश्चरः त्रः देशः सरः नेत्वाः सः स्वाः ।। सः नाश्चरः नाश्चरः रचः देशः सरः नेत्वाः सः स्वाः।।

(Tangyur, Mdo, Ze, folio 359).

Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 235.
 Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 235—242; and Pagsam-jon-zang, pp. 117—120.

Buddhism, but afterwards imbibed faith in the Mahāyāna. Dīpankara or Srī-jñāna Atisa (born in 980 A.D.) is said to have been much indebted to him. Jñāna-śrī Mitra was appointed a gate-keeper of the university of Vikramasilā by Canaka who reigned in Magadha up to 983 A.D. (Vide Appendices B and C). The Hindu philosopher Mādhavācārya in the 14th century quotes ¹ Jñāna-śrī, who is perhaps the same as Jñāna-śrī Mitra. He was the author of the following works on Logic:—

163. Pramāṇa-viniścaya-tīkā,² called in Tibetan Tshaḍ-marnam-par-neṣ-paḥi-hgrel-b̞śaḍ, which is a commentary on the Pramāṇa-viniścaya of Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Dse, Folios 1—346, and We, Folios 188—322. The translation was prepared by the author 8 himself with the co-operation of the interpreter-monk Choṣ-kyi-bṛtson-bgrus.

164. Kārya-kāraṇa bhāva-siddhi, called in Tibetan Egyudan-hbras-buḥi--no-wo-grub-pa, signifying cestablishment of the relation of cause and effect. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo Ze, Folios 413—418. The translation was prepared by the great Indian sage Kumāra Kalasa and the interpreter-monk Sākya-hod. Subsequently, it was retouched and published by the Nepalese Paṇḍita Ananta-śrī and the interpreter-monk aforementioned.

165. Tarka-bhāṣā, called in Tibetan Rtog-gehi-skad, signifying 'technicalities of logic.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation ⁶ in

तद्क्षं ज्ञानत्रिया

यत् सत् तत् सिविकं यथा जलभरः सम्मख् भावा चर्मी। सत्तामितिरहार्थकमंति मितेः सिहेषु सिदा न सा॥ नायोकेव विभाग्यथा परक्षतेनापि क्रियादिभंदेत्। देभापि जलभक्तसम्मतिरतः साधे च वित्रास्ति॥

² I have consulted the Tibetan version of this work in the monastery of Labrang in Sikkim.

3 The author of the Pramāna-viniścaya-tīkā is called Jūanaśrī Bhadra and also simply Jūāna-śrī. He is stated in the Colophon of the work to have been a native of Kūśmīra. Vide Satis Chandra Vidyabhusana's "Indian Logic as preserved in Tibet, No. 3" in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, New Series, vol. iii, No. 7, 1907. Jūāna-śrī Mitra, of Cauda, seems to be the same as Jūāna-śrī Bhadra, of Kūśmīra, who may have left Gauda to live in Kūśmīra.

4 The author of this work is named Jaana-śri Mitra.

⁵ I have consulted the India Office copy.

6 I have consulted the India Office copy.

¹ Vide the Sarvadarsana-samgraha, chapter on Bauddha-darsana:-

the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 373—413. The translation was prepared by the interpreter-monk Dpal-Idan-blo-gros-brtan-pa. The work is divided into three chapters named respectively: (1) Perception; (2) Inference for one's own self; and (3) Inference for the sake of others. It begins thus:—"Bowing down to the teacher, the lord of the world, I elucidate Tarkabhāṣā (the technicalities of logic) for the sake of introducing children of small intellect to the system of Dharmakīrti."

RATNA VAJRA (ABOUT 983 A.D.).

- Ratnavajra," called in Tibetan Rin-chen-rdo-rje, was born in a Brāhmana family in Kāśmīra. His ancestors were deerly versed in the sastra of the Tirthikas. His father, Hari Bhadra, was the first convert to Buddhism in his family. Ratnavajra, who was an upāsaka (lay devotee), studied by himself up to the 36th year of his life all the Buddhist sutras, mantras, and sciences. After this he came to Magadha and Vajrāsana (Buddha-Gayā) where he beheld the face of Cakra-samvara, Vajravarāhī and many other deities, by whose grace he completely mastered the Buddhist sastras. He received the royal diploma of the university of Vikramasila and was appointed a gate-keeper of the university (vide Appendix C). Afterwards he came back to Kāśmīra, whence he went through Udyāna (Kabul) to Tibet, where he was known by the name of Acarya. He flourished during the reign of Canaka about 483 A.D. (Vide Appendices B and C). He was the author of the following work:-
- 167. Yukti-prayoga, called in Tibetan Rigs-paḥi-sbyor-wa, signifying "application of reasoning." The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 372—373. The

(Tangyur, Mdo, Ze, folio 373).

ट्रेंच चोट्ट, स्नेट, ब्रेट्ट, च्यामायः च्री। ट्रेश्यः च्री, जीचोशः प्रकेट, त्रीचोशः प्रकेट, त्रीट ।। च्रीशः प्राप्ते ट्रेंचा लेटशः क्षितः प्राप्ते स्था। च्रीशः प्राप्ते ट्रेंचा हुंगः देवटः चर्टेट, ब्रह्मा।

 $^{^2}$ Vide Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 240. $^{\delta}$ I have consulted the Tibotan version in the possession of the India Office, London.

translation was prepared by the Indian sage Srī Subhūti-sānta and the interpreter-monk of Shu-chen, named Tin-ne-hdsin-bzan-po.

RATNĀKARA S'ĀNTI (ABOUT 983 A.D.).

- 168. Ratnākara S'ānti ¹ was known to the Tibetans as Ācārya S'ānti or simply S'āntipa. He was ordained in the order of the Sarvāstivāda school of Odantapura, and learnt the Sūtra and Tantra at Vikramasilā from Jetāri, Ratna-kīrti ² and others. Thereafter he was appointed by king Canaka (who died in 983 A.D.) to be a gate-keeper of the University of Vikramasilā (vide Appendix C'), where he defeated the Tīrthika disputants. At the invitation of the king of Ceylon he visited that island where he spread the Buddhist doctrine. He was the author of a work on Chanda (prosody) called Chando-ratnākara³ and of the following works ³ on Logia:—
- 169. Vijāapti-mātra siddhi, called in Tibetan Rnam-par-rig-pa-tsam-ñid-du-grub-pa, signifying 'establishment of a mere communication of knowledge.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 335—338. 'The translation was prepared by the Nepalese Paṇḍita Santi Bhadra, and the Tibetan interpreter-monk Sākya-hoḍ of the province of Hbro (Þo). Subsequently, it was published by the same Paṇḍita and Klog-skya-ścṣ-rab-bṛtsegṣ.

1.0. Antar vyāpti, be called in Tibetan Nan-gi-khyab-pa,

 $^{-1}$ Vide Taranatha's Coschichte dos Buddhismus von Schiefner, pp. 234, 235 and Pag-sam-jon-zang, pp. 117, ex. The Tibetan equivalent for the

name Ratnīkara Santi 18 रैंद देंद द्वुद मात्रहा है न

² This Ratnakīrti is different from the sage of that name who was patronised by King Vimala Candra about 650 A.D. (vide Tūrānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 172, 174, and my ciscussion in art. 108 under the head Vinīta Deva in the Buddhist Logic). This earlier Ratnakīrti, known through a commentary on the Madhyamakāvatāra, wrote Kalyāṇa-kāṇḍa and Dharmavini-caya embodied in the Tangyur Mdo, Ku. The same Ratnakīrti was perhaps the author of Apohasiddhi and K-aṇabhaṅgasiddhi which are being published in the Bibliotheca Indica series of Calcutta under the editorship of M. M. Hara Prasād Sāstri. Two other works called Sthira-dūsaṇa and Vicitrādvaita-siddhi are ascribed to him.

3 For an account of the Chandoratnākara see Satischandra Vidyabhi sana's "Sanskrit works on Literature, Granmar, Rhetoric and Lexicography as preserved in Tibet" in J. A. S. B., new series, vol. III, no. 2, 1907.

4 The volume Ze of the Tangyur, section Mdo, containing Ratnakara Santi's works, was lent to me by the India Office, London.

⁵ The Sanskrit original of 'Antarvyāpti' or more fully 'Antarvyāpti-

YAMĀRI. 141

signifying 'internal inseparable connection.' It is embodied in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 338—344. The translation was prepared by the Indian sage Kumāra Kalasa and the interpreter-monk Sākya-hod.

VAK-PRAJA (ABOUT 983 A.D.).

171. In the Tangyur, Mdo, Ze. Folios 201—202 there is the Tibetan version of the Sarvajña-siddhi-kārikā, called in Tibetan Thams-cad-ukhyen-pa-grub-pahi-tshig-lehur-byas-pa, signifying memorial verses on the attainment of omniscience. The author of this work is named in Tibetan Nag-hbans which may be restored in Sanskrit as Vāk-praja. If he is the same as Vāgīś-vara-kīrti, he must have lived about 983 A.D. (vide Appendix C).

YAMARI (ABOUT 1050 A.D.).

- 17.2. Yamāri was specially versed in Grammar and Logic. But he was very poor. Once, being unable to support his family and children, he came to Vajrāsana (Buddha-Gayā). There he related his poverty to a Yogin, who replied: "You Pandits despise Yogins and do not solicit dharma from them, hence this has come to pass." Saying this, he uttered the Vasudhara benediction in virtue of which Yamāri rose to opulence. He afterwards received the royal diploma of the university of Vikramasılā. He lived during the time of Naya Pāla who died in 1050 A.D. (vide Appendix B). He was the author of the following work:—
- 173. Pramāṇa-vārtikālankāra-tīkā, called in Tibetan Tshal-ma-rnam-harel-rgyan-gyi-harel-báad, which is an annotation on the Pramāṇa-vārtikālankāra of Prajñākara Gupta. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a very voluminous Tibetan translation which covers volumes Be, Me, and Tse of the Tangyur, Mdo. The translation was prepared by Pandita Sumati and the interpreter Blo-

samarthana' has recently been recovered from Nepal by M. M. Hara Prasad Sastri, M.A., of Calcutta, and is deposited in the Library of the Asiatic Society of Bengal. It begins thus:— इस सत्तमधिकयाकारिलं तद्तिस्त्रतायोगात्। तस क्रमयौगपदाध्यां याप्तं परस्पर्यवस्त्रद्वत्त्वताद्वयाः। प्रकाराकारेण करणास्थावात्। It ends thus:— सन्तर्योग्पमध्वं समाप्तिति। क्रतिरिथं ब्लाकर्णानिपादानाम्॥

¹ I have consulted the copy belonging to the India Office, London.

² Vide Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 247, 253.

Idan-ses-rab in the monastery of Sñe-than near Lhasa. The volume Be ends thus:—" From the immeasurable merit acquired by me by composing this regular annotation, may the world, subduing its adversary death, obtain the indestructible and perfected Nirvāṇa." ¹

S'ANKARĀNANDA (ABOUT (1050 A.D.).

- 174. Sankarānanda,² called in Tibetan Bde-byed-dgah-wa, was born in a Brāhmaṇa family in Kāśmīra. He was learned in all sciences, and was above all an expert in Logic. He intended to write an original work on Logic refuting Dharmakīrti, but in a dream he was told by Mañjaśrī: "Since Dharmakīrti is an Ārya (a Buddhist monk), one cannot refute him, and if thou seest mistake in him, it is the mistake of thine own understanding." Thereupon Sankarānanda repented and composed a commentary on Dharmakīrti's Pramāṇa-vārtika in seven chapters. He flourished during the time of Naya Pāla, who reigned until 1050 A.D. He was the author of the following works on Logic:—
- 175. Pramāṇa-vārtika-ṭīkā, called in Tibetan Tsha-l-ma-rnam-hgrel-gyi-hgrel-bśad, being an annotation on the Pramāṇa-vārtika of Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation which covers volumes Pe and Phe of the Tangyur, Mdo.
- 176. Sambandha-parīkṣānusāra, called in Tibetan Hbrel-pabrtag-pahi-rjes-su-hbran-wa, which is a commentary on the
 - क्तःयक्षेत्रहेणाः ५६ के मुक्षः यः यहा। यहाँ द्रावित के द्रावित के स्वावित के

(Tangyur, Mdo, Be, folio 303).

² Vide Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 247, 349; and Pa-sam-jon-zang, pp. 107, 120.

5 Some maintain that Sankarananda was a personal pupil of Dharmakirti. On this point Lama Taranatha observes:—"The Brahmana Sankarananda appeared at a much later time, and to call him a personal pupil of Dharmakirti would be a great confusion."—Taranatha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, p. 188.

4 I have consulted this work in the monastery of Labrang, in Sikkim,

in 1907.

Sambandha-parīkṣā of Dharmakīrti. The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 24—39. The translation was prepared by the great Indian Paṇḍita Parahita, and the Tibetan interpreter-monk Dgah-wahi rdo-rje.

The work begins thus:

"By whom connection with the world has been renounced, in whom there are no "I" and "mine," who is called free from concerns—to that Omniscient One I bow down." 2

177. Apohasiddhi, called in Tibetan Sel-wa-grub-pa, signifying 'establishment of a thing by the exclusion of its opposites.' The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation s in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 308—334. The translation was prepared by the Kāśmīrian Paṇḍita Manoratha and the Tibetan interpreter Blodan-śeṣ-rab in the incomparable city of Kāśmīra.

The work opens thus:-

"The Omniscient One who is free from all mistakes and who looks to the interests of living beings in all times, saluting him and relying on his mercy, I elucidate the puzzle of 'self' and 'others' connected with the doctrine of Apoha." 4

(Tangyur, Mdo, Ze, folio 24).

(Tangyur, Mdo, Ze, folio 308).

¹ I have consulted the Tibetan version in the possession of India Office, London.

गुन्नसिंभत्वेत्यः सुनात्रक्तात्।। म्बाटः वहेन् सेन्यः स्वन्त्रानीः से।। वर्षो चः चन्त्रान्यः स्वन्तानीः से।। गुन्नसिंभत्वेत्यः सुन्यः सुन्यः स्व।।

³ I have consulted the India Office copy.

यद्गामिव्यस्य दुर्श्वास्य प्रमास्य प्रमास्य प्रमा। यद्गामिव्यस्य द्वास्य स्थान स्था

178. Pratibandha-siddhi, called in Tibetan Hbrel-pa-grubpa, signifying "establishment of the causal connection." The Sanskrit original of this work appears to be lost, but there exists a Tibetan translation in the Tangyur, Mdo, Ze, Folios 334—335. The translation was prepared by Paṇḍita Bhāgyarāja and the interpreter Blo-Idan-śeṣ-rab

[!] I have consulted the India Office copy.

APPENDIX A.

THE UNIVERSITY OF NALANDA.

(About $300-850 \ A.D.$).

Nālandā was a village which is identified with modern Baragaon, 7 miles north of Rajgir, in Behar. Though occasionally mentioned in the Pāli literature, Nālandā was not of great importance before the rise of the Mahayana at the beginning of the Christian era. Nāgārjuna, about 300 A.D., and Ārva Deva. about 320 A.D., were the earliest scholars to take interest in the educational institution at that village. A Brahmana named Suvisnu, a contemporary of Nagarjuna, is said to have established 108 temples there in order that the Abhidharma of the Mahāvāna might not decline. About 400 A.D., the Chinese pilgrim, Fahian. visited this place, which he calls "the village of Nalo." He saw there a tower which had been erected on the spot where Sāriputra, the right-hand disciple of Buddha, had entered Nirvana. Early in the 7th century A.D., another Chinese pilgrim, the famous Hwen-thsang, visited Nālandā and halted 4 there 15 months to study the Sanskrit language under Sīlabhadra. According to him b the site of Nālandā was originally a mango garden which was bought by 500 merchants at a cost of ten crores of gold pieces and given to Buddha.6 After the Nirvana of Buddha, five kings, named Sakraditya Buddha Gupta, Tathāgata Gupta, Bālāditya, and Vajra, built five Sanghārāma or monasteries at Nālandā. A king of Central India established another magnificent monastery, and began to build round these edifices a high wall with one gate. A long succession of kings continued the work of building, using all the skill of the sculptor, till at the time of Hwen-thsang in 637 A.D. the whole was "truly marvellous to behold." In the estab-

¹ Vide Cunningham's Ancient Geography of India, p. 468.

² Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 70—86.

⁸ Vide Beal's Fa-hian, p. 111

⁴ Vide Cunningham's Ancient Geography of India, p. x.

⁵ Vide Beal's Buddhist Records of the Western World, vol. ii, pp. 168-170.

⁶ It must have been given to a Buddhist saint of a later age and not to Buddha himself.

lishment were some thousands of monks, all men of great ability and learning. They were very strict in observing the rules of Vinaya, and were looked up to as models by all India. Learning and discussing they found the day too short, day and night they admonished each other, juniors and seniors mutually helping to perfection. Learned men from different cities came to Nalanda to acquire renown, and some persons even usurped the name of Nālandā students in order that they might be received everywhere with honour. "Of those from abroad who wished to enter the schools of discussion, the majority, beaten by the difficulties of the problems, withdrew; and those who were deeply versed in old and modern learning were admitted, only two or three out of ten succeeding." Hwen-thsang mentions some celebrated men of Nālandā, such as Dharmapāla and Candrapāla, Gunamati and Sthiramati,2 Prabhāmitra and Jinamitra, and Jñānacandra and Sīlabhadra.

Another Chinese pilgrim named I-tsing, who resided in Nalandā for ten years (probably 675—685 A.D.), says that there were eight halls and 300 apartments in the monastery of Nālandā with more than 3,000 resident monks. The lands in its possession contained more than 200 villages which had been bestowed

upon the monastery by kings of different generations.8

Nālandā assumed the character of a university from about 450 A.D. Bālāditya, king of Magadha, who built a monastery at Nālandā, was a contemporary of the Hun king Mihirakula. who reigned first in Sākala and afterwards in Kāśmīra. Now Mihirakula began his reign in 515 A.D., and his contemporary, Bālāditya, must also have lived about that time. three predecessors of Bālāditya who built monasteries at Nālanda. Of them, the earliest, named S'akraditya, must have reigned about 450 A.D. if we suppose 25 years as the average duration of the reign of each of them. The year 450 A.D. is then the earliest limit which we can roughly assign to the royal recognition of Nālandā. The latest limit which we know with certainty is 750 A.D., when Kamalasila (q. v.) was the professor of Tantras at Nālandā. But as we read in the accounts of Vikramasilā that there was for some time an intercourse between that university

Vide Watters' "On Yuan Chwang," vol. ii, pp. 164—165.
 This Sthiramati seemed to be the one mentioned by I-tsing (vide) Takakusu, p. 181). He flourished after Asanga and Vasubandhu.

Vide Takakusu's I-tsing, pp xxxiii. 65 and 154.
 Vide Watters' "On Yuan Chwang," vol. i, p. 289.

Takakusu, in his "Paramartha's Life of Vasubandhu," published in the "Journal" of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, January 1905, maintains that Baladitya came to the throne in 481 A.D., but this statement is by no means final. The date (452-480 A.D.) of Vikramāditya, Bālādītya's father, is also open to dispute.

and Nālandā, we may suppose that the latter continued to exist

approximately until 850 A.D.

According to Tibetan accounts the quarter in which the Nālandā University, with its grand library, was located, was called Dharmagañja (Piety Mart). It consisted of three grand buildings called Ratnasagara, Ratnodadhi, and Ratnaranjaka, respectively. In Ratnodadhi, which was nine-storeyed, there were the sacred scripts called Prajñāpāramitā-sūtra, and Tāntrik works such as Samāja-guhya, etc. After the Turuska raiders had made incursions in Nalanda, the temples and Caityas there were repaired by a sage named Mudita Bhadra. Soon after this, Kukutasiddha, minister of the king of Magadha, erected a temple at Nālandā, and while a religious sermon was being delivered there, two very indigent Tirthika mendicants appeared. Some naughty young novice-monks in disdain threw washing-water on them. This made them very angry. After propitiating the sun for 12 years, they performed a yajña, firesacrifice and threw living embers and ashes from the sacrificial pit into the Buddhist temples, etc. This produced a great conflagration which consumed Ratnodadhi. It is, however, said that many of the Buddhist scriptures were saved by water which leaked through the sacred volumes of Prajnaparamitasūtra and Tantra.

¹ Vide Pag-sam jon-zang, edited in the original Tibetan by Rai Sarat Chandra Das, Bahadur, C.I.E., at Calcutta, p. 92.

APPENDIX B.

A LIST OF KINGS OF THE PALA DYNASTY OF BENGAL AND BEHAR.

(From Tibetan sources).

In the Tibetan books, such as Pag-sam-jon-zang, Lama Taranatha's Chos-byun, etc., we find a short account of the kings of the Pala dynasty of Bengal. Go Pala, the founder of the dynasty, lived principally in Pundra-vardhana. His successor, Deva Pāla, annexed Vārendra to his kingdom. Deva Pāla's grandson, Dharma Pala, conquered Magadha and annexed it to Bengal. Dharma Pāla's power is said to have extended in the east to the ocean, in the west to Delhi, in the north to Jalandhara, and in the south to the Vindhya ranges. It is stated that during his reign Santa Raksita died. Now Santa Raksita visited Tibet during the reign of Thi-srong-deu-tsan in 749 A.D., and worked there for 13 years, that is, till 762 A.D. His death must therefore have taken place after 762 A.D. Dipankara Srijnana, alias Atisa, High-priest of Vikramasilā, who was a contemporary of king Naya Pāla of Magadha, visited Tibet in company with Nag-tsho-lotsava in 1040 A.D. during the reign of Lhatsun-byan-chub, son of Lha-lama-ye-seg-hod, who held his court at Tholing in Nari. These facts throw a good deal of light on the dates of the Pāla kings.2 It is further stated that the death of Mahi Pāla is exactly synchronous with that of the Tibetan king Khri-ral. Now Khri-ral (or Ral-pa-can) died in This fixes the date of the death of Mahi Pala. 899 A.D.⁸ As the period of reign of each of the kings that preceded and succeeded Mahi Pāla is definitely stated by Lama Tārānātha, and also by the author of the Pag-sam-jon-zang, there is no difficulty in ascertaining the dates of the Pala kings. Proceeding in this way, we can fix the dates as follows:—

| 1. | Go Pāla | • • | 660705 | A.D. |
|----|-----------|-----|-------------|------|
| 2. | Deva Pāla | • • | 705—753 | A.D. |

¹ Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp 202 -252; and Pag-sam-jon-zang, edited by Rai Sarat Chandra Das, Baha-

dur, C.I E., pp. 112—121.

2 Vide the 16th volume of Klon-rdol-gaun-libum, and Sarat Chandra

Das's "Indian Pandits in the Land of Snow," pp. 50—76.

8 Vide the Chronological Table extracted from the Vaiduryakarpo in Csoma de Koros's Tibetan Grammar, p. 183.

| 3. | Rasa Pāla | •• | | 753—765 A.D. |
|------------|---------------------|--------------|-----|-------------------------|
| 4. | Dharma Pāla | • • | | 765—829 A.D. |
| 5. | Masu Raksita | • • | • • | 829—837 A.D. |
| 6 | Vana Pāla | • • | • • | 837—847 A.D. |
| 7 . | Mahī Pāla | • • | | 847—899 AD. |
| 8. | Mahā Pāla | | | 899—940 AD. |
| 9. | S'āmu Pāla 1 | | | 940—952 A.D. |
| 10. | S'restha Pāla or Pi | raistha Pāla | | 952—955 A.D. |
| 11. | Canaka | ••• | | 955—983 A.D. |
| 12. | Bhaya Pāla | | | 983—1015 A.D. |
| 13. | Naya Pāla | • • | | 1015—1050 A.D. |
| 14. | Āmra Pāla | • • | | 10 5 0—1063 A.D. |
| 15. | Hasti Pāla | • • | ٠. | 10 63—107 8 A.D. |
| 16. | Ksānti Pāla | | | 1078—1092 A.D. |
| 17. | Rāma Pāla | • • | | 1092—11 3 8 A.D. |
| 18. | Yaksa Pāla | • • | | 1138—1139 A.D. |

The researches on the Pāla kings, by the late Dr. Rājendra Lal Mitra, arrived at a conclusion which is somewhat different from mine. Dr. Mitra's list of Pāla kings 2 is given below:-

| 1. | Go Pāla | | 8 5 5—8 7 5 A .D. |
|-----|------------------|-----|--|
| 2. | Dharma Pāla | | 8 75 —8 95 A .D. |
| 3. | Deva Pāla | | 895—915 A .D. |
| 4. | Vigraha Pāla I | | 915—935 A.D. |
| 5. | Nārāyaņa Pāla | | 935—955 A.D. |
| 6 | Rāja Pāla | | 955—975 A.D. |
| | Pāla | | 975—995 A.D. |
| 8. | Vigraha Pāla II | | 995—1015 A.D. |
| 9. | Mahī Pāla | • • | 1015—1040 A.D. |
| 10. | Naya Pāla | | 1040—1060 A.D. |
| 11. | Vigraha Pāla III | | 1060—1080 A.D. |
| | _ | | |

Probably the same as Nārayaṇa Pāla who, in the Bhagalpur plate, is styled "the lord of Anga."
 Vide Dr. Rājendra Lāl Mitra's "Indo-Aryans," vol. ii, p. 232.

APPENDIX C.

THE ROYAL UNIVERSITY OF VIKRAMASILA.

(About 800-1200 A.D.).

Vikramašilā, mentioned in Sanskrit Sragdharāstotra-tīkā.² Vrhat-svayambhū-purāna, Tibetan Tangyur, tetc., was a great collegiate monastery, or rather University, founded by king Dharma Pāla at the close of the 8th century A.D. It was situated on a precipitous hill 5 in Behar at the right bank of the Ganges, possibly at Sila-samgama, now called Patharghata, near Colgong in the Bhagalpur district. Dharmapala endowed

श्रीमक्षितमभौ खरेवमदाविदारीय राजग्रपाखितभिच् श्रीजिनरचितकता बालार्क-खातडीका परिमात्रा (Sragdharā-stotra, edited in the Bibliotheca Indica series by Satis Chandra Vidyabhusana, p. 50).

⁸ वाराषस्यां नगर्थो च विद्वारे य**व प्यान्ति**ने । तदा विज्ञमशीलिंस विदारे वसद्तमः॥ धर्मत्रीमित्रो नामोऽयं भिन्तः पण्डितकस्कः। धनी दिदेशयामास नामसङ्गीति च कथाय ॥

(Vrhat-svayambhū-

purana, edited by M. M. Hara Prasad Sastri, chap. vi, pp. 320-321).

- 4 Numerous Sanskrit works such as नारैकविंग्रतिकाइन्द्र ने संचेप. नारा-चिर्व-खोचम etc., were translated into Tibetan in the monastery of Vikramaśilā, as is evident from the Tangyur, Rgyud, La, Folios 11-26, 54, etc.
- 5 At the distance of a day's sail below Sultanganj there is a steep hill called Patharghata overhanging the Ganges, which here is uttaravahini (or flows towards the north). This corresponds exactly with the account of Vikramasilā given in Tibetan books. There are also ruins of Buddhistic images at Patharghata. For its old name Sılasamgama vide Francklin's "Site of Ancient Palibothra," pp. 54—55, Appendix p. xiii. General Cunningham identifies Vikrama ilä with modern Silao, which is a small village three miles to the south of Bargaon (ancient Nālandā) and six miles to the north of Rajgir in the subdivision of Behar (vide Report of the Archæological Survey, vol. viii, p. 83). But this identification does not tally with the description found in Tibetan books, for the Ganges never passed by Silao, nor is there any hill near to it.

¹ Vide Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 234-242, 259-261; Pag-sam-jon-zang, pp. 113, 117, 118; and Sarat Chandra Das's article in the "Journal" of the Buddhist Text Society of Colcutta. vol. i, part i, pp. 10—12; and his "Indian Pandits in the Land of Snow," pp. 50—76.

2 The colophon of the Sragdharā-stotra-tīkā runs as follows:—

the university with rich grants sufficing for the maintenance of 108 resident monks besides numerous non-resident monks and pilgrims. At the head of the university was always a most learned and pious sage. Thus at the time of Dharma Pala. Ācārva Buddha-iñāna-pāda directed the affairs of the university, and during 1034-1038 A.D. Dipankara or Srijnana Atisa was at its head, and Sthavira Ratnākara was the superior of the monastery. The famous Tibetan scholar Nag-tshul-khrimsrgyal wa, better known as Nag-tsho Lotsava, who came to take Dipankara Srījnāna alias Atisa to Tibet, resided in the monastery of Vikramasilā for three years, 1035—1038 A.D. Kamalakuliša, Narendra-šrī-jñāna, Dāna Raksita, Abhayakara Gupta, Subhakara Gupta, Sunāyakaśrī, Dharmākara Santi and Sakvaśri Pandita also belonged to the university of Vikramaśilā. Provision was made specially for the study of grammar, metaphysics (including logic) and ritualistic books. On the walls of the university were painted images of panditas eminent for their learning and character. The distinguished scholars of the university received a diploma of "Pandita" from the kings themselves. For instance, the distinguished logicians, Acarya Jetāri of Vārendra and Ratnavajra of Kāśmīra, were granted such a diploma. The most erudite sages were appointed to guard the gates of the university. These were six in number, each of which had to be guarded by scholars designated "Gatekeepers" (called in Tibetan Go-srun, corresponding, perhaps, to our Dvara-pandita). During the reign of Canaka (955-983 A.D.) the undermentioned eminent logicians acted as gatekeepers :-

(i)—At the eastern gate Acārya Ratnākara Santi.

(ii)—At the western gate Vāgisvarakīrti of Benares.

The famous Naropa. (iii)—At the northern gate

(iv)—At the southern gate Prajñākaramati.

(v)—At the first central gate... Ratnavajra of Kāśmīra. (vi)—At the second central gate Jñāna-śrī-mitra of Gauda.

The university of Vikramasila is said to have been destroyed by the Mahomedan invader Bakhtiar Khiliji 2 about 1203 A.D. when Sākva-śrī-pandita, of Kāśmīra, was at its head.

² Vide the Tibetan-English Dictionary compiled by Rai Sarat Chandra

¹ Vide Klon-rdol-gsun-hbum, vol. xvi.

Das, p. 869; Waddell's "Lamaism," p. 16.

The Turuskas or Mahomedans attacked Magadha several times. Tārānātha, speaking of Ārārya Kamala Raksita who was at the head of the Vikramasilā university at the end of the 10th century A.D., observes:-"A minister of the Turuska king, out of the Karna land in the west, together with 500 Turuskas, drew to Magadha to plunder. They plundered

the sacrificial materials, but when they began to walk all in a body to the Ācārya (Kamala Rakṣita) the Ācārya got into a rage and walked up along, throwing a jug, filled with water, over which he had spoken the mantras. On the spot a great and indomitable storm collected, out of the wind came forth many black men armed with swords who fell upon the Turuskas; the minister himself perished spitting blood, and various contagious illnesses repulsed the others in such a way that none of them could reach their native country, and a great terror came over the Tirthas and Turuṣkas—Tārānātha's Geschichte des Buddhismus von Schiefner, pp. 266, 261.

GENERAL INDEX.

| A 1 | Page |
|-------------------------------|-----------------------------------|
| Page | Ācārya 78, 80, 83, 102, 103, 121, |
| Abbot 125 | 131, 136, 139, 151, 152 |
| Ābhāsa 28, 40, 42 | Ācā ya Bodhisattva 125 |
| Abhāva 10, 24, 42 | Ācārya Sānti 140 |
| Abhayadeva 36, 37 | Act 29 |
| Abhayagirivāsin 65 | Action 8, 32, 95 |
| Abhayakara Gupta 151 | Act-fruit 44 |
| Abhayatilakopādhyāya 53 | Ādinātha 34 |
| Abhidhammapitaka 58, 59, 60, | Ādipurāņa 14, 24, 28, 34 |
| 63, 64 | Adrikalpa 81 |
| Abhidhammatthasamgaha 59 | Advaita 23, 27 |
| Abhidhanacintamani 45 | Advaitavāda 23 |
| Abhidharma 121, 145 | Affirmation 30 |
| Abhidharma-jñāna-prasthāna- | Affirmative 30, 31, 32 |
| Sāstra 64, 66 | Āgama 3, 4, 10, 13, 29, 32, 40 |
| Abhidharma-mahāvibhāṣā 64 | Āgamābhāsa 33 |
| Abhidharma-mahāvibhāṣā- | Ahmedabad 44 |
| ś ā stra 63, 66 | Ain-i-Akbari 40, 41 |
| Abhidharma-vibhāṣā 63 | Ajātaśatru 58 |
| Abhinibodha 4 | Ajīva 8 |
| Abhrānta 109 | Akalanka 25, 26, 27, 28, 33, |
| Absence of connection 97 | 37, 40 |
| Absence of disconnection 93 | Akalankadeva 25, 54 |
| Absence of inverse disconnec- | Akalankacandra 25 |
| tion 98 | Akalankastotra 26 |
| Absolute 42 | Ākāśa 74 |
| Absolute knowledge 2, 15 | Akbar 55 |
| Absolutely 109 | Akevalajñāna 4 |
| Absolute non-existence 24, 25 | Akşa Candra 69 |
| Absolute reality 68 | Akṣapāda xvii, 11, 46, 51, 53 |
| Acandra 112 | Akşapāda Gautama xvii |
| Ācāra 71, 80 | Älambaņa 121 |
| Acāra-dinakara 3 | Ālambaņa-parīkṣā 101, 120 |
| Ācārānga-sūtra 6 | Ālambana-parīksā-tīkā 120, 121 |
| Ācāra's monastery 80 | Ālambaņa-parīkṣā-vṛtti 101 |

| | Pa | ige | 1 | | | Page |
|--------------------|-----------------|-----|-------------------|--------------------|-----------------|-------|
| Ālambaņa-pratyaye | a-dhyāna- | | Aniscita | • • | | 93 |
| ś ä stra . | 1 | 01 | Antar | •• | | 42 |
| Ālambaņa pratyays | | | Antar-vyāpti | 18, 4 | 2, 76 | , 140 |
| sāstra-vyākhyā | 10 | 02 | Antarvyāpti-sam | arthana | | 141 |
| Ālaya-vijñāna . | ' | 71 | Antecedent | • • | | 42 |
| Alberuni . | | 14 | Antecedent non-e | xistence | 24 | 4, 25 |
| Āloka . | xv | iii | Antiquary, India | | | |
| Āloka-darpaņa | xv: | iii | 13, 14, 38, 3 | 39, 45, 49 |), 53. | . 123 |
| Āloka-kaņṭakoddhā | ra x v i | iii | Antiquities | •• | | 68 |
| Aloka-rahasya | xv i | iii | Anumana 4, 5, | | | |
| Āloka-sāra-mañjarī | xv i | iii | 41, 4 | 19, 54, 74 | t , 9 9, | 109 |
| All-pervading | 11 | 2 | Anumānābhāsa | | • • | 99 |
| Alwis, Dr. | 5 | 68 | Anupalabdhi 3 | 80 . 42 . 1 | 110. | 111. |
| Amaracandra . | . 47.4 | 8 | | , | | 134 |
| Amarasvāmi-carita | 4 | 9 | Anuştubh | | | 84 |
| Amarāvatī | 6 | 8 | Anuyoga-dvāra-si | | | 4 |
| Ambiguous | 95, 11 | 3 | Anvayi | | | 31 |
| Ambrosia | 12 | 22 | Ānvīksikī | | | xvii |
| Amdo | 13 | 7 | Anyāpoha | | | 24 |
| Āmra Pāla | 14 | 9 | Anyapoha-vicara- | kār ikā | | 130 |
| Anadhyavasāya | 4 | 0 | Anyonyābhāva | | | 24 |
| Anahillapurapattan | a 38, 5 | 3 | Aparantaka | | | 69 |
| Anaikāntika | 19, 11 | 3 | Aparaśaila | | | 65 |
| Analysis | 10 | 0 | Aparaseliya | | | 58 |
| Analysis of wheel | 10 | 0 | Apoha | | | 143 |
| Analogy | 74, 7 | 5 | Apoha-nāma-prak | arana | | 132 |
| Ānanda Sūri | 47, 4 | 8 | Apohasiddhi | • • | 140, | 143 |
| Ananta-śrī | 13 | 8 | Apparent | | | 95 |
| Anantavīrya | 28, 37, 3 | 8 | Appendix | 145, | 148, | 150 |
| Ananvaya | 19, 97, 11 | 6 | Application | 16, 3 | 1, 32 | , 42 |
| Ancient | x v | ii | Application of re | ason | | 61 |
| Ancient school | xv | ii | Apprehend | | | 95 |
| Andhra | 68, 78, 81, 8 | 2 | Apprehension | • • | | 10 |
| Anecdota Oxoniensi | a 7 | 5 | Apradarsitānvaya | •• | 20, | 116 |
| Anekānta-Jaina-ma | ta- | | Apradarsitavyatir | eka | | 21 |
| vyavastha | | 4 | Āpta-mīmāmsā | | 5, 26 | , 27 |
| Anekārthasamgraha | 4 | 5 | Āpta-mīmāmsālan | | | 26 |
| Anga • | | 9 | Āpta-mīmāmsālan | | | 23 |
| Anguttara Nikaya | | 59 | Āpta-mīmāmsā-vi | | | 54 |
| Anhilwad | | 5 | Āpta-parīkṣā | | | 27 |
| Anhilwad Patan | | 5 | Arāsana | | | 39 |

GENERAL INDEX.

| Page | Page |
|--|-----------------------------|
| Arcata 46, 50, 53, 133, 134 | Aşṭasāhasrī-vṛtti |
| Arcata-tarka-tīkā 53 | Aştasatî 25, 27 |
| Archaic xxi | Asti 24 |
| Ardha-Māgadhī 3 | Astronomy 62, 121 |
| Argument 44 | Aśvaghosa 67 |
| Argumentation 29, 40, 41, 54, 60, 73 | Aśvavabodhatīrtha 50 |
| Arhat 7, 41, 49 | Atisa 138, 148, 151 |
| Arithmetic 62 | Ātmaka 116 |
| Aristotle 96 | Ātman 40, 43, 127, 128 |
| Art 62, 103 | Atom 96. 98. 115 |
| Art of healing 103 | Attribute 74 |
| Arthapatti 10 | Attributeless 95 |
| Ārya 65, 83, 122, 142 | Atyantābhāva 24, 42 |
| Ārya Asanga 73,74 | Auditory 10, 59 |
| Ārya Deva 67, 70, 72, 145 | Aulūkya 51 |
| Ārya-koşa 124 | Authority 4, 10 |
| Arya Mahāsārighika 65 | Avadānakalpalatā 15 |
| Ārya Nāgārjuna 68 | Avadhi 4, 10, 41 |
| Ārya Sammitīya 65, 66 | Avadhi-jūāna 41 |
| Ārya Sarvāstivāda 65 | Avagraha 40 |
| Ārya Sthavira 65, 67 | Avalokitešvara 121, i22 |
| Ārya-Tārā-antarbali-vidhi 121 | Avantīka 65 |
| Asādhāraņa 94 | Avasarpiņī 1 |
| Asanga xix, 73, 74, 78, 95, 96, | Avasyakaniryukti 2 |
| 122, 146 | Āvasyaka-sūtra 6 |
| Āśaṅkā 7 | Avāya 41 |
| $\bar{\mathbf{A}}$ ank $\bar{\mathbf{a}}$ -pratised \mathbf{A} 7 | Avayava 42 |
| Ascetic 15 | Avidya 59 |
| Asiatic Society xiii, 9, 23, 40, 52, | Avinābhāva 29 |
| 72, 125, 141 | Avyatireki 21 |
| Asiddha 18, 93, 112 | Ayodhyā xix, 67, 73, 74, 75 |
| Aśoka 58, 61, 121 | В |
| Aspect 92 | _ |
| Āśrava 8 | Bactria 61 |
| Assertion 44 | Bahir 42 |
| Aştasāhasrī 23, 26, 27, 37, 54 | Bahir-vyāpti 18, 42 |
| Aşṭasāhasrikā 105 | Bahuśrutiya 65 |
| Aşţasāhasrikā Prajñāpāra- | Bāhulika 58 |
| mitā 64 | · · |
| Aşţasāhasrī-vişamapada-tāt- | Bālāditya xix, 145, 146 |
| parya-ţīkā 26, 37 | Bālāvatāra-tarka 137 |

| | Page | Page |
|--|------------|-----------------------------------|
| B ā ņa | 34 | Bharsa 123, 124 |
| Bandha | 8 | Bhartrhari 26, 27, 28, 34, 102, |
| Baragaon | 145, 150 | 105, 119 |
| Barisal | 122 | Bhā-sarvajūa 53 |
| Baroda | 55 | Bhāsvāmin 22 |
| Basket | 58 | Bhāṣya 8, 10, 12, 122 |
| Bauddha | 46, 49, 54 | Bhatta 34, 81 |
| Bauddhadarsana 49, 66 | , 67, 68, | Bhātṭa 54 |
| 82. 105, 107 | , 133, 138 | Bhattapāda 51 |
| Bdag | 127, 128 | Bhatt ārak a 54 |
| Bdag-gi-don-gyi-rjes-su-dp | ag- | Bhāva 11, 24 |
| ра | 109 | Bhavanagara 13, 46 |
| Bde-byed-dgah-wa | 142 | Bhavānanda xviii |
| Beal, Rev. xix, 14, 62, 6 | | Bhavānandīvyākhyā xviii |
| 6 8, 6 9, 7 1, 7 2, 7 4, 7 5, 8 6 |), 82, 145 | Bhaya Pāla 149 |
| Bedā vṛtti | 102 | Bhikşu 61, 69, 99 |
| Behar xx, 57, 103, 145. | 148, 150 | Bhiksu-sūtra 61 |
| Belief | 91 | Bhim Sing 8 |
| Benares xiii, xiv, 6, 8, 3 | 9, 50, 51, | Bhoja Deva 68 |
| 52, 55, | 133, 151 | Bhorasilā 80 |
| Benediction | 141 | Bhota 50 |
| Bengal xiii, xv, xx, 102, | 117, 121, | Bhrama-pramathana-yukti- |
| 122, 124, 131, 134, 135. | 141, 148 | hetu-siddhi 71 |
| Berar | 68 | Bhrānta 81 |
| Berlin | 3, 37 | Bhrānti 81 |
| Bhadrabāhu | 5, 6. 8 | Bhūmi 71 |
| Bhadrabāhucarita | 2 | Bibliotheca Indica xx, 9, 14, 23, |
| Bhadra Pālita | 80 | 65, 70, 109, 113, 114, 124, 131, |
| Bhadreśvara | 50 | 140, 150 |
| Bhagalpur | 149, 150 | Bibliothek zu Berlin 37 |
| Bhagavān | 137 | Bimba 39 |
| B hagavān Upavarşa | 33 | Bis-wa-hjug-pahi-rtog-ge 137 |
| Bhagavatī-sūtra | 4 | Bliss 21 |
| Bhāgyarāja 132, | 135, 144 | Blo-ldan-śeg-rab 108, 131, 132, |
| Bhāmati | 23, 105 | 135, 142, 143, 144 |
| Bhāmatī-ţīkā | 23 | Blunders 81 |
| Bhamsa Candra | 69 | Bodhisattva 65, 82, 83, 99, |
| Bhandarkar, Dr. R. G. 2, | | 101, 124 |
| 24, 25, 26, 37, 38, 41 | | Bodhisattva-caryā-nirdeśa 72, 73 |
| | 3, 63, 68 | Bombay xiii, 6, 8, 13, 34, 46, |
| Bharapi | 30 | 54, 95 |

| Page | Page |
|------------------------------------|-------------------------------------|
| Bombay Gazette 44 | Buddhist Records xix, 14, 62, 66, |
| Bompas, Mr. C. H xv | 67, 68, 71, 72, 75, 82, 102, 145 |
| Bondage 8, 44 | Buddhist Text Society 68. 70, |
| Bonn xiv | 71, 72 |
| Bos gavaeus 29 | Bühler, Dr. George 44, 48, 59, |
| Brahma 104, 127 | 125, 126, 128 |
| Brahmajālasutta 59,60 | Bull in Discussion 80, 81 |
| Brāhmana 2, 49, 59, 60, 83, 102. | Bunyiu Nanjio 61, 64, 66, 70, 71, |
| 103, 104, 142, 145 | 72, 73, 74, 76, 80, 89, 101, 102 |
| Brahma-nemidatta 28 | Burmah 63 |
| Brāhmaņī 2 | Bu-ston 78 |
| Brāhmanic 10 | Byan-chub-seg-rab 137 |
| Brāhmanic Logie xiv | Bye-brag 128 |
| Brahmavādi 46 | Bye-brag-pa ₂ 127 |
| Brhadāranyaka-vārtika 105 | |
| Brhat-jñāna-koşa 125 | C |
| Brhat-tīkā 35 | Cartya 39, 147 |
| British Government xxi | Cakra-samvara 139 |
| British Mission xv, 120, 129, | Calcutta i, xiii, xv, xvi, xx, xxi, |
| 131, 134 | 3, 4, 9, 11, 14, 63, 65, 67, 68, |
| Broach 50 | 69 70, 71, 73, 76, 109, 120, |
| Brtag-pa 129 | 121, 124, 126, 131, 133, 136, |
| Brtan-pahi 128 | 140, 147, 150 |
| Bsam-yas 125 | Calcutta University xxi |
| Bsgrub-par-bya 90 | Cambay xx, 22, 109, 131 |
| Bagrub-par-byed 90 | Canaka 135, 138, 139, 140, |
| Bsrun 130 | 149, 151 |
| Buddha 1, 20, 21, 27, 57, 58, 60, | Candra 122 |
| 62, 63, 65, 66, 67, 69, 70, 71, | Candra-dvīpa 122 |
| 72, 73, 75, 80, 99, 101, 104, | Candra Gomin xx, 121, 122, |
| 120, 129, 145 | 123, 124 |
| Buddha Gautama . 57,65 | Candra Gupta 3, 69, 70, 71 |
| Buddha Gayā 139, 141 | Candra Kīrti 70, 122, 123 |
| Buddhaghosa 76 | Cakkhu-viññāṇa 59 |
| Buddha Gupta 145 | Candrakūpa 123 |
| Buddha-jñāna-pāda 151 | Candra Nārāyaņa xviii |
| Buddhism 57, 63, 67, 71, 73 | Candrapāla 146 |
| Buddhist xiii, xviii, xix, 50. 54, | Candraprabha 45, 46 |
| 59, 91 | Candrasena 45 |
| Buddhist India 64, 67 | Candra-vyākaraņa 122 |
| Buddhist Logic xiv, xv, 57 | Candra's well 123 |
| · · | |

| Page | Page |
|-------------------------------------|---------------------------------|
| Cāndrī-patrikā xviii | Chos-can 90 |
| Candrodaya 33 | Chos-dan-chos-can-gtan-la-dwab- |
| Canon 3.64 | рв 136 |
| Canonical 3, 63 | Chos-grags 103 |
| Canonical scriptures 3 | Chos-kyi-brtson-bgrus 138 |
| Canonised 58 | Chos-mechog 131 |
| Cap 78, 79 | Chos-mi-mthun-dpe-ltar-snan |
| Capital 49 | wa 97 |
| Carpenter, J. E 60 | Chog-mi-mthun-pa 90 |
| Cārvāka 43, 46, 51 | Chos-mthun 96 |
| Caste 102, 103 | Chos-mthun-dpe-ltar-snan-wa 96 |
| Casuist 62 | Chos-wthun-pa 90 |
| Casuistry 59, 60 | Chowkhamba 50, 51, 52 |
| Catalogue 36 | Christian 145 |
| Catalogue of the Chinese Tri- | Citrakūta 50 |
| piṭaka 66 | Class 65, 109 |
| Categories 8 | Classification 59 |
| Caturvimsati-Jina-stuti 23 | Coda 103 |
| Caturvimsati prabandha 6, 48, 51 | Co-existent 129 |
| Causation 62 | Co-existent cause 129 |
| Cause 11, 29, 30, 31, 111, 117, | Cogitation 40 |
| 129, 138 | Cola 71 |
| Cemetery 104 | Colgong 150 |
| Cetiya 58 | Collective 11 |
| Ceylon 57, 58, 63, 122, 140 | Commentary xvii, xix, 66 |
| Chala 51,61 | Comparison 4, 10, 74, 85, 88 |
| Chalukya xx, 81 | Compendium 49, 82, 83 |
| Chanda 140 | Concentration 10 |
| Chandonusasana-vrttı 45 | Conception 112 |
| Chando-ratnākara 140 | Concern 143 |
| Chaplain 49 | Conclusion 8, 16, 31, 32, 42, |
| Characteristics 40, 41, 91, 92, 93, | 92 94 |
| 99, 100, 109, 110, 112, 134 | Conditional 68 |
| Characteristics of the middle | Confusion 109 |
| term 91 | Conjeeveram 80, 102 |
| China xiv, 63, 71, 73, 74, 75, | Connection 42, 55, 87, 92, 96, |
| 76, 89, 101 | 97, 111, 116, 118, 144 |
| Chittore 50 | Connection unshown 20, 116 |
| Chola 103 | Consciousness 40, 43, 59 |
| Chos 90 | Consequence 40 |
| Chos-byun 148 | Constituent 44 |

| | | | Page | 1 | D | | |
|--------------------|---------|----------------|------------|--------------------------------|-------------------|-----------------|-----------|
| Contained | | | 29 | | | | Page |
| Container | | 29, | 111 | Dabhoi | | | 55 |
| Contemplation | | | 80 | Dad-pahi-seg-rab | | | 84 |
| Contemplative | | | 109 | Dad-pa-ses-rab | | | 100 |
| Contemplative s | ystem | | 71 | Dakşina | | | 81 |
| Continuity | •• | 118 | , 129 | Dāna Rakşita | | | 151 |
| Contradiction | 94, 93 | 5, 113, | 114 | Dānaśila | | 134, | 135 |
| Contradictory | | 18, 94 | , 95, | Dāna-śrīla | | | 134 |
| | | 112 | , 113 | Darjeeling | | xv | . xv |
| Contradistinction | ı | | 62 | Dar-ma-grag | | | 117 |
| Contrariety | • • | • • | 17 | Darśanaśuddhi | • • | | 46 |
| Contrary separa | tion | | 21 | Daśabhūm ī śvara | | | 64 |
| Controversialist | | | 85 | Daśāśruta-skandl | h a- sütra | | 6 |
| Controversy | | | 79 | Daśavaikālika-ni | ryukti | | 5, 6 |
| Conventional | | | 12 | Daśavaikālika-ni | ryukti-țik | .8. | 48 |
| Conviction | | | 111 | Daśavaikālika-sū | tra | | 5 |
| Conveyancing | | | 62 | Daśavaikālika-ţīl | Lã. | | 46 |
| Cordier, Dr. Paln | nyr | | 70 | Daśavaikālika-v | tti | | 3 |
| Coroa | | | 63 | Daśāvayava-vāky | 78. | | 6 |
| Cosmic blindness | | • • | 5 9 | Das, Sarat Chan | | 7, 6 3 , | |
| Council 13, | 57, 58, | 59, 60, | 61, | 78, 82, 84, 1 | | | |
| | | 63 . 64 | , 67 | 129, | 147, 148, | 150, | 151 |
| Council of discuss | sion | | 44 | Death | •• | | 57 |
| Counter-argumen | t | | 44 | Debate | 44, 62 | . 74, | 104 |
| Counter-assertion | | | 44 | Debater | •• | | 107 |
| Counterpart | | | 29 | Debator | • • | • • | 74 |
| Counter propositi | on | • • | 7 | ! | k, 26, 68, | 103, | 107 |
| Cowell, Mr E. B. | | 8, 26, | • | Deccan College | • • | 28 | , 34 |
| | | 67 | , 68 | Declaration | • • | • • | 111 |
| Crawford, Mr. | | • • | xv | Defeat | • • | 61 | , 74 |
| Credible | • • | | , 89 | Defect | • • | • • | 21 |
| Credible word | • • | 85, 88, | | Defective | • • | • • | 41 |
| Cremation | • • | • • | 104 | Defective knowle | dge | • • | 4 |
| Crest-gem of logi | | • • | 26 | Definite | • • | • • | 40 |
| Csoma de Koro | 3 | | 124, | Definition | • • | • • | 129 |
| | | 135, | | Degree | • • | • • | 1 |
| Cūḍ ā maņi | •• | 26, | | De-kho-na-ñid-þso | lug-pahi- | | |
| Culla Vagga | •• | • • | 57 | d ka lı-lıg r el | •• | •• | 130 |
| Cunningham, Ger | eral | 145, | - 1 | De-kho-na-nid-bad | | | |
| Cūrņika | • • | • • | 3 | tshig-lehur-b | y a ş-pa | • • | 125 |
| Cycle | •• | • • | 57 | Delhi | • • | 63, | 148 |

| | Page | Page |
|----------------------------|-------------------------|--|
| Demonstration | 89 | Dharmakirti xvii, xix, 24, 26, 27, |
| Derivation | | 34, 41, 48, 49, 53, 82, 103, |
| Deva | 67, 70, 71, 72 | 104, 105, 106, 107, 108, 109, |
| Devacandra | 44 | 113, 114, 115, 116, 117, 118, |
| Devadatta | 29, 32 | 119, 120, 121, 124, 125, 129, |
| Devagamastotra | 23 | 131, 132, 133, 134, 135, 138. |
| Deva Pāla | 148, 149 | 139, 140, 143 |
| Devardhi Gani | 13, 22 | Dharmāloka 131 |
| Devasundara | 53 | Dharmapāla 102, 103, 105, 124, |
| Deva Süri | 38, 39, 50 | 130, 146, 148, 149, 150, 151 |
| Devendra Bhadra | 130 | Dharmapāla, A. H 61 |
| Devendrabodhi | | Dharmaputra 48 |
| | 122, 123, 135, | Dharmasāgaragaņi 5 |
| 200, | 136, 139 | Dharmasamgraha 71 |
| Dgah-wahi-rdo-rje | 143 | Dharmāśoka 99 |
| Dge-bsruń | 130 | Dharmavijaya, Muni xiv, 2, 6. |
| Dge-seg-sin-gyan | 100 | 13, 22, 46, 49, 50, 52, 54 |
| Dge-wahi-blo-gros | 106, 117, | Dharmaviniścaya 140 |
| Ďβα-мαŭr-òrα-βια≅ · · | 118, 119 | Dharmin 29,90 |
| D las ::l | 136 | Dharmottara xix, 35, 46, 50, 53, |
| Dgra-las-rgyal-wa | | 67, 131, 133 |
| Dhammaguttika | 58 | Dharmottarācārya xx, 130, 131, |
| Dhammasangani | 59 | 133 |
| Dhammuttariya | 67 | Dharmottaratippanaka 34, 131 |
| Dhanapat Sing | 3, 4, 6, 8, 11 | Dialectic 106 |
| 201 21 1 | • | Dialectician 72, 80, 100, 107, |
| Dhandhuka | 44 | 123, 129 |
| Dhanesvara | 37 | Dialectics 83 |
| Dhānyakaṭaka | xx | Dialogue of Buddha 60 |
| Dhāraṇā | 41 | Dīdhiti xviii |
| Dhāraņī | 103 | Dīdhiti-sāra-manjarī xviii |
| Dharma | 29, 80, 90, 104, 141 | Dīdhiti-ṭīkā xviii |
| D. 11- | • | Dîdhiti-țippanî xviii |
| Dharmabhūsaņa | 54, 82 | Dīdhiti-vyākhyā-vivecana x v iii |
| Dharmābhyudaya-me | | Digambara xviii, 1, 2, 5, 9, 22, |
| уа | 47, 48 | 25, 26, 28, 33, 36, 37, 38, |
| Dharma-dharmi-vinis | | 54, 82, 105, 127 |
| The amore a = 2 - | 1 4- | |
| Dharmagañja | | Dīgha Nikāya 59,60 |
| Dharmaghoşa | 46 | Dignāga xvi , xix, 27, 34, 49, |
| Dharmaghosa Dharma-guptiya | 46 | Dignāga xvi·, xix, 27, 34, 49, 52, 53, 54, 70, 78, 79, 80, |
| Dharmaghoşa | 46 | Dignāga xvi , xix, 27, 34, 49, |

| Page | Page |
|-----------------------------------|-------------------------------------|
| 101, 102, 105, 106, 113, | Dpe-dan-dpe-ltar 85 |
| 114, 124 | Dpe-ltar-snan-wa 96 |
| Dinna Gani 22 | D. P. I xv |
| Dīpanī xviii | Dravali 104 |
| Dîpankara 117, 136, 137, 138, | Drāvida vviii, xix, xx, 102, 104 |
| 148, 151 | Dravya 11, 128 |
| Diploma 139, 141, 151 | Drop of Logic 109 |
| Direct 112 | Drop of Reason 117 |
| Direct apprehension 28 | Dṛṣṭānta 7, 16, 17, 18, 31, 42, 74, |
| Direct knowledge 4, 9, 10, 15 21, | 76, 90, |
| 29, 40 | Drstantabhasa 19, 20, 33, |
| Discipline Basket 58 | 96, 97 |
| Disconnection 98 | Dṛṣtivāda 3, 4, 5 |
| Discuss 62 | Dul-lha 119 |
| Discussion 44, 62, 64 | Dus 129 |
| Disputant 40, 44, 62, 133 | Dūşaņa 21, 98, 116 |
| Disputation 62, 114 | Dūṣaṇābhāsa 21, 99 |
| Dispute 70 | Dus-gsum-brtag-pa 101 |
| Dissenter 67 | Dvāra-paņdita 151 |
| Distinction 62 | Dvāśraya-mahā-kāvya 45 |
| Dittha 86 | Dvātrimsikā 51 |
| Diţţhivāo 4 | Dwan-phyug-brtag-pa 127 |
| Dmigs-pa-brtag-pa 101 | Dwan-phyug-hjig-pahi-tshig- |
| Dmigs-pa-hrtag-pahi-hgrel 101 | lehur-byaş-pa 130 |
| Dmigs-pa-hrtag-pahi-hgrel- | Dwnħ-po 129 |
| þ śa d 120 | _ |
| <u>D</u> nos-po 128 | E |
| Dö 125, 136, 140 | Ear 15, 87 |
| Doctor of Philosophy i | Earle, Mr. A xv |
| Doctrine 91, 104 | Early history of the Deccan 26 |
| Dogma 44.71 | Earth 22 |
| Dogmatik xiii | Effect 29, 30, 31, 110, 111. 117, |
| Door of Entrance to Logic 89 | 126, 128, 134, 138 |
| Dorje 80 | Efficiency 110 |
| Doubt 18, 19, 40, 116 | Ego 72 |
| <u>Dpal-brtsegs</u> Raksita 120 | Ekabbohārika 58 |
| Dpal-Idan-blo-gros 124 | Emancipation 21, 41, 44 |
| Dpal-ldan-blo-gros-brtan-pa 139 | Enlightened One 57 |
| Dpal-wchog-dan-pohi-rdo-rje 137 | Enlightenment 15 |
| Dpal-rtsegs Raksita 121, 130 | Entire knowledge 4 |
| <u>Dpe-brjod</u> 90 | Entity 11, 128 |

| | Page | Page |
|--------------------|---------------------|---|
| Entrance to the | Science of | Fallacy of absence of connec- |
| Logic | 100 | 11. |
| Equanimity | 21 | Fallacy of absence of discon- |
| Era | 63 | nection 98 |
| Era of tradition | 1 | Fallacy of argumentation 32 |
| Erring one | 81 | Fallacy of "collective" 43 |
| Error | 62 | Fallacy of example 19, 33, 98 |
| Ether | 21, 74, 93 | |
| Etymological | 12 | and major terms 97 |
| Europe | xx | Fallacy of heterogeneous ex- |
| Ev aṁ bhūta | 4, 12, 21 | ample 20, 21, 97 |
| Evambhūtābhāsa | 43 | Fallacy of homogeneous ex- |
| Evolution | 129 | · - |
| Examination | 129 | Fallacy of included major |
| Example 7, 16, | , 17, 18, 31, 32, | term 98 |
| 42, 74, 76, 90 | 0, 95, 96, 97, 98, | Fallacy of included middle |
| | 114, 115, 116 | and major terms 98 |
| Exclud ed | 96 | Fallacy of included middle |
| Excluded major | 96 | term 98 |
| Excluded middle | 96 | Fallacy of inference 99 |
| Excluded middle | an'l major | Fallacy of inverted negation 98 |
| terms | 97 | Fallacy of middle term 18, 33, 93, |
| Existence | 20, 24, 25, | 98, 112 |
| | 43, 68 | Fallacy of minor term 17, 32 |
| Exp. rience | 99, 109 | Fallacy of naya 43 |
| Extent | 92 | Fallacy of perception 32, 99 |
| External | 42 | Fallacy of "practical" 43 |
| External insepara | ble connec- | Fallacy of reason 33 |
| tion | 42 | Fallacy of reasoning 98 |
| Extreme | 68 | Fallacy of recognition 32 |
| Extrinsic | 18 | Fallacy of recollection 32 |
| Eye | 15, 59, 87, 95 | Fallacy of refutation 98, 116 |
| | | Fallacy of "subtle" 43 |
| I | F | Fallacy of "suchlike" 43 |
| Fact | 74 | Fallacy of straight expres- |
| Factitious | 30, 31, 32 | niam 42 |
| Fahian | 62, 67, 69, 145 | 1 |
| Fallacious | 90, 96, 112 | 77 11 6 1 1 4 4 4 5 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 |
| Fallacy 21, 28, 3 | 12, 41, 42, 43, 70, | Familiar 95 |
| | 96, 98, 99, 112, | |
| 1 | 13, 114, 115, 116 | Fine Art 103, 121 |

| Page | Page |
|-----------------------------------|---|
| First Council 58 | Gokulika 58 |
| Fitness 32 | Go Pāla 124. 148, 149 |
| Fleet, Dr. J. F 57,63 | Gorakhpura 57 |
| Form 110 | Gorbara 3 |
| Form of a syllogism 90 | Go-srun 151 |
| Formula 6 | Gosvāmi, Dāmodara Lal 51 |
| Francklin 150 | Gotama 2 |
| Fraud 61 | Gotamastotra 3 |
| Futility 116 | Gotra 5 |
| | Gough, Mr. 8, 26, 66, 67, 68 |
| G | Govi Candra 119 |
| Gacchotpatti-prakīrņaka 48 | Govind 26 |
| Gadādhara xviii | Gragg-hbyor-seg-rab 130, 133 |
| Ganadhara 2 | Grags-pa-rgyal-mtshan-dpal- |
| Gaṇadhara-sārdha-śataka 3 | þ zaň 89 |
| Gaṇḍavyūha 64 | Grammar 103, 121, 122, 140, |
| Gandha-hasti-mahābhāsya 23 | 141, 151 |
| Gāndhāra xix, 74, 75 | Great Britain 57, 58, 63, 64, 66, |
| Ganges 121, 122, 150 | 72, 76 |
| Gangesa Upādhyāya xvii, xviii, 48 | Great Vehicle 63 |
| Garbhapāda 136 | (Glegs-bam-bklag-palit-thab) 134 |
| Gate-keeper 138, 139, 140, 151 | Gser-gyi-go-cha 84, 100 |
| Gāthāsāhasrī 48 | Gshan-gyi-don-gyi-rje-dpag 85 |
| Gauda 137, 138, 151 | Gshan-gyi-don-gyi-tshig 106 |
| Gautama xvii, 2, 3, 11, 57 | Gshan-gyi-don-rjes-su-dpag-pa 109 |
| Gems 6, 14, 15 | Gshan-la-brtag-pahi-tshig-lehur |
| Genealogy 8 | bya <u>s</u> -pa 130 |
| General 11, 17, 32, 86, 93, 94, | Gshan-sel-wa 132 |
| 113, 115 | Gtan-tshigs 85, 90, 91 |
| Generality 82. 95, 121, 128 | Gtan-tshig ₂ -kyi-de-kho-na-ñid- |
| General knowledge 109 | bstan-pa 136 |
| General property 11 | Gtan-tshigg-kyi-hkhor-lo-gtan- |
| Generic property 11, 43 | la-dwab-pa 99 |
| Genus 85, 86, 99 | (jtan-tshigg-kyi-thigg-pa 117 |
| Genyo 75 | Gtan-tshigs-kyi-thigs-pa-rgya- |
| Germany 122 | cher-hgrel-wa 120 |
| Ghānaviñūāņa 59 | Gtan-tshigs-ltar-snan 93 |
| Ghața 12 | Gtan-tshigs-thigs-pahi-hgrel- |
| Gloss xix, 131 | wa 133 |
| Gnas-mahi-bus 128 | Guge 125 |
| God 128, 131 | Guņa 128 |
| | |

| Guṇākara-śrī-bhadra 125 Hema Guṇamati 146 Hemacandra 2, 26, 35, 44, 45 Guṇaratna 48, 52, 53, 133 | 35 , 51, 123 |
|---|--------------------|
| Gunaratna 48, 52, 53, 133 | |
| | 123 |
| ~ | |
| Guṇava 3 Hema Varma or Kanaka | |
| Gupta 49, 130 Varma 84, | 100 |
| Gupta era 70 Heresy | 77 |
| Gupta samvat 49 Horetic 61, | 102 |
| Guru 129 Heretical 58 | , 65 |
| Gurvāvalī 6, 39, 53 Heterodox | 103 |
| Gurvāvalī-sūtra 5 Hoterogeneous 17, 19, 20, 31 | |
| Gustatory 59 90, 91, 94, 96, 98, 110, | |
| Guzerat xviii, 38, 44, 45, | 117 |
| , | , 21, |
| Gyantse xv | 7, 98 |
| Hetu 4, 5, 7, 11, 16, 17, 19 | |
| 30, 33, 41, 42, 62, 74, | |
| Haimavata 65 77, 85, 90, 91 | 117 |
| Hamsa 48, 50 Hetubindu 53, 120 | 133 |
| Hamsarāja, Hira Lal 51 Hetubinduṭīkā | 120 |
| | 133 |
| Handschriften-verzeichnisse 3 Hetu-cakra-hamaru | 99 |
| Hanoi 70 Hetu-dvāra-śāstra | 99 |
| Hardy, Rev 57 Hetu-prayoga | 42 |
| Haribhadra 3, 46, 47, 48, 49, 50, 139 Hetu-tattva-upade a | 136 |
| Harivamsa Purāņa 2 Hetu-vibhakti | 7 |
| Harşa xx, 123 Hetuvidyā xvii, 66 | , 82 |
| TT 11 | 2, 83 |
| Harşa Vardhana 123 Hetvābhāsa 18, 33, 93 | 112 |
| Hasti Pāla 149 ligal-wa | 91 |
| libras-bu 110, 134 ligro-wa-ran-bahin-du-smra- | |
| | 127 |
| Ilbrel-pa-brtag-pahi-rgya-cher- Ilgyur-war-smra-wa | 129 |
| þśad-pa 120 Himalaya | 103 |
| llbrel-pa-brtag-pahi-rjes-su Himavata | 5 8 |
| hbran-wa 142 Hinayāna 63, 65, 66, 7 | |
| llbrel-pa-grub-pa 144 Hindu Logic xiv, 73, 74, 75 | |
| 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 | 101 |
| librel-wa-brtag-palii-ligrel-wa 118 Hira Lal Hamsarāja | 13 |
| Ilbro 125, 136, 140 Hirapa | 37 |
| llbro-sen-dkar 125 Hiravijaya | 55 |
| Ildu-wa 129 Historical period | 13 |

| Page | Page |
|---------------------------------|--|
| Historical Records 39 | Inconsistent 95 |
| lljam dpal-rtsa- rgyud 69 | Indescribable 25 |
| Iljig-rten 129 | India xiv, xv, xvi, xvii, xix. xx, 50, |
| Iljig-rten-pha-rol-grub-pa 132 | 61, 62, 63, 64, 65, 67, 69, |
| Hodgson, Mr xv. 64 | 71, 76, 78, 81, 96, 101, 102, |
| Hoernle, Dr 9, 23 | 103, 105, 108, 120, 122, 134, |
| Holy saying 74 | 135, 145, 146 |
| Homogeneous 17, 19, 31, 32, 90 | Indian Logic i, xvii |
| 91, 94, 96, 110, 112, 113, 115 | India Office xv, 84, 89, 100, 101, |
| Homogeneous example 19, 97, 115 | 106, 107, 108, 109, 117, 118, |
| Hornell, Mr. W. W. xvi | 120, 121, 123, 124, 125, 130, |
| Hoshang 129 | 132, 133, 134, 135, 136, 138, |
| Householder 7 | 139, 140, 141, 143, 144 |
| Humiliation 61 | Indirect 112 |
| Hun xix, 14, 146 | Indirect apprehension 28 |
| Huskapura xx | Indirect knowledge 4, 9, 10, 15, |
| Hwen-thsang 14, 62, 66, 67, 68, | 21, 29, 40, 41, 54 |
| 71, 72, 73, 74, 75, 76, 78, 82, | Individual knowledge 109 |
| 101, 102, 103, 105, 123, 145, | Indra 11, 43 |
| 146 | Indrabhūti 2, 3 |
| 1 | Indra Gomin 123 |
| • | Indravijaya, Muni xiv, 2. 6, 13, |
| 1 143 | 22, 46, 49, 54 |
| Identification 41 | Indriya 40, 129 |
| Identity 31, 110, 111, 117, 134 | Indriya-parīkṣā 127 |
| Ignorance 21, 32 | Induction 96 |
| Īhā 41 | Inference 4, 5, 10, 15, 16, 19, 29, |
| Illumination 41 | 30, 31, 40, 41, 42, 54, 74, 76, |
| Illusion 59 | 86, 87, 88, 89, 90, 99, 109, |
| Illusory 43, 85, 99, 109 | 111, 112, 114, 129 |
| Image 11, 109 | Inference for one's self 16, 31, 41, |
| Immediate 43 | 85, 106, 108, 109, 110, 137, 139 |
| Imperceptible 30, 31 | Inference for others 41 |
| Implied 95, 113 | Inference for the sake of |
| Implied major term 113 | others 16, 17, 31, 85, 88, 109, |
| Imposition 55 | 111, 112, 137, 139 |
| Impressions 29 | Infinite knowledge 15 |
| Included major term 98 | Inquiring 41 |
| Included middle and major | Inseparable 96 |
| terms 98 | Inseparable connection 18, 20, 29, |
| Included middle term 98 | 42, 92, 116 |
| | Instance 7 |
| | |

| Page | Page |
|------------------------------------|------------------------------------|
| Instrument 29 | Jaina Logic xiii, xvi, xix, 1 |
| Intelligence 97 | Jaina system xviii |
| Intercourse 40 | Jainendra 54 |
| Internal 42 | Jain Vaidya, Mr 23, 25, 28, 33 |
| Internal inseparable connec- | Jaipur 23, 25, 28, 33 |
| tion 42, 76, 141 | Jálandhara 63, 148 |
| Interpretation 43 | Jāmanagara 51 |
| Intrinsic 18 | Jambudvîpa 134 |
| Introduction xvii | Jambudvīpasamāsa 9 |
| Intuition 41 | Japan xiv, 63, 73, 74, |
| Invalid 19, 100 | 75, 76, 89, 101 |
| Invariable accompaniment 18 | Jarrett, Col 40 |
| Invariable separation 21 | J. A. S. B. xiii, 70, 71, 80, |
| Inverse connection 97 | 122, 124, 125, 138, 140 |
| Inverse disconnection 98 | Jāti 51, 116 |
| Inversion 40 | Jaya Candra 69 |
| Inverted 97, 98 | Jayadeva Miśra xviii |
| Inverted connection 20, 116 | Jayaditya 123 |
| Inverted negation 98 | Jayanta 53 |
| Ireland 57, 58, 63, 64, 66, 72, 76 | Jayasimha 38, 39, 44, 46 |
| Istavighātakrt 113 | Jayasoma 5 |
| Iśvara-bhanga-kārikā 130 | J. B. B. R. A. S. 24, 26, 27, 28, |
| Iśwara Krana 83, 95 | 34, 63, 82, 105, 114 |
| Iśvara Sena 106 | J. B. T. S. 63, 65, 66, 67, 68, |
| Itaretarabhava 42 | 71, 73, 126, 129, 136, 150 |
| Itihāsa 62 | Jesalmir 125 |
| I-tsing 63, 66, 84, 89, 99, 101, | Jetāri 136, 140, 151 |
| 102, 103, 105, 119, 123, 146 | Jetavanīya 65 |
| | Jina aviii, 1, 55, 80, 82, 137 |
| • | Jina Bhadra 137 |
| J | Jinabhata 50 |
| Jacobi, Dr. Herman xiii, xiv, | Jinadatta 32 |
| 1, 5, 13, 49 | Jinadattasūri 3 |
| Jagadīśa xviii | Jina Mitra 120, 130, 134, 135, 146 |
| Jagat-svabhāva-vāda-parīksā 127 | Jinaprabha 1, 3, 9, 51 |
| Jaimini 81 | Jina Sena 14, 24, 28, 34 |
| Jaiminīya 33, 49, 51 | Jinendrabodhi xvii, 124 |
| Jaina xiii, xviii, | Jineśwara 37 |
| 2, 3, 10, 49, 59, 82, 104, 125 | Jitāri 49 |
| Jaina darsana 8, 38 | Jīva 8, 22 |
| Jaināgama List 46, 54 | Jivhāviñnāņa 59 |

| Jnāna | Page | Page |
|--|--------------------------------|---|
| Jäänabindu-prakaraṇa | Jāāna 4 | • |
| Jūāna Candra | Jāānabindu-prakaraņa 54 | |
| Jāāna-fri 137, 138 | Jñina Candra 51, 52, 146 | |
| Jana-śri 137, 138 Kangyur 72.73 Jana-śri Bhadra 117, 137, 138 Jüna-śri Bhadra 117, 137, 138 Jüna-śri Mitra 137, 138, 151 J. P. T. S. 58, 68 J. P. T. S. 58, 68 J. P. T. S. 58, 63 64, 66, 72, 76, 103, 146 Jyotividābharaņa 15 Karna 29, 30, 31 Kāraṇa 151 Karna 151 | Jñānagarbha 118, 120, 131 | Kāncī xx, 80, 81 |
| Jiāna-śrī Bhadra | Jñāna-prasthāna-śīstra 66 | Kāncipura xx, 102 |
| Jinana-árī Mitra | J ñāna -śrī 137, 138 | Kangyur 72.73 |
| Jāna-śrī Mitra . 137, 138, 151 Kanva . 68 J. P. T. S. . 58, 68 Kapila 20, 21, 127, 128 J. R. A. S. xix, 57, 58, 63, 64, 66, 72, 76, 103, 146 Kāraņā 29, 30, 31 Jyotirvidābharaņa . 15 Kāraņānupalabdhi . 111 Kabul . 139 Kāraņa viruddhopalabdhi . 111 Kabul . 139 Karnaipa . 70 Kalasa . 129 Karnaita xix Kālisa . 129 Karya 29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 Kārya 29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 Kalidāsa . 129 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 138 Kālidāsa . 81 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 138 Kalidāsa . 81 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 138 Kālišahkara . 81 Kārya-viruddhopalabdhi . 117 Kālišahkara . 48 Kārya-viruddhopalabdhi . 118 Kālišahkara . xviii Kāšria-vriti . 123 Kališahkara . 103 . 131 Kāšria-vriti . 123 Ka | Jñāna-śrī Bhadra 117, 137, 138 | Kaniska 62, 63, 64, 65, 66, 67, 78 |
| J. P. T. S. xix, 57, 58, 63, Kapila 20, 21, 127, 128 J. R. A. S. xix, 57, 58, 63, Kapilavastu 57 64, 66, 72, 76, 103, 146 Kāraņa 29, 30, 31 Jyotirvidābharaņa . 15 Kāraņaviruddhopalabdhi . 111 Kabul . 139 Kāraņa | Jñāna-árī Mitra 137, 138, 151 | TT |
| J. R. A. S. xix, 57, 58, 63, 64, 66, 72, 76, 103, 146 Kağılavastu 57 Jyotirvidābharaņa . 15 Kāraņa 29, 30, 31 K K Kāraņaviruddhopalabdhi . 111 Kabul . 139 Karna . 44, 128 Kāla . 129 Karņatja . 70 Kalasa . 129 Karņatja . xix Kālasa . 129 Kārya-29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 Kārya-29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 Kalidāsa . 129 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 138 Kālidāsa . 81 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 138 Kalikāla Gautama . 48 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 138 Kalikāla Gautama . 48 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 138 Kalikāla Gautama . 48 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 110 Kālikāla Gautama . 48 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 110 Kālikāla Sarvajāa . 44 Kāšikā-vṛtti . 123 Kālikāla Sarvajāa . 44 Kāšimīra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 136, 136, 137, 138, 139, 142, 146 | J. P. T. S 58, 68 | |
| Notirvidābharaṇa | | Kapilavastu 57 |
| Manala Gupta 15 Kāranānupalabdhi 111 1 | 64, 66, 72, 76, 103, 146 | Kāraņa 29, 30, 31 |
| K Kāraṇaviruddhopalabdhi 111 Kabul 139 Karṇa 44, 128 Kādambarī 34 Karṇa 151 Kālasa 129 Karṇatṇa 70 Kālasa 129 Karṇatṇa xix Kālasa 129 Karya 29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 Kārya 29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 Kālasa 58 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi 138 Kālidāsa 81 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi 138 Kalikāla Gautama 48 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi 138 Kālišahkarā 44 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi 130 Kālišahkarā-patrikā 44 Kāsikā-vrtti 123 Kālišahkarā-patrikā xviii Kāsmīra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 130, 131, 132, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kāsmīrian 89, 108 Kalyāṇa-kāṇḍa 140 Kassapiya 58 Kāsyapa 57, 58 Kamalakulisa 151, 152 Kāthāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kathāvatthuppakaraṇa-atṭtha-kathāvathuppakaraṇa-atṭtha-kathāvathuppakaraṇa-atṭtha-kathā athāvathuppakaraṇa-atṭtha-kathā athāva | Jyotirvidābharaņa 15 | |
| K Karma 44, 128 Kabul 139 Karņa 151 Kādambarī 34 Karņatīpa 70 Kāla 129 Karņāta xix Kālasa 129 Kārya 29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 Kālasa 12 Kārya kārņa-bhāva-siddhi 138 Kālidāsa 81 Kārya-kārana-bhāva-siddhi 138 Kalikāla Gautama 48 Kārya-kārana-bhāva-siddhi 130 Kalikāla Gautama 48 Kārya-kārana-bhāva-siddhi 131 Kalikāla Gautama 48 Kārya-kārana-bhāva-siddhi 131 Kalikāla Gautama 48 Kārya-viruddhopalabdhi 111 Kalikāla Sarvajā 44 Kāšmīra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 123 Kāšmīra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 130, 131, 132, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kāšmīrian 89, 108 Kāsyapā 58 Kāšyapā 58 Kāšyapā 58 Kāthāvathuppakaraṇa 60, 61 Kathāvathuppakaraṇa 60, 61 Kathāvathuppakaraṇa 60, 61 Kathāvathuppakaraṇa 60, 61< | Jyotişkāvadāna 15 | |
| Kabul 139 Karņa 151 Kādambarī 34 Karņaripa 70 Kādambarī 34 Karņāţa xix Kāla 129 Kārya 29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 Kalasa 12 Kārya etarņa-bhāva-siddhi 138 Kālidāsa 81 Kārya-kārṇa-bhāva-siddhi 138 Kālikāla Gautama 48 Kārya-kārṇa-bhāva-siddhi 110 Kalikāla Sarvajāa 44 Kārya-kārṇa-bhāva-siddhi 111 Kalikāla Sarvajāa 44 Kārya-kārṇa-bhāva-siddhi 110 Kalikāla Sarvajāa 44 Kārya-kārṇa-bhāva-siddhi 111 Kalikāla Sarvajāa 44 Kārya-viruddhopalabdhi 111 Kāsikā-vṛtti 123 123 125 Kālišahkarī-patrikā xviii Kāšmīra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 130, 131, 132, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kalpanā 15, 6, 13 Kāsmīrian 89, 108 Kāsmīrian 89, 108 Kalyāņa-kāṇḍa 14 Kāsyapīya 58 Kāsyapā 57, 58 Kamala-kīla 151, 152 Kathāvatthuppakaraṇa atth | 1 | - |
| Kabul | K | |
| Kādambarī | Kabul 139 | |
| Kalasa | Kādambarī 34 | |
| Kalasa . 12 Kāryahetu . 117 Kālāsoka . 58 Kārya-kāraṇa-bhāva-siddhi . 138 Kālidāsa . 81 Kāryanupalabdhi . 110 Kalikāla Gautama . 48 Kāryanupalabdhi . 111 Kalikāla Sarvajāa . 44 Kāryanupalabdhi . 110 Kalikāla Sarvajāa . 44 Kāryanupalabdhi . 111 Kalikāla Sarvajāa . 44 Kāryanupalabdhi . 111 Kalikāla Sarvajāa . 44 Kāryanupalabdhi . 111 Kālišakara . 44 Kāsimāruddhopalabdhi . 111 Kālišakara . 28 Kāsimāra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 130, 131, 132, 134, 135, 136, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kāsmīrian . 89, 108 Kalpanā . 1,5,6,13 Kassapīya . 58 Kalyāņa-kāṇḍa . 140 Kāsyapā . 58 Kalyāṇa-kāṇḍa . 140 Kāsyapāya . 57,58 Kalyāṇa Rakṣita . 130,131 Kāsyapāya . 65 Kamalasila 53, 126, 129, 146 Kathāvatthuppakaraṇa atthakathā atthā atth | Kāla 129 | Kārya 29, 30, 31, 110, 111, 117, 134 |
| Kālidāsa | Kalasa 12 | |
| Kalikāla Gautama . 48 Kāryaviruddhopalabdhi . 11 Kalikāla Sarvajāa . 44 Kāsikā-vṛtti . 123 Kālišahkara . xviii Kāsimīra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 130, 131, 132, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kalpanā . 109 Kāsmīrian . 89, 108 Kalpasūtra . 1, 5, 6, 13 Kāsmīrian . 89, 108 Kalyāņa-kāṇḍa . 140 Kāsyapa . 58 Kalyāṇa-mandira-stava . 14 Kāsyapā . 57, 58 Kalyāṇa Rakṣita . 130, 131 Kāsyapīya . 65 Kamalakuliśa . 151 Kāthākoṣa . 28 Kamala-śīla-tarka . 125 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla-tarka . 125 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā . 61 Kanabhakṣa . 46 Kātyāyanīputra . 64, 66 Kaṇāda Gupta . 104 Kaubhiṣaṇin-gotra . 9 Kaṇāda Tarkavēgīša . xviii Kaušāmbī . 74, 75, 102 | Kālāśoka 58 | Kārya-kārana-bhāva-siddhi 138 |
| Kalikāla Gautama . 48 Kāryaviruddhopalabdhi . 11 Kalikāla Sarvajāa . 44 Kāsikā-vṛtti . 123 Kālišahkara . xviii Kāsimīra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 130, 131, 132, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kalpanā . 109 Kāsmīrian . 89, 108 Kalpasūtra . 1, 5, 6, 13 Kāsmīrian . 89, 108 Kalyāņa-kāṇḍa . 140 Kāsyapa . 58 Kalyāṇa-mandira-stava . 14 Kāsyapā . 57, 58 Kalyāṇa Rakṣita . 130, 131 Kāsyapīya . 65 Kamalakuliśa . 151 Kāthākoṣa . 28 Kamala-śīla-tarka . 125 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla-tarka . 125 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā . 61 Kanabhakṣa . 46 Kātyāyanīputra . 64, 66 Kaṇāda Gupta . 104 Kaubhiṣaṇin-gotra . 9 Kaṇāda Tarkavēgīša . xviii Kaušāmbī . 74, 75, 102 | Kālidāsa 81 | Kāryānupalabdhi 110 |
| Kalińga 68, 104 Kāśmira xx, 62, 67, 108, 123, 125, 130, 131, 132, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kalpanā 109 Kāśmiria Kāśmiria 89, 108 Kalpanā 1, 5, 6, 13 Kāśmiria 183, 139, 142, 143, 146, 151 Kalpanā 109 Kāśmiria 89, 108 Kalyāṇa-kāṇḍa 140 Kāṣṭhāsaṃgha 9 Kalyāṇa-mandira-stava 14 Kāṣṭhāsaṃgha 9 Kalyāṇa Rakṣita 130, 131 Kāṣyapā 57, 58 Kamalakuliśa 151 Kāthākoṣa 28 Kamala Rakṣita 151, 152 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla-tarka 125 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā 61 Kamala-śīla-tarka 125 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā 61 Kanāda 46 Kāṭyāyanīputra 64, 66 Kaṇāda Gupta | Kalikāla Gautama 48 | |
| Kalinga 68, 104 Kāśmīra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 130, 131, 132, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kalpanā 109 Kāśmīrian 89, 108 Kalpanā 1, 5, 6, 13 Kāsmīrian 89, 108 Kalyāṇa-kāṇḍa 140 Kāsmāra xx, 62, 67, 108, 123, 125, 136, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 136, 131, 132, 134, 146, 151 Kalpanā 109 Kāśmīrian 89, 108 Kalyāṇa-kāṇḍa 14 Kāsmira xx, 62, 67, 108, 123, 125, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 134, 135, 136, 131, 132, 134, 135, 136, 134, 135, 136, 134, 135, 136, 134, 135, 134, 135, 134, 135, 134, 135, 134, 135, 134, 135, 134, 135, 134, 135, 134, 135, 134, 135, | Kalikāla Sarvajāa 44 | Kāśikā-vṛtti 123 |
| Kālīšankara xviii 130, 131, 132, 134, 135, 136, 136, 137, 138, 139, 142, 143, 146, 151 Kalpanā 109 Kāsmīrian 89, 108 Kalyāņa-kāṇḍa 140 Kāsmīrian 9 Kalyāņa-mandira-stava 140 Kāsyapa 57, 58 Kalyāņa Rakṣita 130, 131 Kāsyapa 57, 58 Kamalakuliśa 151 Kāthākoṣa 28 Kamalassīla 53, 126, 129, 146 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla-tarka 125 Kathāvatthuppakaraṇa-attha-kathā 01 Kamala-śrīla 129 Kathiwar 13, 34, 51 Kaņāda 46, 104 Kaubhiṣaṇin-gotra 9 Kaṇāda Gupta 104 Kauśāmbī 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgīša xviii Kaušika 75 | Kalinga 68, 104 | Kāśmīra xx, 62, 67, 108, 123, 125. |
| Kalpanā 109 Kāśmīrian 89, 108 Kalpasūtra 1, 5, 6, 13 Kassapīya 58 Kalyāņa-kāṇḍa 140 Kāṣṭhāsamgha 9 Kalyāṇa-mandira-stava 14 Kāṣṣthāsamgha 9 Kalyāṇa Rakṣita 130, 131 Kāṣṣyapīya 65 Kamalakuliśa 151 Kāṭṣyapīya 65 Kamalakuliśa 151 Kāṭṣyapīya < | Kālīśankara xviii | 130, 131, 132, 134, 135, 136, |
| Kalpasütra 1, 5, 6, 13 Kassapiya . 58 Kalyāņa-kāņḍa . 140 Kāṣṭhāsamgha . 9 Kalyāņa-mandira-stava . 14 Kāṣṭhāsamgha . 9 Kalyāņa Rakṣita . 130, 131 Kāṣyapa . 57, 58 Kamalakuliśa . 151 Kāthākoṣa . 28 Kamala Rakṣita . 151, 152 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla 53, 126, 129, 146 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā kathā . 01 Kamala-śīla-tarka . 125 Kathiwar . 13, 34, 51 Kanabhakṣa . 46 Kāṭyāyanīputra . 64, 66 Kaṇāda . 46, 104 Kaubhiṣaṇin-gotra . 9 Kaṇāda Gupta . 104 Kauśāmbī . 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgīśa . xviii Kauśika . 75 | Kālīśankarī-patrikā xviii | |
| Kalyāṇa-kāṇḍa . 140 Kāṣṭhāsaṅgha . 9 Kalyāṇa-mandira-stava . 14 Kāṣṭhāsaṅgha . 57, 58 Kalyāṇa Rakṣita . 130, 131 Kāṣyapīya . 65 Kamalakuliśa . 151, 152 Kathākoṣa . 28 Kamala Rakṣita . 151, 152 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla 53, 126, 129, 146 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā kathā . 01 Kamala-śrīla . 129 Kathāwar . 13, 34, 51 Kaṇāda . 46, 104 Kāṭyāyanīputra . 64, 66 Kaṇāda Gupta . 104 Kausāmbī . 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgīśa . xviii Kauśika . 75 | Kalpanā 109 | |
| Kalyāņa-mandira-stava . 14 Kāśyapa 57, 58 Kalyāņa Rakṣita . 130, 131 Kāśyapīya . 65 Kamalakuliśa . 151, 152 Kathākoṣa . 28 Kamala Rakṣita . 151, 152 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla 53, 126, 129, 146 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā . 01 Kamala-śīla-tarka . 125 Kathiwar . 13, 34, 51 Kaṇabhakṣa . 46 Kāṭyāyanīputra . 64, 66 Kaṇāda . 46, 104 Kaubhiṣaṇin-gotra . 9 Kaṇāda Gupta . 104 Kauśāmbī . 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgīša . xviii Kauśika . 75 | Kalpasútra 1, 5, 6, 13 | |
| Kalyāṇa Rakṣita 130, 131 Kāṣyapīya 65 Kamalakuliśa 151, 152 Kathākoṣa 28 Kamala Rakṣita 151, 152 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla 53, 126, 129, 146 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā 0 Kamala-śīla-tarka 125 Kathiwar 13, 34, 51 Kaṇabhakṣa 46, 104 Kāṭyāyanīputra 64, 66 Kaṇāda 46, 104 Kaubhiṣaṇin-gotra 9 Kaṇāda Gupta 104 Kauśāmbī 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgīśa xviii Kauśika 75 | Kalyāņa-kāṇḍa 140 | 1 |
| Kamalakuliśa | Kalyāņa-mandira-stava 14 | Kāśyapa 57, 58 |
| Kamala Rakşita 151, 152 Kathāvatthuppakaraṇa 60, 61 Kamala-śīla 53, 126, 129, 146 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā 01 Kamala-śīla tarka 125 Kathā 01 Kaṇabhakṣa 46 Kātyāyanīputra 64, 66 Kaṇāda 46, 104 Kaubhiṣaṇin-gotra 9 Kaṇāda Gupta 104 Kauśāmbī 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgīša xviii Kauśika 75 | Kalyāņa Raksita 130, 131 | , |
| Kamalaśila 53, 126, 129, 146 Kathāvatthuppakaraṇa-aṭṭha-kathā Kathā 61 Kamala-śrīla 129 Kathiwar 13, 34, 51 Kaṇabhakṣa 46 Kāṭyāyanīputra 64, 66 Kaṇāda 46, 104 Kaubhiṣaṇin-gotra 9 Kaṇāda Gupta 104 Kauśāmbī 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgiša xviii Kauśika 75 | Kamalakuliśa 151 | · · · · · · · · · · · · · · · · · · · |
| Kamala-śīla-tarka | Kamala Raksita 151, 152 | |
| Kamala-srīla | | - · · · · · · · · · · · · · · · · · · · |
| Kaņābhakṣa 46 Kātyāyanīputra 64, 66 Kaņāda 46, 104 Kaubhiṣaṇin-gotra 9 Kaṇāda Gupta 104 Kauśāmbī 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgiša xviii Kauśika 75 | Kamala-śīla-tarka 125 | |
| Kaṇāda 46, 104 Kaubhiṣaṇin-gotra 9 Kaṇāda Gupta 104 Kauśāmbī 74, 75, 102 Kaṇāda Tarkavēgiša xviii Kauśika 75 | Kamala-śrīla 129 | |
| Kaṇāda Gupta 104 Kauśāmbī 74,75, 102 Kaṇāda Tarkavēgiša xviii Kauśika 75 | Kanabhaksa 46 | |
| Kanada Tarkavēgiša xviii Kaušika 75 | Kaṇāda 46, 104 | |
| | Kaņāda Gupta 104 | - |
| Kāṇa Deva 71 Kavi 23, 25, 33, 47 | Kaņāda Tarkavēgiša xviii | |
| • | Kāṇa Deva 71 | Kavi 23, 25, 33, 47 |

| Page | Page |
|-------------------------------------|------------------------------------|
| Kāvyamālā 3 | Kṣānti Pāla 149 |
| Kāvyānuśāsanavṛtti 44 | Kşapanaka 15 |
| Kāvya-prakāśa-samketa 47 | Kşatriya 121 |
| Kāyaviññāṇa 59 | Kubja 81 |
| Kern, Prof 63 | Kukutasiddha 147 |
| Kevala 10, 15 | Kumārajīva 70, 71, 76 |
| Kevalajñāna 2, 4 | Kumārakalasa 136, 138, 141 |
| Kevalin 2 | Kumāralābha 67 |
| Khamba 32 | Kumāralabdha 67 |
| Kharataragaccha 3, 5, 13, 14, | Kumāra Nandi 54 |
| 49, 53 | Kumāra Pāla 44 |
| Kharataragaccha-pattāvalī 48 | Kumāraśrī 136 |
| Khri-ral xx, 135, 148 | Kumāra-śrī-bhadra . 125 |
| Khri-sron-deu-tsan 124, 129 | Kumārila 24, 26, 27. 28, 34, 81, |
| Khuddaka Nikāya 60 | 104, 105 |
| Khyab 92 | Kumārila Bhatta 81 |
| Kielhorn, Prof. F 123 | Kumbha 12 |
| King 62 | Kumuda-candra 14 |
| Kīrti 105 | Kumuda-candrācārya 38 |
| Klatt, Dr. J. 3, 5, 13, 14, 35, 38, | Kundakunda 9 |
| 39, 45, 48, 49, 53 | Kurukullaka 65 |
| Klog-skya-ses-rab-brtsegs 140 | Kuśīnagara 57 |
| Klon-rdol-gsun-hbum 148, 151 | Kuśinārā 57 |
| Knowledge 4, 10, 22, 40, 59, | Kusumapura 9 |
| 109. 112 | Kutārkika 81 |
| Kolhāpura 54 | Kwei-ke 76 |
| Konkana 137 | _ |
| Korunanda 103 | L |
| Korur 14 | Labrang xv, xvi, 89, 99, 118, 119, |
| Koşa-kāraka-śāstra 66 | 125, 130, 135, 138, 142 |
| Krakucchanda 57 | Laghīyastraya 26, 33 |
| Kratu 43 | Laghusamantabhadra 26, 37 |
| Krishnā 68 | Laghuṭīkā 50 |
| Kriyā-ratna-samuccaya 52, 53 | Laghuvrtti 52 |
| Krsnakānta xviii | Lakṣaṇa 54, 109, 129 |
| Kṛṣṇarāja 26 | Lalita Candra 119 |
| Kṛttikā 30, 31 | Lalitāditya xx, 125 |
| Kşamāśramaņa 13, 22 | Lalitavistara 64, 65 |
| Kṣaṇa-bhaṅga-siddhi 132, 133, 140 | Lama xx, 125, 148 |
| Kṣaṇa-bhaṅga-siddhi-vyākh- | Lamaism 78 , 124, 129, 151 |
| yā 133 | Lankāvatāra 64, 72 |

| Page | Page |
|---|---|
| Lankāvatāra sūtra 71, 72, 73 | 125, 130, 133, 136, 139. |
| Las 128 | 140, 141, 143 |
| Lassen, Mr 63 | Luna 112 |
| Laukāyatika 33 | |
| Laukika 16 | M |
| Law 62, 75, 80, 104 | Mādhavācārya 8, 26, 38, 66, 67, |
| Leipzig xiii | 68, 82, 105, 107, 138 |
| Leumann, Dr. E 6 | Madhu-südana Thakkura xviii |
| Lévi, Sylvain 63 | Madhyadeśa 103 |
| Lexicography 122, 140 | Madhyama 68 |
| Lha-bla-ma-shi-wa-hod 125 | Madhyamakāvatāra 140 |
| Lha-dwań-blo 118 | Mādhyamika 51, 66, 67, 68, 70, |
| Lha-lama-ye-seg-hod 148 | 71, 122, 124 |
| Lhan-cig-dmigs-pa-nes-pa 136 | Mādhyamika-kārikā 70 |
| Lhasa 142 | Mādhyamikā Vrtti 68. 70 |
| Lha-tsun-byan-chub 148 | Madhyānta-vibhāga-śāstra 73 |
| Library 147 | Madras xx, 68, 78, 80, 81, 82, |
| Licchavi 123 | |
| Life 68 | Magadha 3, 20, 57, 61, 69, 97, 103 124, 125, 136, 138, 139, 146, |
| Likeness 78 | 147, 148, 151 |
| Limitation 7 | M ā gadhī 3, 57 |
| Linga 14, 16, 29, 90, 91 | Magic 62 |
| Lion-cub 47 | Ma-grub 93 |
| Literature 57, 59, 121, 122, | Mahābhadra-kalpa 57 |
| 140 | Mahādeva Pandita xviii |
| Little Vehicle 63 | Mahākāla 14 |
| Locus 29 | Mahākośala 68, 71 |
| Logic xiii, xiv, xv, xvii, xviii, | Mahāmati 72 |
| xix, xx, xxi, 3, 4, 5, 6, 13, 14, | Mahā Pāla 135, 136, 149 |
| 51, 52, 54, 57, 59, 60, 61, 64, | Maharaja xv |
| 65, 67, 70, 71, 73, 74, 75, 77, | Mahārāja-Kanika-lekha 62 |
| 78, 89, 99, 101, 105, 107, 109, | Maharani xv |
| 117, 118, 119, 121, 123, 124, 125, 134, 136, 137, 138, 139, | Mahārāstra 80, 81 |
| 125, 134, 130, 137, 136, 139, 140, 141, 142, 151 | Mahāsamaya-sūtra 72, 73 |
| Logician 59, 72 | Mahāsāmghika 58, 65, 67 |
| Lohācārya 9 | Mahāvagga 59 |
| Lokāyata 62 | Mahāvamsa 57, 58, 61, 66, 67 |
| Lokottaravādin 65 | Mahāvibhāṣā 64 |
| London xiv, xv, 58, 59, 60, 61, | Mahāvihāra 65 |
| 68, 84, 89, 100, 101, 106, 107, | Mahavira 1, 2, 3, 6, 13, 14, 22, |
| 108, 109, 112, 117, 118, 120, | |
| | · · |

| Page | Page |
|---|---------------------------------|
| Mahāvīracarita 2 | Manual of Buddhism 57 |
| Mahāvīracaritra 45 | Manusamhita 103 |
| Mahāyāna 62, 63, 64, 65, 66, 74, | Māra 116 |
| 75, 78, 80, 129, 138, 145 | Mark 29, 49, 90, 99 |
| Mahāyāna-samparigraha-śās | Masu Raksita 149 |
| tra 74 | Mathurānātha xviii |
| Mahendra Sūri 47 | Mati 4, 10 |
| Mahesa Thakkura xviii | Maticitra 62 |
| Mahinda 58 | Matter 126 |
| Mahī Pāla 134, 135, 148, 149 | Max Müller 71.75 |
| Mahīśāsaka 65, 74 | Māyādevī 26 |
| Mahomedan xx, 151 | Mediæval xvii |
| Mahopādhyāya 5 | Medieval Logic xiii, xviii, xix |
| Maitreya xix, 57, 73, 74, 75, 78 | Medieval school i, xiii, xvii |
| Major term 16, 18, 29, 30, 31, 41, | Mediate 43 |
| 55, 76, 90, 91, 92, 93, 94, 95, | Medicine 62, 121 |
| 96, 97, 98, 99, 110, 112, 113, | Meditation 71, 104 |
| 136 | Meghadūta 81 |
| Malla 34 | Members 44 |
| Malladhāri 38, 51 | Menander 61 |
| Mallavadin xix, 34, 35, 131 | Mental 59 |
| Mallinātha 81 | Merutunga 1 |
| Mallisena 51 | Metaphysical Basket 58 |
| Malwa xviii, 14, 119 | Metaphysics xviii, 13, 151 |
| Manah-paryāya 4, 10, 41 | Method of discussion 117 |
| Manak 8 | Metre 84 |
| Manas 15, 40, 86, 87 | Middle Age xiv, xx |
| Ma-neg-pa 93 | Middle Country 103 |
| | Middle Path 68 |
| Mangala 126 Manibhadra 52 | Middle term 16, 17, 29, 30, 31, |
| Māṇikya Candra 35, 36, 47 | 33, 41, 55, 76, 77, 85, 90, 91, |
| Māṇikya Nandi 26, 28, 33, 34, 37, | 92, 93, 94, 95, 96, 97, 98, 99, |
| 40, 54 | 100, 110, 111, 112, 113, 114, |
| Mañjunātha 100 | 117, 136 |
| Manjuéri 80, 82, 83, 84, 123, | Mi-dmigg-pa 110, 134 |
| 125, 136, 142 | Mi-dmigg-pahi-gtan-tahigs 117 |
| Mańjuśri-mūla-tantra 69 | Mihirakula xix, 146 |
| Manoratha 75, 143 | Milinda 61, 62 |
| Manoviññāṇa 59 | Milinda-pañha 61, 62 |
| Mantra 139 | Mīmāmsaka 27, 32, 46, 54, 91, |
| Manu 103 | 93, 94, 105, 127 |

| P | age | ₹ Page |
|-------------------------------|--------------|---------------------------------|
| Mīmāmsi | 60 | Mutual non-existence 24, 25 |
| Mind 10, 15, 40, 86, 87, 1 | 109 | Myrobalan 80 |
| | 143 | Mythical 57 |
| Minor term 16, 17, 18, 29, | 30, | |
| 33, 41, 76, 90, 91, 93, 95, 1 | 10, | N |
| 112, | 136 | Nadia xxi |
| Mirok | 73 | Nāgadatta 80 |
| Misconception | 18 | Nāga Rakaita 137 |
| | xxi | Nāgaravācaka 8 |
| Mitra, Dr. R. L 36, 65, | | Nāgārjuna 67, 68, 69, 70, 71, |
| Mnon-sum 85, 99, 106, 108, 1 | 09, | 122, 145 |
| | 129 | Nāga Sena 61, 62 |
| Mnon-sum-ltar-nan | 99 | Nāgasena-Bhikṣu-sūtra 61 |
| Modern | EV ii | Nāga Seşa 122 |
| Modern school x | viii | Nägendra gaccha 47, 48, 51 |
| Mody Keshablal | 9 | Nag-hbans 141 |
| Moggaliputta 60, | , 61 | Ñag-tsho-lotsava 148 |
| Mokṣa 8, | 21 | Naigama 4, 11, 21 |
| Momentariness | 132 | Naigamābhāsa 43 |
| Momentary | 17 | Naiyāyika 46, 49, 54, 72 |
| Monastery xx, 89, 100, 118, 1 | 19, | Nālandā xx, 69, 71, 74, 79, 80, |
| 124, 125, | 151 | 81, 101, 102, 103, 119, 122, |
| Mongolia | 63 | 123, 124, 129, 145, 146, 147, |
| Morris, Dr | 59 | 150 |
| Mtshan-nid 129, | 134 | Nālendra 121 |
| Mucak | 74 | Nālo 69, 145 |
| Mudita Bhadra | 147 | Nāma 11 |
| Mnkhopadhyaya, Justice | 1 | Nāmamālā 45 |
| Asutosh | iii | Name 11, 85, 86, 99 |
| Muktākumbha | 133 | Nam-mkhahi-goq-can 127 |
| Muktāpīḍa | xx | Nāṇambā 37 |
| Mūla Sarvāstivāda | 65 | Nanda 3 |
| Mumbha | 32 | Nandī Sūtra 3, 4 |
| Muni Candra 38, | 50 | Nan-gi-khyab-pa 140 |
| Muniratna | 49 | Nārāyaņa Pāla 149 |
| Munisundara 6, 39 | , 53 | Narendra-śrī-jñāna 151 |
| Muñja | 37 | Ñāri 148 |
| Music 62, 104, | 121 | Naropa 151 |
| Muştiharîtakî | 80 | Nāsti 24 |
| Mu-tig-bum-pa | 133 | Nature 126, 127 |
| Mutual | 42 | Nava Dharma 8 '64, 72 |
| | | |

| Page | ge |
|------------------------------------|--|
| Naya 4, 8, 11, 15, 21, 22, 40, 43, | Non-self 22 |
| 51, 54, 55 | Nose 15, 87 |
| Nayābhāsa 43 | Notion 32 |
| Naya Pāla 141, 142, 148, 149 | Novice 62 |
| Negation 30, 98, 117 | Nyagrodhikā 9 |
| Negative 30, 31, 32, 92 | Nyāsa 124 |
| Nemicandra 46, 47, 69, 70 | Nyāya 13, 40, 52, 61, 62, 127 |
| Neminātha 39 | Nyāya-bhāsya xvii, 53, 86, 88 |
| Nepal 57, 63, 71, 121, 141 | Nyāyabhūsana 53 |
| Nibandhana 40 | Nyāyabindu xix, 41, 53, 54, 109, |
| Niebuhrstrasse xiv | 113, 114, 115, 116, 117, 120, |
| Nigamana 8, 16, 31, 42 | 129, 131, 135 |
| Niggaha 61 | Nyāyabindupiņdārtha 135 |
| Niggaha-catukka 61 | Nyāya-bindu-pūrva-pakṣo- |
| Nighantuśesa 45 | samksipta 129 |
| Nigliva 57 | Nyāyabindutīkā xix, 34, 35, 113, |
| Nigraha 61 | 114, 120, 131 |
| Nigrahasthāna 51 | Nyāya-dīpikā 54,82 |
| Nihksepa 55 | Nyāya-dvāra-śāstra 89 |
| Nīla netra 71 | Nyāya-kalikā 53 |
| Ni-ma-sbas 123 | Nyāya-kandalī 51 |
| Nirgrantha 104 | Nyāya-khaṇḍa-khādya 54 |
| Nirjarā 8 | Nyāya-kumuda-candrodaya 33 Nyāya-kusumāñiali 53 |
| Nirnaya 39, 40 | ,, |
| Nirnayasāgara 6, 8 | Nyāyālankāra xvii, 53 Nyāyālankāra-vrtti 53 |
| Nirvāņa 1, 2, 3, 8, 39, 57, 58, | |
| 62, 63, 64, 65, 66, 69, 73, 75, | |
| 82, 142, 145 | 37 |
| Nirvikalpaka 20 | 37 - 17 |
| Niryukti 6 | Nyayapradipa 54 Nyaya-pravesa 89, 90, 95, 102, |
| Nīti 61, 62 | 113, 114 |
| Noble truths 20 | Nyāya-pravešaka 53 |
| Nomenclature 12 | Nyāya pravešaka sūtra 48 |
| Non-conception 18 | Nyāya-praveša-tarka-šāstra 89, 102 |
| Non-distinguished 11 | Nyāya-praveśo-nāma pramā- |
| Non-entity 11 | na-prakarana 89, 102 |
| Non erroneous 94, 114 | Nyāya-rahasya 54 |
| Non-erroneous contradiction 114 | Nyāya-sāra 53 |
| Non-existence 10, 24, 25, 42 | Nyāya-śāstra xvii |
| Non-perception 110, 111, 134 | Nyāya-sūtra xvii, 11, 53, 86, 87, |
| Non-reflective 20 | 88, 116 |

| Page | Page |
|-----------------------------------|--------------------------------------|
| Nyāya-vārtika xvii, 53, 81, 85, | Padmā 122 |
| 88, 89 | Padmacarita 35 |
| Nyāyavārtika-tātparya-ţīkā xvii, | Padma-sambhava 129 |
| 66, 81, 86, 88 | Pag-sam-jon-zang av, 82, |
| Nyāya-vārtika-tātparya-tīkā- | 84, 119, 121, 122, 123, 124, |
| pariśuddhi xvii | 129, 130, 131, 134, 135, 136, |
| Nyāyāvatāra xix, 13, 15, 40, 46, | 137, 140, 142, 147, 148, 150 |
| 48, 76, 133 | Pakṣa 16, 17, 18, 29, 33, 41, 42, |
| Nyāyāvatāra-vivṛti 13, 19, 21, | 76, 90, 91, 112 |
| 46, 133 | Pakṣābhāsa 17, 32, 90, 112 |
| Nyāyāvatāra-vrtti 48, 49 | Pakṣa-prayoga 42 |
| Nyāyāvayava 85,89 | Pāla xx, 136, 148, 149 |
| Nyāyaviniścaya 26. 37, 40, 54 | Palhava 63 |
| Nyāya-viniścaya-vṛtti 37 | Pāli xiv, 3, 57, 58, 59, 60, 61, 63, |
| Nyāya-vṛtti xvii | 64, 67, 145 |
| Nyojits-ron 77 | Palibothra 150 |
| | Pali Buddhist Literature 57 |
| 0 | Pallava xix, xx, 81 |
| Object 29, 95, 99, 109, 110, 129 | Pamiangchi xv |
| Object of knowledge 40 | Paŭcasiddhāntikā 14 |
| Object of sense 40 | Pan-chen-shwa 78 |
| Ocean of discussions 36 | Pāṇḍavapurāṇa 23, 26 |
| Ocular 59 | Pandita xx, 49, 62, 71, 78, 79, 80, |
| Odantapura 125, 140 | 101, 108, 117, 123, 136, |
| Odantapurī xx | 138, 140, 141, 143, 144, 151 |
| Oldenberg, Dr 58, 59 | Pandita's Cap 79 |
| Olfactory 59 | Pāṇini 102, 122, 124 |
| Omniscience 141 | Pañjikā 38, 51 |
| Onesided 43 | Paññatti 58 |
| Onesided knowledge 40 | Parahita 143 |
| Opponent 40, 44, 98, 104, 112,116 | Parahita Bhadra 108, 132, 134 |
| Opposition 113 | Paralogism 8, 43 |
| Ordination 14 | Pāralokasiddhi xx, 132 |
| Organs of sense 10 | Paramahamsa . 48,50 |
| Orissa 80, 81 | Paramārtha xix, 76, 109, 146 |
| Orthodox 65, 103 | Paramārthasat 109 |
| Others 143 | Pāramārthika 15, 40, 41 43 |
| Oudh xix | Pāramārthika pratyakṣa 21 |
| P | Parārtha 41 |
| Th 19 (1 | Parārthānumāna 16, 31, 85, 109, |
| Padārtha 128 | 111 |

| Page | Page |
|--------------------------------------|-------------------------------------|
| Parārtha-vākya 106 | Pāvā 1 |
| Pariccheda 24, 39 | Pearl-oyster 40 |
| Parīkṣā 129 | Perceptible 30 |
| Parīkṣāmukha 28, 37, 54 | Perception 4, 10, 15, 16, 19, 29, |
| Parīkṣāmukha-pañjikā 28, 37 | 40, 54, 85, 86, 88, 89, 90, 99, |
| Parīkṣāmukha-śāstra 28 | 105, 106, 108, 109, 110, 111, |
| Parīkṣāmukha-sūtra 26, 28, 29, 33, | 112, 129, 137, 139 |
| 40 | Perfect 41 |
| Parisistaparvan 1, 45 | Perfection 71, 146 |
| Parivrājaka 103 | Perfect knowledge 109 |
| Paroksa 4, 9, 10, 15, 28, 29, 40, | Permanence 128 |
| 41, 54 | Permanent 128 |
| P ār śva 63 | Personal Testimony 16 |
| Pārśvanātha 1, 14, 125 | Pervaded 29, 30, 31 |
| Pārśvanātha-caritra 35, 36, 47 | Pervader 29, 111 |
| Pārtha Sārathi 81 | Pervasion 29 |
| Pārtha Sārathi Micra 81 | Peshwar xix, 74, 75 |
| Partially 92 | Peterson, Professor xiii, xx, 2, 3. |
| Particle 95 | 5, 9, 13, 14, 22, 23, 24, 26, |
| Particular 11, 17, 32, 86, 115 | 28, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 44, |
| Particularity 128 | 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, |
| Particular property 11 | 54, 109, 113, 114, 131 |
| Parts of a syllogism 42, 85, 89 | Petitio Principii 70 |
| Party 93 | Phakkikā-śāstra xvii |
| Pāṭaliputra xviii, 9, 26, 28, 58 | Phala 28, 128 |
| Patan 35 | Phalavardhigrāma 39 |
| Patafijali 122 | Phani Candra 69 |
| Pathak, K. B. 26, 28, 34, 105, 114 | Phases 33 |
| Pātharghāṭā 150 | Philosophy 78 |
| Pațiccasamuppāda 59 | Phodang xv, xvi |
| Pātimokkha 78 | Phyi-rol-gyi-don 129 |
| Patififia 61 | Phyi-rol-gyi-don-grub-pa-ces- |
| Patna 9 | bya-wahi-tshig-lehur 130 |
| Pātra Kesari 28 | Phyogs 90 |
| Pātra Kesari Svāmi 28 | Phyogs-glan 80 |
| Patta 38 | Phyogs-ltar-snan 90 |
| Pattadhara 5 | Piety Mart 147 |
| Pattāvalī 1, 3, 5, 6, 9, 13, 14, 49, | Pingala-netra 71 |
| _ 53, 55 | Piṭaka 80, 103, 121 |
| Pattāva ī-vācanā 3 | Pitakatraya 58 |
| Paudgalika 17 | Pitakattaya 58 |

| Page | Page |
|---|--|
| Place 29 | Pramāṇa 4, 8, 9, 10, 11, |
| Poet 25, 123 | 15, 21, 22, 29, 40, 43, 51, 54, |
| Poetry 62 | 55, 84, 106, 108, 129, 132, 134 |
| Pole 32 | Pramāņamīmāmsā 26, 45 |
| Polemic 77 | Pramāṇa-naya - tattvā - lokā- |
| Polity 62 | lankāra 38, 39, 41, 42, 50, 51 |
| Poons 28 | Pramāṇa-nirṇaya 54 |
| Positive 92 | Pramāṇa-parīkṣā 27, 54, 132 |
| Posterior 30, 31 | Pramāņa-samuccaya xvii, 80, 82, 83, 84, 85, 86, 87, 88, 100, |
| Pothi 125 | 108 |
| Poussin, Louis De La Vallee 70, | Pramāņa-samuccaya-tīkā xvii, 124 |
| • | Pramāna-samuecaya-vrtti xvii, 100 |
| 106, 108 | Pramāṇa-śāstra xvii |
| Prabandha-cintāmaņi 14, 34 | Pramāna-śāstra-praveća 100 |
| Prabhācandra 23, 24, 28, 33, 34, 48, 82 | Pramāṇa-siddhi 106 |
| • | Pramāṇa-sūtra-samuccaya 84 |
| Prabhākara 27, 34 Prābhākara 33, 54 | Pramāṇa-svarūpa 28, 39 |
| | Pramāṇa-vārtika 53, 106, 118, |
| Prabhāmitra 146 Prabhāvakacaritra 14, 35, 38, 39, | 124, 135, 142 |
| 45. 48 | Pramāņa-vārtika-kārikā xvii, 103, |
| | 105, 106, 107 |
| Prācīna 5 Prācīna Gotra 5 | Pramāņa-vārtikālankāra xviii, |
| Practical 11, 15, 40 | 135, 141 |
| Practical efficiency 110 | Pramāņa-vārtikālankāra-tīkā |
| Practice 71 | xviii, 137, 141 |
| Pradhāna 126 | Pramāņa-vārtika-pañjikā xvii, 118, |
| Pradhvamsābhāva 24, 42 | |
| Pradyumna 14, 35, 36, 45 | Pramāņa-vārtika-pānjikā-tīkā xvii, 119 |
| Prāgabhāva 24, 42 | Pramāna-vārtika-tīkā xviii, 142 |
| Praistha Pāla 149 | Pramāna-vārtika-vṛtti xvii, 107, |
| Prajnākara 27, 53 | 124 |
| Prajfiākara Gupta xviii, 135, 141 | Pramāņa vinišcaya 107, 108, 132, |
| Prajnākara Mati 135, 151 | 138 |
| Prajñāpāramitā-sūtra 147 | Pramāņa-viniscaya-tīkā 132, 138 |
| Prajnaptivadin 65 | Prameya-kamala-mārtanda 28, 33, |
| Prajñāvarma 120 | 34, 54 |
| Prakaraņa 9,45 | Prameya-ratna-mālā 28, 37, 46 |
| Prakā-a 54 | Prasamarati 9 |
| Prāk _ī ta 3, 4, 14 | Pratibandhasiddhi 144 |
| | |

| | | Page | | Page |
|--|--|---|--|---|
| Pratijñā | 7, | , 42, 61, 74 | Public opinion . | 90 |
| Pratijãā-vib | hakti | 7 | Pūjāprakaraņa . | 9 |
| Pratisedha | | 30 | Pundravardhana . | 148 |
| Pratisthana | • • | 6 | Punjab | . xix, 67 |
| Prativādi | | 40, 44 | Purāņa . | 62 |
| Pratyabhijñ | āna 29, | , 40, 41, 54 | Purandara . | 43 |
| Pratyabhijfi | .ānābhāsa | 32 | Pure Logic | . 74, 78 |
| Pratyakşa 4 | , 9, 10, 15, | 28, 29, 49, | Pūrņaka . | 63 |
| 5 4, 74, | 85, 99, 105 | , 106, 109, | Pūrņimāgaccha . | 45 |
| | | 129 | Purusa . | 127 |
| Pratyakṣābh | iāsa | 32, 99 | Purușa-parikșā . | 127 |
| Pratyakşa-s | varūpa | 40 | Pūrva . | . 5, 30, 31 |
| Pratyaksa-v | yav a sthā | 108 | Pürvaśaila . | 65 |
| Pravacana-s | āroddhāra-v | rtti 37 | Pustakapāthopāya | 134 |
| Prayāga | | 71 103 | Pusyā . | . 30 |
| Prāyaścitta | | 26 | | |
| Predicable | | 93 | Q | |
| Predicate | 16, 29, | 90, 91, 92 | Quality | 43, 93, 95, 128 |
| Preface | | xiii | Questions of King | |
| Premchand | | 9 | 1 | 59 |
| Premise | • • | 96 | | . 81, 133 |
| Presidency (| College | x vi | | |
| President | • • | 44 | R | |
| Presumption | | 10 07 | Raghunātha Sirom | ani xviii |
| | ı | 10, 87 | I ragiiunama onioni | |
| Priesthood | ı | 65, 103 | 1 " | xviii |
| Priesthood Prince of poo | • • | • | Rahasya . | |
| | • • | 65, 103 | Rahasya . Rāhuvratin . | xviii |
| Prince of poo | ets | 65, 103 81 | Rahasya . Rāhuvratin . Rājagaccha . | xviii |
| Prince of poor | ets | 65, 103 81 13 | Rahasya . Rāhuvratin . Rājagaccha . Rājagirīya . | xviii 104 . 35, 36 58 |
| Prince of poor | ets | 65, 103 81 13 30, 31 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha | xviii 104 35, 36 58 |
| Prince of poor Principles Prior Probability | ets | 65, 103 81 13 30, 31 10 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rājagrha | xviii 104 |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure | ets | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rājagrha | xviii 104 35, 36 58 |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor | ets xiii, 124 | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara | . xviii . 104 . 35, 36 . 58 . 3, 58 . 149 . 38, 48, 51, 52 xx |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor Proof | ets xiii, 124 | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 , 112, 118 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara Rājataranginī | |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor Proof Properties | ets xiii, 124 | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 , 112, 118 11 62 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara Rājataraṅgiṇī | |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor Proof Properties Prophecy | miii, 124 44, 90, 91, | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 , 112, 118 11 62 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara Rājataraṅginī Rājavārtika Rajgir | |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor Proof Properties Prophecy | miii, 124 44, 90, 91, | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 , 112, 118 11 62 42, 44, 61, | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara Rājataranginī Rājavārtika Rajgir Rajgutana | |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor Proof Properties Prophecy Proposition | ets xiii, 124 44, 90, 91, 7, 16, 31, 4 76, 90, 9 | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 , 112, 118 11 62 42, 44, 61, 95, 96, 112 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara Rājataraṅgiṇī Rājavārtika Rajgir Rajputana Rajshahye | |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor Proof Properties Prophecy Proposition Prosody | ets xiii, 124 44, 90, 91, 7, 16, 31, 4 76, 90, 9 | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 , 112, 118 11 62 42, 44, 61, 05, 96, 112 140 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara Rājataranginī Rājavārtika Rajgir Rajputana Rajshahye Raksita | |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor Proof Properties Prophecy Proposition Prosody Proximity | ets xiii, 124 44, 90, 91, 7, 16, 31, 4 76, 90, 9 | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 , 112, 118 11 62 42, 44, 61, 95, 96, 112 140 109 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara Rājataraṅgiṇī Rājavārtika Rajgir Rajputana Rajshahye Rakṣita Ral-pa-can | |
| Prince of poor Principles Prior Probability Procedure Professor Proof Properties Prophecy Proposition Prosody Proximity Pythvi | ets xiii, 124 44, 90, 91, 7, 16, 31, 4 76, 90, 9 | 65, 103 81 13 30, 31 10 40 4, 129, 146 , 112, 118 11 62 42, 44, 61, 95, 96, 112 140 109 2 | Rahasya Rāhuvratin Rājagaccha Rājagirīya Rājagrha Rāja Pāla Rājaśekhara Rājataraṅginī Rājavārtika Rajgir Rajputana Rajshahye Rakṣita Ral-pa-can Rāma | |

| | Page | | Page |
|---------------------------|------------------|------------------------------------|----------------------|
| Ran-bshin | 110, 134 | Records | 13, 66 |
| Rań-bshin-brtag-pa | 127 | References | 57 |
| Ran-bahin-gyi-gtan-tship | g <u>s</u> . 117 | Reflective | 20 |
| Ran-don-gyi-rje-dpag | 85 | Refutation 21,89 | 98, 116, 131 |
| Ran-don-gyi-rjes-su-dpag | g-pa 108 | Relation | 96 |
| Ran-gi-don-rjes-su-dpag- | ра . 106 | Relative extension | 92 |
| Ran-lag-tshad-ma | 129 | Release | 8 |
| Rasa Pāla | 149 | Reliable authority | 4, 10 |
| Rāstrakūta | 26 | Religion | xviii, 13, 78 |
| Rathavirapura | 2 | Remoteness | 109 |
| Ratnākara | 151 | Research Society | 76, 133 |
| Ratnakarandaka | 23, 24 | Resident | xvi |
| Ratnākara Sānti | 140, 151 | Respondent | 44 |
| Ratnakīrti | 140 | Restraint | 8 |
| Ratnaprabha 38, 46, 5 | 0, 131, 133 | Result | 43 |
| Ratnarañjaka | 147 | Rgyal-dwan-blo-gros | 124 |
| Ratnaraśmi | xx | Rgyal-wa-can | 137 |
| Ratnasāgara | 147 | Rgyu-dan-libras-buhi- | io- wo - |
| Ratna-sekhara | 52 | grub-pa | 138 |
| Ratnavajra | 139, 151 | Rgyud-gshan-grub-pa | |
| Ratnāvalī | 68 | Rgyud-gshan-grub-pal | ji-þgrel- |
| Ratnāvatārikā | 51 | þś a d | 121 |
| Ratnāvatārikā-pañjikā | 51 | Rgyud-pa | 129 |
| Ratnāvatārikā-tippana | 51, 52 | Rhetoric | |
| Ratnodadhi | 147 | Rhys Davids, Dr. 5 | |
| Raudrī patrikā | xviii | 61, 62, 64 | 1, 66, 67, 103 |
| | x, 123, 124 | Right-hand | 145 |
| Rdo-rje-rgyal-mtshan | 124 | Rigg-ldan-rgyal-po | 100 |
| Rdsas | 128 | Rigg-pa-can | 127 |
| Real | 43, 109 | Rigs-pa-grub-pahi-sgr | on-ma 123 |
| Reality | 66 | Rigg-palii-sbyor-wa | 139 |
| Reason 4, 7, 16, 30, | 31, 33, 41, | Rigg-pahi-thigg-pa | 109 |
| 74, 90, 91, 92, 94 | 1, 99, 100, | Rigs-pahi-thigs-pahi- | lon - |
| | 110, 111 | þ <u>s</u> du <u>s</u> -pa · · | 135 |
| Reasoning 10, 17, 59, | 60, 73, 74, | Rigg-pahf-thigg-pahi | phyog ₂ - |
| 75, 77, 90, 91, 94, 9 | | s na-ma-mdor -þ <u>s</u> di | |
| 112, 114, 110 | 3, 123, 139 | Rigg- pahi- thigg- pahi | |
| Recluse | 60 | cher-hgrel-wa | 131 |
| Recognition 29 | 40, 41, 54 | Rigg-pahi-thigg-pa rgy | |
| Recognition of similarity | 88 | hgrel-wa | 120 |
| Recollection 29, | 40, 41, 54 | Rigg-pahi-yan-lag | 85, 89 |

| Page | Page |
|-----------------------------------|-------------------------------------|
| Rin-chen-rdo-rje 139 | Sabda-Brahma-parīkṣā 127 |
| Rjes-dpag-ltar-snan 99 | Sabdānumāna 85 |
| Rjeg-su-dpag 99 | Sabdānuśāsana 35 |
| Rjes-su-dpag-pa 129 | Sabhāpati 44 |
| Rjes-su-hgro-wa-med 97 | Sabhya 44 |
| Rjes-su-ligro-wa-phyin-ci-log - | Sacrifice 43, 147 |
| pa 97 | Şaddarsına 49 |
| Rjusütra 4, 11, 21 | Şaddarsanasamuccaya 48, 49, 50, |
| Rjusūtrābhāsa 43 | 52, 53 |
| Rnam-par-rig-pa-tsam-ñid-du- | Şaddarsana-samuccaya-vrtti 52, |
| grub-pa 140 | 53, 13 3 |
| Rock 81 | Saddharma-puṇḍarīka 64 |
| Rockhill, Mr 66, 124 | Sādhana 29, 90 |
| Rohiņī 30, 31 | Sādhāraņa 93 |
| Ronki 76 | Sādharmya 17, 31, 90,96 |
| Ronshiki 76 | Sādharmya-dratāntābhāsa 19, 96 |
| Ronshin 76 | Sādharmyavat 112 |
| Ŗşabhadeva 1 | Sādhu 7 |
| Ŗşibhāṣita-sūtra 6 | Sādhya 16, 18, 19, 29, 76. 90 |
| Reimandala-prakarana-vetti 6 | Sādhyasama 70 |
| Rtags 99 | Şad-lakşana 134 |
| Rtog-gehi-skad 138 | Sadvāha 68 |
| Rtsod-pahi-khyu-mehog 80 | Sāgaracandra 47 |
| Rtsod-pahi-rigs-pa 117 | Sāgarendu 47 |
| Rtsod-pahi-rigs-pahi- h brel-pa | Sahacara 30, 31 |
| -don-rnam-par-h byed -pa 125 | Sahāvalambha-niścaya 136 |
| Rtsod-pahi-rigs-pahi-hgrel-wa 120 | Saint 80, 83, 109 |
| Rucidatta xviii | Saka 1, 14, 26, 28, 34, 51, 63, 131 |
| Rudra 14 | Sakābda 63 |
| Rudra Nārāyaņa xviii | S'ākhā 8 |
| Rudra Nyāyavācaspati xviii | Sakala 41 |
| Rugged hand 81 | Sākala 75, 146 |
| Rules of debate 44 | S'akra 12, 43 |
| Russia 131 | Sakrāditya 145, 146 |
| | Sakti\ 12 |
| 8 | Sakya 89, 125 |
| Sabalā 32 | Sakyabodhi xvii, 119 |
| Sabarasvāmi 27, 34 | Sakya-hod 136, 138, 140, 141 |
| Sabbatthi 58.66 | Sakya Muni 57, 116 |
| Sabda 4, 12, 15, 16, 21 | Sākya-simha 121 |
| Sabdābhāsa 43 | Sakya-śrī Paṇḍita 151 |

| Page | Page |
|--|------------------------------------|
| Sāla Candra 69 | Samvat 35, 36, 37, 38, 39, 44, 45, |
| Sālikā Nātha 54 | 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, |
| Salvation 8, 21, 38, 39, | 55, 131 |
| 83 | Samvrti 43 |
| amabhirudha 4, 12, 21 | Sāmvyavahārika 40 |
| Samabhirudhabhasa 43 | Samyaktvaprakarana 46 |
| Sambhūtivijaya 5 | Samyaktvaprakāśa 28 |
| Samādhirāja 64 | Sam-ye 124, 125 |
| Samāja-guhya 147 | Sanātana 136 |
| Samana 13 | Sangha 103 |
| Samantabhadra 22, 23, 24, 25, | Sanghabhadra 66,76 |
| 27, 54 | Sanghārāma 67,74, 145 |
| Samantapāsādikā 76 | Sankantika 58 |
| Sāmānya 17, 32, 54, 82, 95, 109, | S'ankara 23 |
| 128 | Sankarācārya xx, 23 |
| Sāmānya-dūṣaṇa-dik-prakā <ikā 121<="" td=""><td>Sankarānanda xviii, 142</td></ikā> | Sankarānanda xviii, 142 |
| Sāmānya-lakṣaṇa 109 | Sankara Svāmin 89, 101, 102 |
| Samaraiccakahā 49 | Sanskrit 3, 15 |
| Samāropa 40 | Sanskrit Buddhist Literature |
| Samatața 102 | 63, 64 |
| Samavāya 129 | Sāntakara Gupta 101 |
| Samavāyābhāva 24 | Santānāntara-siddhi 117, 121 |
| Samayabhedoparacana-cakra 119 | Santānāntara-siddhi-ṭīkā 121 |
| Sambandha 128 | Sānta Raksita 79, 124, 125, 126, |
| Sambandha-parīkṣā 118, 120, 143 | 129, 130, 148 |
| Sambandha-parīkṣānusāra 142 | Santati 129 |
| Sambandha-parīkṣā-ṭīkā 120 | Sänti Bhadra 136, 140 |
| Sambandha-parīkṣā-vṛtti 118 | Santinatha xx, 22, 109, 131 |
| Sambhava 10 | Santipa 140 |
| Samgraha 4, 11, 21 | Sānti-ṣena 37 |
| Samgrahābhāsa 43 | Santi Sūri 37 |
| Sāmkhya xix, 27, 33, 46, 49, 51, | Sāntyācārya 37 |
| 62, 65, 91, 95, 125 | Saptabhangi 51 |
| Sāinkhya-kārikā 83, 95 | Saptabhangi-naya 8, 24, 43, 51 |
| Sammati-tarka-sūtra 14, 36 | Sapta-bhangi-tarangini 8 |
| Sammitīya . 65, 66 | Saptadaśa-bhūmi-śāstra-yogā- |
| Sāmprata 12 | cārya 72, 73 |
| Samsāra 129 | S'araha 68 |
| Samsaya 40 | Sarasvatī iii, 103 |
| S'āmu Pāla 149 | Sarasvatīgaccha 6, 9 |
| Samvara 9 | Sāriputra 145 |

| Page | Page |
|-----------------------------------|--------------------------------------|
| Sarvadarsana-samgraha 8, 26, 38, | Science 13, 59, 62, 139 |
| 66, 67, 68, 82, 105, 107, 138 | Schlagintweit, Dr. 71, 73 |
| Sarvajña Deva 134, 135 | Scripture 4, 15, 16, 29, 32, 40, 41, |
| Sarvajña Mitra 124 | 58, 114, 121, 129 |
| Sarvājña-siddhi-kārikā . 141 | Scriptural method 22 |
| Sarvajna-śrī Raksita 89 | Scriptural testimony 16 |
| Sarvarājagaņi 3 | Sculptor 145 |
| Sarvāstivāda 65, 66, 75, 140 | Scythian 62 |
| S'asi 112 | Second Council 58 |
| S'askya 89, 100 | Sect 2, 58, 65, 66, 67, 74, 75 |
| Sāstra 82, 83, 84, 89, 100, 103, | Seish 75 |
| 106, 139 | Self 22, 143 |
| Sāstraja 16 | Self-conscious 22 |
| Sastra on the grouped infer- | Self-consciousness 109 |
| ences 8.4 | Self-evidence 128, 129 |
| Sastri, Gangadhara 81 | Sel-wa-grub-pa 143 |
| Sastri, Hara Prasad 140, 141, 150 | Semblance 17, 28, 116 |
| Sat 109 | Semblance of reason 18 |
| Sataka śāstra 71 | Semblance of refutation 21, 116 |
| Sata-sastra-vaipulya-vyākhyā 102 | Sen-dkar 136 |
| Sātavāha 68 | Sensation 111 |
| Sātavāhana 68 | Sense 10, 29, 85, 95, 99, 109, 129 |
| Satru 12 | Sense-organ 40, 86, 87, 127 |
| Satruñjaya 34 | Sense-perception 10 |
| Sauddhodani 46, 53 | Separation 49 |
| Saugata 17, 27, 33, 46, 54 | Separation unshown 21 |
| Sautrāntika 65, 66, 67 | Sermon Basket 58 |
| Sāvaka 60 | Ser-skya-pa 127 |
| Savant xvi | Serviceable 95 |
| Savikalpaka 20 | S'eșa 122 |
| <u>Sbas</u> 130 | Seg-pahi-dge-gnag 84 |
| S. B. E. zeries 58, 59, 61, 62 | Seg-rab 125 |
| Schiefner, A. xv, 66, 67, 68, 69, | Seg-rab-hbyun-gnag-sbag 135 |
| 70, 71, 72, 74, 80, 81, 82, 103, | Seg-rab-sdon-bu 69 |
| 106, 118, 119, 121, 123, 130, | Sewell, Mrxx, 68, 81 |
| 131, 134, 135, 136, 137, 139, | Sgra 129 |
| 140, 141, 142, 145, 148, 150, | Sgrahi-tshans-pa-brtag-pa 127 |
| Sahalar | Sgra-rje-dpag 85 |
| Scholar | Shalu 78 |
| School xvii, xviii, 66, 104, 140 | Sha - ma - kun - laş-htuş-pahi- |
| School of thought 62 | ligrel-wa 100 |

| Page | Page |
|-----------------------------------|---|
| Shan-shun 137 | Simsapā 5, 31, 110, 111 |
| Shawl 79 | Simultaneity 29 |
| Sherbatski, F. J. 109, 114, 131 | Simultaneous 30, 31 |
| Shi-wa-litsho 124 | Sitaprabha 123 |
| Shu-chen 120, 121, 130, 131, 135, | Si-wahi-dge-gnas 100 |
| 140 | Skad-cig-ma-hjig-pa-grub-pa 132 |
| Sh'-yen-töh-cia 68 | Skad-cig-ma-hjig-grub - pahi - |
| Siam 63 | rnam-ligrel 133 |
| Siamese edition 61 | Skyes-bu 127 |
| Siddha 35 | Skyes-bu-brtag-pa 127 |
| Side 44 | Sky-lotus 18 |
| Siddha-Hema-śabdānuśāsana- | Sloka-vārtika 27, 54 |
| bṛhat-ṭīkā 35 | Sloka-vārtika-bhāsya 54 |
| Siddhajayantī-caritra-ţīkā 2 | Smarana 40, 41 |
| Siddhanta 3 | Smaraṇābhāsa 32 |
| Siddharāja 47 | Smith, Vincent A. 58, 61, 63 |
| Siddharsi 46, 49 | Smṛti 29, 54 |
| Siddhasena 15, 22, 37 | Sñes-than 142 |
| Siddhasena Divākara xix, 13, 14, | Sophism 60 |
| 15, 22, 40, 46, 76 | Sophist 59, 60, 62 |
| Siddhasena-divākara-vyāk- | Sophistry 60 |
| hyānaka 46 Siddhesene Geni (192) | Sorrow 49, 50 |
| Siddhasena Gani 9, 22 | Sotaviññāna 59 |
| Siddhatthika 58 | Soul 8, 10, 15, 22, 41, 43, 44, 60, |
| Siddha-vyākhyānaka 46 | 72, 91, 95, 112, 127, 128, 129 |
| Sign 16, 29 | Soul-less 8 |
| Sikkim xv, xvi, 89, 99, 118, 119, | Sound 127, 129 |
| 125, 130, 135, 138, 142 | Source of knowledge 106, 108, 112 |
| Sīla 123 | • |
| Sīlabhadra 101, 102, 103, 146 | Specific property 11, 43 Spell 62 |
| Silāditya 34 | Spell 62 Spyi 128 |
| Silao 150 | Srāddha-pratikramaņa-sūtra- |
| Silasamgama 150 | vrtti 52 |
| Silver 40 | Sragdharā-stotra 70, 121, 124, 150 |
| Simha 123, 124 | Sragdharā-stotra-tīkā 150 |
| Simhagiri 22 | |
| Simhasūri 22 | Sramaņa 60 Srāvaka 137 Sacetha Pāla |
| Simhasisuka 47 | Srestha Pala 149 |
| Simhavaktra 80 | Srī 106, 136, 140 |
| Simha-vyāghrī-lakṣaṇa 48 | Srī Dhānyakataka xx |
| Similar 88 | Srīdhara 51 |
| | 1 |

| | | Page | | | Page |
|----------------------------|-------|---------------|-----------------------------------|---------|------------------------------|
| Srī Harşa | | xx, 123 | Succession | • • | 29, 118 |
| Sri Harşa Deva | | xx, 132 | Such-like | • • | 12 |
| Srī-jñāna | | 138, 148, 151 | Sudhākara Dviv | vedi | 14 |
| Srikantha | | xvii, 53 | Sudharma Svān | ni | 2 |
| Srīlabdha | | 67 | Sudurjaya | •• | 80 |
| Srīparvata | | 68 | Sugata | •• | 54, 131 |
| Srī-śaila | | 68 | Suggestiveness | • • | 32 |
| Sron-tsan-gam-po | | 104, 105 | Sugiura, Dr. | xiv, 73 | , 74, 75, 76, |
| Srughna | | 71 | | | 89, 101 |
| Sruta | | 4, 10, 22 | Suhrllekha | • • | 68 |
| Srutakevalin | | 5 | Suitable | • • | 12 |
| Sruti | | 129, 130 | Sukhabodhikā t | ikā | 13 |
| Sruti-parīkṣā | •• | 130 | Suk rtasa mkīrtar | a. | 48 |
| Statement | • • | 91, 112 | Sultanganj | •• | 150 |
| Stein, Dr. | •• | хх | Sumati | • • | 135, 141 |
| Steinthal, Paul | • • | 60 | Sumati-kîrti | • • | 131 |
| Sthānāṅga-sūtra | • • | 4, 8, 11 | Sum-pa | • • | 137 |
| Sthāpanā | | 11 | Sum-pahi-chos-b | yun | 63 |
| Sthavira | | 65, 67, 151 | Suń | • • | 64 |
| Sthira | | 128 | Sunāyakasrī | • • | 151 |
| Sthi ra-dū ṣaṇa | | 140 | Sunaya-śri Mitre | ı | 136 |
| Sthiramati | | 121, 146 | Sung-yun | • • | 67 , 6 9 |
| Sthulabhadra | | 3 | Sun-libyin | | 98 |
| Sthillahasta | • • | 81 | Sun-libyin-ltar-sr | an-wa | 99 |
| Stimuli | • • | 95 | Superimposition | • • | 40 |
| Ston-gshon | • • | 100 | Superior | • • | 151 |
| St. Petersburg | • • | 114 | Surendrabodhi | •• | 135 |
| Straight expression | n | 11 | Sureśvara | • • | 105 |
| Study | | 10 | Sureśvarācārya | •• | 105 |
| Stūpa | | xx, 68 | Sūri | 39, | 45, 53, 55 |
| Suali, Dr. | | 49, 52, 133 | Surname | • • | 46, 48 |
| Subhakara Gupta | • • | 151 | Sūrya-prajňapti-s | ūtra | 6 |
| Subhatunga | | 26 | Sūtra 8, 10, 45, | 103, 12 | 1, 1 3 9, 14 0 |
| Subhūti-śānta | • • | 140 | Sütra-kṛtānga-nir | yukti | 8 |
| Subhūti-árī | • • | 118 | Sütra-kṛtāṅga-süt | ra | 6 |
| Subh ūti- śrī-śānti | • • | 106 | Sütr ālankāra tīk ā | | 73 |
| Subject | •• | 29, 90, 91 | Sütränta | • • | 67 |
| Subsequent | •• | 42 | Sūtra upadeša | •• | 63 |
| Subsequent non-ex | ister | nce 24, 25 | Sutta | | 58 |
| Substance | 43 | , 93, 95, 128 | Suttanta | •• | 67 |
| Subtle | • • | 12 | Sutta piṭaka | 58, | 59, 60, 63 |

| Pag | |
|---|-------------------------------------|
| Suvarņa-prabhāsa 64 | |
| Suvișņu 145 | Tactual 59 |
| Svabhāva 31, 110, 111, 117, 134 | Takakusu xix, 63, 64, 66, 76, 84, |
| Svabhāva-hetu 117 | 89, 99, 101, 102, 103, 105, |
| Svabhāvānupalabdhi 110 | 119, 123, 146 |
| Svabhāva-parīkṣā 127 | Takka 60 |
| Svabhāvaviruddhopalabdhi 111 | Takki 59, 60 |
| Svalakṣaṇa 109 | Takkika 59, 60 |
| Svārtha 4 | Takṣaśilā 67 |
| Svārthānumāna 16, 31, 85, 106 | Tāmrasātīya 65 |
| 108, 109, 110 | Tangyur xx, 62, 70, 72, 78, 84, 85, |
| | 89, 99, 100, 101, 106, 107, |
| Svarūpa 40 Svarūpasambodhana 20 | 108, 109, 117, 118, 119, 120, |
| Svatah-prāmānya 129 | 121, 123, 124, 120, 129, 130, |
| Svatantra 12: | 101, 102, 104, 100, 130, 137, |
| Svatantra Mādhyamika school 124 | 100, 100, 110, 111, 112, 113, |
| ·· | |
| | 2011020 10, 102, 120, 120, 121 |
| | 10110 124 |
| • | Tapagaccha 1, 3, 52, 55 |
| Svetāmbara xviii, 1, 2, 5, 6, 9, 14 | |
| 22, 34, 35, 36, 38, 48, 50, 51 52, 5 | |
| • | 1 aranauna, Lama XV, 00, 01, 08, |
| Syādasti 2 | 00, 10, 12, 12, 00, 01, 02, |
| Syād-nāsti 2 | 1 22, 22, 220, 220, 220, |
| Syādvāda 8, 22, 23, 2 | |
| Syādvāda-kalikā 5 | 300 300 300 |
| Syādvāda-manjarī 5 | |
| Syādvāda-ratnāvatārikā 38, 50 | |
| 131, 13 | |
| Syādvādaratnāvatārikā-pafi- | Tarkābhāsa 32 |
| jik ā 3 | m. 1 |
| Syadvada-iruta 2 | |
| Syādvāda-vidyāpati 5 | -) |
| Syāt | Tarkasamgraha 126, 128 |
| Syllogism 6,7, 16, 29, 42, 77, 85 | |
| 89, 92, 114, 13 | • |
| Syllogistic 7 | |
| Synonyms 1 | 2 Tārkika 26, 59, 72, 73 |
| System xiii, 4 | 9 Tārkika-cakra-cūḍāmaṇi 26 |
| • | 3 Tarkin 59 |
| Systems of philosophy 3 | 3 Tashilhunpo 78 |
| | |

| | | Page | 1 | | Page |
|----------------------------------|----------------|------------|------------------|--------|----------------|
| Trikāla-parīkṣā | | 101 | Turușka | 62, | 147, 151, 152 |
| Trilokas āra | •• | 1 | Tutelary | •• | 121 |
| Trimalaya | | 103 | Туре | | 5, 16, 40 |
| Tripitaka | 58, 61, 64 | 4, 80 | | | |
| Tri-rūpa-hetu | •• | 85 | | U | |
| Trișașțiśalākapu | rușa-caritra | 45 | Udāharaņa | | 31 |
| Truth | | 44 | Udāna | | 60 |
| Tsandrahi-khron | -ра | 123 | Udayana | | |
| Tshab-ñi-ma-gra | g _ž | 132 | Udayanācārya | | |
| Tsh a d-ma | •• | 129 | Udayaprabha | | 47, 48, 51 |
| Tshad-ma-brtag-r | p a | 132 | Udyāna | | 139 |
| Tshad-ma-grub-p | a | 106 | Udyotakara xv | ii, 27 | |
| Tshad-mahi-batar | a-bcos-rig-pa- | | | | 5, 88, 89, 105 |
| la-hjug-pa | | 100 | Uha | | |
| Tshad-mahi-mdo- | kun-lag-btug- | | Ujjainī | | xviii, 14, 15 |
| ра | •• | 84 | Umā | | |
| Tshad-ma kun-la | s-btus-pa | 84 | Umāsvāmin | | 9 |
| Tshad-ma-rigs-pa | r-hjug-pahi- | | Umāsvāti xiii, | | |
| <u>s</u> go | •• | 89 | , | -, -, | 23 |
| Tshad-ma-rnam-l | grel-gyi-dkah- | | Uncertain 19, 9 | 3. 94. | 100, 112, 113 |
| hgrel | •• | 118 | Uncertainty | , | |
| Tshad-ma-mam- | | | Unconnected | | |
| þś a d | 119, | • | Unfamiliar | • • • | 91 |
| Tshad-ma-rnam-l | - | | Universal | ••• | |
| | •• | 124 | Universal conne | | |
| Tshad-ma-rnam-h | | | Universal propo | | |
| Wa | • • • • | 107 | University i, xv | | |
| Tshad - ma - man | | 100 | | | 38, 139, 140, |
| rgyan | •• | 135 | | | 147, 150, 151 |
| Tshad-ma-rnam-h | | | University stud | | 1 |
| -gyi-hgrel-hśs | | 137 106 | Unproved | | 18, 93, 112 |
| Tshad-ma-mam-l Tshad-ma-mam-l | | 100 | Unravelling | •• | 62 |
| gyi-hgrel-bsa | | 141 | Unseparated | | 21 |
| Tshad-ma-rnam-i | | 132 | Upadeśamālā-ţī | | 38 |
| Tshad-ma-rnam- | | 108 | Upadeśamālā-vi | | |
| Tshad-ma-mam- | | 100 | Upadesamālā-vi | • | 50 |
| hgrel-báad | her-nez-beni- | 138 | Upalabdhi | | 30 |
| Tshig-gi-don | | 128 | Upamāna | | |
| | 61 | | Upanaya | | 16, 31, 42, 61 |
| Tshul-gsum | | 91 | Upanaya-catuki | | |
| Tshul-hkhrims-rg | | 101 | Upāngas | | _ |
| TAUGH-ÜRULIME-IS | Aor-menen | 101 | oherrRes | • • | 3 |

| Page | Page |
|------------------------------------|--------------------------------------|
| Upanisad 127, 128 | Vairocana 123 |
| U-pa-ni-ṣa-di-kas 128 | Vaisālī 58,71 |
| Upāsaka 103, 122, 123, 139 | Vaisesika 27, 46, 49, 62, 65, 82, 91 |
| Upāsakādhyayana 23, 24 | 94, 127 |
| Upavarsa 33 | Vaisnava xx |
| Urddhvatā 32 | Vajiriya 58 |
| Utpādasiddhi-prakaraņa 45 | Vajra 80, 145 |
| Utsarpiņī l | Vajracchedikā 75 |
| Uttara 30, 31 | Vajraśākhā 44 |
| Uttaradharma 67 | Vajrāsana 139, 141 |
| Uttaradhyayana-brhad-vrtti 37 | Vajravarāhī 139 |
| Uttarādhyayana-stītra 6 | Vāk-praja or Vāgbhaṭa 141 |
| Uttaravāhini 150 | Vākyapadīya 27 |
| Uvāsagadasāo 23 | Valabhi xviii, 13 |
| | Valid 94, 100 |
| V Vācakācārya 8 | Validity 74 |
| Vācaka-framaņa 8 | Valid knowledge 4, 10, 15, 16, 19, |
| Vācaspati 53, 105 | 21, 28, 29, 32, 40, 43, 54, 55, |
| Vācaspati Miśra xvii, 23, 49, 66, | 84, 99, 109, 110, 129, 132 |
| 81. 86, 88, 105 | Vana Pāla 131, 149 |
| Vāda 8,44 | Vande-dpal-brtsegs 121 |
| Vāda-mahārņava 36, 37 | Vande-nam-gkhaz 118, 120 |
| Vāda-nyāya 117, 120, 125 | Vande-ye-seg-5de 120, 135 |
| Vāda-nyāya-vṛtti-vipañcitār- | Varāhamihira 6, l4 |
| tha 125 | Vararuci 122 |
| Vāda-nyāya-vyākhyā 120 | Vardhamāna 1, 54 |
| Vādi40,44 | Vardhamāna sūri 3 |
| Vēdin 34 | Vārendra 121, 122, 123, 124, 136, |
| Vādipravara 38 | 148, 151 |
| Vāghhata: vide Vākpraja. | Vasubandhu xix, 74, 75, 76, 78, |
| Vāgīśvarakīrti 137, 141, 151 | 80, 81, 146 |
| Vāhyārtha 129 | Vasubhūti 2 |
| Vāhyārtha-siddhi-kārikā 130 | Vasudhara 141 |
| Vaibhāşika 65, 66, 67, 74, 75, 78, | Vasudhara Raksita 100 |
| 130 | Vasu Mitra 63 |
| Vaidharmya 17, 20, 31, 90 | Vatsagotra 9 |
| Vaidharmya-dratāntābhāsa 20, 21. | Vātsīputra 66, 128 |
| 97 | Vātsīputrīya 65, 66, 80 |
| Vaidharmyavat 112 | Vātsī-sūta 9 |
| Vaidūryakarpo 148 | Vātsyāyana xvii, 53, 86, 87 |
| Vairasvāmi 47 | Vattagāmaņi 58 |

| | | P | age | | | Pag | 74 |
|---|----------------------|--------|------------|----------------------------|---------------|------------------------|------------|
| Veda | •• | 62, | 103 | Vikala | •• | 4 | 41 |
| Vedānga | •• | | 103 | Vikrama | 1, 2, 35 | , 63, 13 | 11 |
| Vedānta | •• | | 51 | Vi kra māditya | xix, xx, 6 | 3, 14, 1 | 5, |
| Vedāntasūtra | •• | 23, | 105 | | 22 | 2, 81, 14 | 16 |
| Vedāntin | •• | • • | 82 | Vikramanīpura | •• | 1 | 17 |
| Vengi | •• | 81 | , 82 | Vikrama samvat | t | • | 49 |
| Venkapatta | | • • | 36 | Vikrama(ilā xx | | • | |
| Verbal | | 12 | , 42 | 1 3 7, 138, 1 | | | |
| Verbal fallacy | | | 43 | | 148 | , 150, 1 | |
| Verbal testimony | 4, 10, 18 | 5, 32, | 40, | Vimala Candra | • • | 119, 1 | 40 |
| | 41, 85, 88 | 8, 89, | 130 | Vimala Dāsa | •• | • • | 8 |
| Vibhāsā | •• | • • | 66 | Vīmamsā | • • | •• | 60 |
| Vibhāṣā-śāstra | •• | | 67 | Vīm am si | •• | •• | 6 0 |
| Vibhāsā-vinaya | •• | | 76 | Vinaya | •• | 1 | 46 |
| Vicaramrta-same | raha | | 48 | Vinayāditya | • • | •• | XX |
| Vicāra-ratna-san | igraha | | 5 | Vināyaka | • • | 1 | 33 |
| Vicāra-sāra-prak | araņa | 1, 14 | , 48 | Vinaya Pitaka | | 59, 63, | 78 |
| Vicāra <reņī< td=""><td>••</td><td></td><td>1</td><td>Vinaya Vibhāşā</td><td>·</td><td>••</td><td>63</td></reņī<> | •• | | 1 | Vinaya Vibhāşā | · | •• | 63 |
| Vicitradvaitaside | dhi | | 140 | Vinaya Vijaya (| G a in | •• | 13 |
| Victory | | | 44 | Vindhya | 103 | , 104, 1 | 48 |
| Vidarbha | | | 68 | Vinīta Deva | 119 | , 121, 1 | 40 |
| Vidhi | •• | | 30 | Viññāṇa | • • | • • | 59 |
| Vidyabhusana, S | Satis Char | ıdra | | Vipaksa | •• | •• | 7 |
| i, xvi, xxi, | 6 3, 66, 67 | , 68, | 70, | Vipaksa-pratise | dha | •• | 7 |
| 71, 72, 76, | 80, 121, | 122, | 124, | Viparītānvaya | 20, 2 | 1, 97, 1 | 16 |
| | 133, 138 | , 140, | 150 | Viparyaya | •• | •• | 40 |
| Vidy ā dhara | • • | •• | 121 | Vira | • • | 13, | |
| Vidyāmātra-sidd | lhi-¢ ä stra- | | | Virah a | •• | 49, | |
| vyākh yā | •• | • • | 102 | Viruddha | 18, 94 | | |
| Vidyānanda 23, | 26, 27, 2 | | | Viruddhakāryo _] | | 1 | 11 |
| | | 82, | , 105 | Viruddhāvyabh | icāri | 1 | 14 |
| Vienna | • • | • • | 3 5 | Viruddhavayap | - | i 1 | 11 |
| Vienna Oriental | Journal | • • | 35 | Viśālāmalavatī | •• | xvii, l | 24 |
| Vigraha Pāla | •• | •• | 149 | Viśālāmalavatī- | -nāma-pra | m ā ņ a- | |
| Vigraha-vyavari | anī-kārik | ā | 70 | samuccaya | -țīkā | xvii, | 124 |
| Vigrahavyavart | anī vṛtti | • • | 70 | Vișaya | • • | 28, | 40 |
| Vihāra | xx | , 104, | | Višesa. | | 17, 32, 1 | |
| Vijaya | • • | • • | 37 | Vișņuvardhana | • •• | • • | 81 |
| Vijayasena | • • | 4' | 7, 50 | Visual | •• | •• | 10 |
| Vijñāna | • • | •• | 5 9 | Viśuddha-simha | B | 121, | |
| Vijñapti-mātra- | iddhi | •• | 140 | Viśvanātha | • • | 1 | rvii |

| Page | Page |
|--------------------------------------|--|
| Vitanda 62 | Word for the sake of others 106 |
| Vītarēgastuti 51 | Wordsworth, Mr. W. C xvi |
| Vivartavāda 129 | Wordy 62 |
| Vivrti 13, 133 | World 60, 129 |
| Vow 5, 45 | World-renowned 37 |
| Vrata 5,45 | |
| Vrddhavādi 14 | X 100 101 100 |
| Vrhadgaccha 50 | Xylograph xv, 72, 100, 101, 108, 109, 121, 125 |
| Vrhat-svayambhū-purāna 150 | Y |
| Vyāghra-śiśuka 47 | Yajña 147 |
| Vyāpaka 29, 111 | Yākinī 48 |
| Vyāpakānupalabdhi 111 | Yakşa Pāla 149 |
| Vyāpakaviruddhopalabdhi 111 | Yamāri xviii, 141 |
| Vyāpti 18, 20, 29, 42, 48, 92 | Yasodharma Deva 14 |
| Vyāptigraha 55 | Yasovijaya 39, 50, 51, 52, 54, 131 |
| Vуāруа 29, 30, 31 | 133 |
| Vyatireka 32 | Yasovijaya Ganı 54 |
| Vyatireki 31 | Yaśovijaya-granthamālā 6, 39, 52, |
| Vyavahāra 4, 11, 21 | 53, 55 |
| Vyavahārābhāsa 43 | Yasovijaya Pāthasālā 55 |
| Vyavahāra-sūtra 6 | Yauga 54 |
| Vyāvahārika 15 | Yoga 10, 27, 33, 62, 65, 71, 73, 83 |
| | Yogācāra xix, 51, 66, 67, 71, 72, |
| W | 74, 75, 78, 102, 122 |
| Waddell, Col. 78, 124, 129, 151 | Yogācārya 71 |
| Wassilief 67, 105 | Yogācārya-bhūmi-śāstra 83 |
| Wassiljew 68 | Yogasastra 45 |
| War 62 | Yogin 141 |
| Water 22 | Yuan Chwang 63, 67, 68, 71, 72, |
| Watters, Mr. 63, 67, 68, 71, 72, 73, | 73, 74, 75, 80, 146 |
| 74, 75, 80, 146 | Yuga-pradhāna 5 |
| Weber, Dr. 3, 4, 5, 37, 50, 51, 53 | Yuga-pravara 5 |
| Weir Smyth 4 | Yuka Ron 73 |
| Wenzel, Dr 71 | Yukti-prayoga 139 |
| Wheel 100 | Yuktişaştikā kārikā 70 |
| Wheel of Reasons 99, 100 | Yuktyanuśāsana 23 |
| White, Mr. Claude xvi | Yul-lho-phyog 107 |
| Wijesimha 58, 61, 66, 67 | Z |
| Williams, Monier 63 | Za-hor 99, 124 |
| Winding up 62 | Zaschuh 75 |
| Word 85, 88, 89, 106, 111 | Zla-wa-dge-bsfien 121 |